प्राचीन गुर्जर ग्रन्थमाला, ग्रन्थ १

नेमिचन्द्र भंडारी-विरचित

षष्टिशतक प्रकरण

त्रण बालावबोध सहित

THE MAHARAJA SAYAJIRAO UNIVERSITY OF BARODA

सत्यं शिवं सुन्दरम्

महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, वडोदरा

महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय,
वडोदरा-संचालित

प्राचीन गुर्जर ग्रन्थमाला

सामान्य संपादक

डॉ. भोगीलाल ज. सांडेसरा,
एम. ए., पीएच. डी.
अध्यक्ष, गुजराती विभाग,
म. स. विश्वविद्यालय, वडोदरा.

卐

ग्रन्थ १

नेमिचन्द्र भंडारी-विरचित

षष्टिशतक प्रकरण

त्रण बालावबोध सहित

नेमिचन्द्र भंडारी-विरचित

षष्टिशतक प्रकरण

त्रण बालावबोध सहित

प्रस्तावना, परिशिष्टो अने शब्दकोश साथे

संपादक

डॉ. भोगीलाल ज. सांडेसरा

श्रीमती हंसाबहेन महेता

वाइस-चान्सेलर, म. स. विश्वविद्यालय-वडोदरा,

एमना आमुख सहित

THE MAHARAJA SAYAJIRAO UNIVERSITY OF BARODA

सत्यं शिवं सुन्दरम्

महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, वडोदरा

प्रकाशक
डॅा. भोगीलाल ज. सांडेसरा,
अध्यक्ष, गुजराती विभाग,
म. स. विश्वविद्यालय,
वडोदरा.

आवृत्ति पहेली
प्रत ५००

वि. सं. २००९
ई. स. १९५३

मूल्य पांच रूपिया

प्राप्तिस्थान
प्राच्य विद्यामन्दिर,
वडोदरा.

मुद्रक
रमणलाल जी. पटेल, व्यवस्थापक,
साधना प्रेस, रावपुरा, वडोदरा.

आमुख

प्राच्य विद्यामंदिर तरफथी मुख्यत्वे संस्कृत हस्तलिखित पोथीओ मेळवी एमांथी योग्य पोथीनुं प्रकाशन वर्षोथी चाली रह्युं छे. 'गायकवाड ओरियेन्टल सिरीझ' मां एवां सो उपरांत पुस्तको प्रसिद्ध थयां छे. जूना गुजराती साहित्यनो हस्तलिखित भंडार पण विपुल छे. एमांथी योग्य साहित्यनुं प्रकाशन पण इच्छवा योग्य छे. आ हेतु लक्षमां राखी, वडोदरा विश्वविद्यालयना गुजराती विभाग द्वारा प्राचीन गुर्जर ग्रन्थमालानी योजना तैयार करवामां आवी छे. ए योजना अनुसार आ प्रथम पुस्तक बहार पडे छे, अने एवुं एक पुस्तक दर वर्षे बहार पाडवानी आशा रखाय छे.

आ प्रकारना संशोधननो उपयोग एकदम पहेली नजरे चढे नहि ए स्वाभाविक छे. परंतु भाषानी दृष्टिए तेम ज सामाजिक इतिहासनी दृष्टिए आ प्रकारनां संशोधनो पुष्कळ प्रकाश पाडे छे अने माटे ज उपयोगी छे. आ पुस्तकना निवेदनमां डॉ. सांडेसरा लखे छे के :— "आ ग्रन्थमालामां प्रसिद्ध थती कृतिओ तथा एना शब्दकोशो ऐतिहासिक गुजराती शब्दकोश माटे सामग्री पूरी पाडशे तथा अन्य भगिनीभाषाओना प्राचीनतर युगोना अध्ययनमां पण उपयोगी थशे एवी आशा छे." पुस्तक पाछळ जे शब्दकोश आप्यो छे ते भाषानी दृष्टिए अतिशय उपयोगी थई पडशे एमां तो जरा पण शंका नथी. आशा छे के आ प्रकाशननो गुजरातना विद्वानो तेम ज अन्य भाषाशास्त्रीओ योग्य सत्कार करे.

ता. १४-२-'५३.

हंसा महेता

अनुक्रम

आमुख	..
निवेदन	१-३
प्रस्तावना	४-२९
जूनुं गुजराती गद्य–४; 'बालावबोध' एटले शुं ?–७; 'षष्टिशतक प्रकरण' अने तेनो कर्ता–९; 'षष्टिशतक'ना बालावबोधकारो–(१) सोमसुन्दरसूरि–१३; (२) जिनसागरसूरि–१४; (३) मेरुसुन्दर उपाध्याय–१५; 'षष्टिशतक'ना अन्य बालावबोधो–२२; हाथप्रतो अने संपादन–२४; अनुलेख–२८.	
षष्टिशतक प्रकरण–त्रण बालावबोध सहित....	१-१६०
परिशिष्ट १. नेमिचन्द्र भंडारी-विरचित जिनवल्लभसूरि गुरुगुणवर्णन....	१६१-६५
परिशिष्ट २. नेमिचन्द्र भंडारी-विरचित पार्श्वनाथ स्तोत्र....	१६६
'षष्टिशतक' नी प्राकृत गाथाओनी सूचि	१६७-६९
शब्दकोश	१७०-९३

मुखपृष्ठ–उपयोगमां लेवायेली हस्तप्रतोमांथी त्रणना फोटा

शुद्धिपत्रक

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३	९	दीक्षादि वरावी	दीक्षा दिवरावी
८०	१८	नाणनी	जाणनी
८९	१६	आंगी गमइं	आंगीगमइं
९५	४	आज्ञारइितहूइं	आज्ञारहितहूइं
१७५	१७	आंगीगमई	आंगीगमइं
,,	,,	ए. व.	ब. व.

निवेदन

वडोदराना म. स. विश्वविद्यालयनी कार्यवाहक सभाए (सीन्डिकेटे) मंजूर करेली योजना अनुसार, आ 'प्राचीन गुर्जर ग्रन्थमाला' शरू थाय छे. प्राचीन गुजराती साहित्यनी अप्रसिद्ध कृतिओनी समीक्षित वाचनाओनुं प्रकाशन सामान्य रीते एमां थशे, परन्तु आ पहेलां छपाई गयेली छतां जेनां शास्त्रीय संपादनो न थयां होय एवी विशिष्ट रचनाओनी समीक्षित वाचनाओने तथा प्रसिद्ध के अप्रसिद्ध रचनाओमांथी अभ्यासनी दृष्टिए करेला समुच्चयोने पण एमां स्थान रहेशे. प्रत्येक संपादन साथे प्रस्तावना उपरांत ते ते कृतिमां प्रयोजायेला नोंधपात्र शब्दोनो एक कोश आपवामां आवशे, जेमां ए शब्दो उपर व्युत्पत्ति तेम ज अर्थविकासनी दृष्टिए संक्षिप्त टांचणो अपाशे. जूना गुजराती भाषासाहित्यना तुलनात्मक अध्ययनमां उपयोगी थाय ए प्रकारना स्वाध्यायग्रन्थोने पण प्रसंगोपात्त आ ग्रन्थमालामां अवकाश रहेशे.

विक्रमना बारमा शतकमां थयेला, अपभ्रंश व्याकरणकार आचार्य हेमचन्द्रना समयथी मांडी ओगणीसमा शतक सुधी जूना गुजराती साहित्यमां रचायेला सेंकडो ग्रन्थो हजी अप्रसिद्ध छे. ए विपुल साहित्य-भंडारमांथी पसंद करेली, जुदा जुदा साहित्यप्रकारोनी प्रतिनिधिरूप गद्यपद्यात्मक कृतिओनुं प्रकाशन ते ते कृतिरूपे अगत्यनुं होवा उपरांत ते ते साहित्यप्रकारना विकासना अध्ययनमां घणुं उपयोगी छे.

शक सं. ६९९ (वि. सं. ८३४)मां 'कुवलयमाला' नामे सुप्रसिद्ध प्राकृत कथा रचनार दाक्षिण्यांक उद्योतनसूरिए गुर्जरोनी भाषानो एक नानो नमूनो टांक्यो छे, पण छेल्लां लगभग साडा आठसो वर्ष थयां तो

प्राचीन गुर्जर साहित्य बहोळा प्रमाणमां उपलब्ध छे. काळना प्रवाहमां घणुं नाश पाम्युं हशे, परन्तु जे बच्युं छे ते पण विपुल छे. विक्रमना बारमा शतकथी आ तरफ आवतां एक पण शताब्दी एवी नथी, जेमां जूना गुजराती साहित्यमां विकसेला विविध साहित्यप्रकारोना प्रतिनिधिरूप नमूना मळता न होय. गुजराती भाषानो शताब्दीवार सिलसिलाबंध इतिहास उकेलवा माटे, जगतनी कोई पण भाषाने ईर्ष्या आवे एवी वैविध्यपूर्ण अने सुसंगोपित पुष्कळ साधनसामग्री बहुसंख्य हस्तप्रतोरूपे विद्यमान छे एने एक सद्‌भाग्य गणवुं जोईए. गुजराती भाषा माटे ऐतिहासिक सिद्धान्तानुसार रचायेला बृहद् कोशनी जरूरियात घणा समयथी ऊभेली छे—एवो कोश, जेमां बहोळो शब्दसंचय के क्रमिक व्युत्पत्ति आपी होय एटलुं ज नहि, पण साहित्यिक प्रमाणो अने अवतरणोने आधारे कालानुक्रमिक अर्थविकास बतावेलो होय. पण एवा कोशना व्यवस्थित कार्यनो आरंभ थाय त्यार पहेलां केटलांक भूमिकारूप कामो—जूना ग्रन्थोनी शास्त्रीय वाचनाओ अथवा ते ते ग्रन्थना अने विशिष्ट युगोना शब्दकोशनी रचनानां तथा विशिष्ट शब्दो के शब्दसमूहोना कालानुक्रमिक अध्ययननां कामो—थवां जोईए. आ ग्रन्थमालाना प्रकाशनमां आ रीतनुं भूमिकारूप अध्ययन रजू करवानो ख्याल पण रहेलो छे. आ ग्रन्थमालामां प्रसिद्ध थती कृतिओ तथा एना शब्दकोशो* ऐतिहासिक गुजराती शब्दकोश माटे सामग्री पूरी

---

* छेवटनां केटलांक वर्षोमां आ देशमां तेम ज परदेशमां थयेलां नव्य भारतीय आर्यभाषाना जूना ग्रन्थोनां संपादनोमां संपादित कृतिना प्रत्येक शब्दनी सूचि अपाती घणी वार जोवामां आवे छे. ज्यारे छूटक छूटक रूपे एकाद कृतिनुं संपादन थतुं होय त्यारे आ प्रकारनी संपूर्ण शब्दसूचिनी उपयोगिता खरी, पण एक ग्रन्थमालाना प्रत्येक ग्रन्थ माटे जो एम करवामां आवे तो बीजा ज प्रकाशनथी एमां बिनजरूरी पुनरावृत्तिनो दोष अनिवार्य रीते आवे अने संपादकना समयनो अने मुद्रणनां नाणांनो निरर्थक व्यय वधे. आथी पसंद करेला शब्दोनो कोश

पाडशे तथा अन्य भगिनीभाषाओना प्राचीनतर युगोना अध्ययनमां पण उपयोगी थशे एवी आशा छे.

आम साहित्य तेम ज भाषाना तुलनात्मक अने ऐतिहासिक अभ्यासनो द्विविध उद्देश आ ग्रन्थमालाना प्रकाशनमां छे. आ विषयना विद्यार्थीओ अने अभ्यासीओने आ रीते जुदा जुदा दृष्टिकोणथी उपयोगी थाय एवां प्रकाशनो आपवा माटे अमे सतत प्रयत्नशील रहीशुं. योग्य सूचनो द्वारा तथा प्रकाशनोनां विवेचनो द्वारा आ कार्यमां सहकार आपवा तज्ज्ञोने विनंती छे.

'अध्यापकनिवास,'
वडोदरा.
कार्तिकी पूर्णिमा, सं. २००९.

भोगीलाल जयचंदभाई सांडेसरा
सामान्य संपादक.

आपवानी पद्धति सामान्य रीते आ संपादनोमां रहेशे. जो के टूंकी तेम ज कोई एक अपेक्षाए विशिष्ट कृतिना संपादनमां, जरूर जणाये, सर्व शब्दोनो कोश न आपी शकाय एवुं नथी.

प्रस्तावना

जूनुं गुजराती गद्य

जूना गुजराती साहित्यमां गद्य लखाणो अणछतां के विरल हतां एवो एक सामान्य ख्याल प्रवर्ते छे, पण जूना साहित्यनी शोध थती जाय छे तेम तेम ए ख्याल प्रमाणपुरःसर नथी ए निश्चित थाय छे. ठेठ विक्रमना चौदमा शतकथी मांडी जूनी गुजरातीमां (अथवा डॉ. टेसीटरीए प्रचलित करेलो शब्द वापरीए तो जूनी पश्चिम राजस्थानीमां)* गद्यसाहित्य मळे छे अने उत्तरोत्तर एनुं वैपुल्य वधतुं जाय छे. अर्वाचीन काळमां गद्य साहित्यना घणाखरा प्रकारोनुं वाहन बन्युं छे

---

* सोळमा सैकामां तथा त्यार पहेलांना समयमां 'जूनी गुजराती' अने 'जूनी पश्चिम राजस्थानी' ए बन्ने शब्दप्रयोगो वडे एक ज वस्तुनो बोध थाय छे. संभवित बोलीभेदोवाळी एक ज सामान्य भाषा गुजरात अने राजस्थानमां—खास करीने पश्चिम राजस्थानमां—बोलाती हती. आ भाषाकीय एकताना कारणमां पूर्वकाळनो राजकीय तेम ज सांस्कृतिक इतिहास रहेलो छे, जेनी वीगतमां ऊतरवुं अहीं प्रस्तुत नथी. पण गुजरातनुं एक वारनुं पाटनगर श्रीमाल अत्यारे राजस्थानमां गणाय छे अने गुजरातनी अनेक ब्राह्मण, वणिक अने कारीगर ज्ञातिओनां नामो सूचित करे छे के एक काळे ए बधो प्रजासमूह अत्यारे जेने पश्चिम राजस्थान कहेवामां आवे छे ए प्रदेशमांथी अत्यारना गुजरातमां आवीने वस्यो हतो, एवी केटलीक हकीकत लक्षमां राखवा जेवी छे. आ ऐतिहासिक पार्श्वभूमिका जो ख्यालमां न होय तो 'जूनी गुजराती' अने 'जूनी पश्चिम राजस्थानी' जेवा प्रयोगो वास्तविक अर्थबोधमां थोडो संभ्रम ऊभो करे खरा. एथी आपणी भाषानी ए प्राचीन भूमिका माटे श्री. उमाशंकर जोषीए 'मारु-गुर्जर' एवो शब्द सूचव्यो हतो. आजे पण राजस्थाननी भाषा एना बंधारणनी दृष्टिए हिन्दी करतां गुजरातीने वधारे मळती छे ए वस्तु आ ऐतिहासिक परिस्थितिना प्रत्यक्ष समर्थनरूप छे. आ 'प्राचीन गुर्जर ग्रन्थमाला'मां आपणी भाषाना आ 'मारु-गुर्जर' युगनी पण केटलीक कृतिओ प्रसिद्ध थशे—अने आ प्रथम पुष्प तो ए युगनुं ज छे—ए कारणे आटलुं स्पष्टीकरण के विषयान्तर जरूरी गण्युं छे.

એવું જો કે એ સમયમાં નહોતું, ગદ્યનું પ્રયોગક્ષેત્ર સીમિત હતું, તો પણ એ સીમિત ક્ષેત્રમાં યે થોડાક અલગ અલગ પ્રકારો મળે છે. સંસ્કૃત કે પ્રાકૃત ગ્રન્થોના અનુવાદ કે ટીકારૂપ બાલાવબોધો; અક્ષરના રૂપના માત્રાના અને લયના બંધનથી મુક્ત છતાં પદ્યમાં લેવાની બધી છૂટ ભોગવતા પ્રાસયુક્ત ગદ્ય–'બોલી'માં રચાયેલાં 'પૃથ્વીચંદ્રચરિત્ર' (સં. ૧૪૭૮) જેવાં ગદ્યકાવ્યો કે 'સભાશૃંગાર' જેવા વર્ણકસંગ્રહો; અજ્ઞાતકર્તૃક 'કાલકાચાર્ય કથા' (સં. ૧૫૫૦ આસપાસ)* જેવી, ક્વચિત્ અલંકાર-પ્રચુર અને ક્વચિત્ સહેલા રસળતા ગદ્યમાં રચાયેલી કથાઓ અને 'કાદંબરી કથાનક' (વિ.ના ૧૮મા શતકનો પૂર્વાર્ધ)+ જેવા કથાસંક્ષેપો; દાર્શનિક ચર્ચાઓ, વાદવિવાદો અને પ્રશ્નોત્તરીઓ; 'ઔક્તિક' તરીકે ઓળખાતા, ગુજરાતી દ્વારા સંસ્કૃત શીખવા માટેના સંખ્યાબંધ વ્યાકરણ-ગ્રન્થો—જેમાં સંગ્રામસિંહકૃત 'બાલશિક્ષા' (સં. ૧૩૩૬) અને કુલમંડનગણિકૃત 'મુગ્ધાવબોધ ઔક્તિક' (સં. ૧૪૫૦) જેવાં ભાષાના ઇતિહાસનાં સીમાચિહ્નોનો સમાવેશ થાય છે—એ જૂના ગદ્ય-સાહિત્યના પ્રાપ્ત વિવિધ પ્રકારો છે. અત્યારે ઉપલબ્ધ થતું જૂનું ગદ્ય પણ એટલું વિપુલ છે કે એનું પ્રકાશન કરવામાં આવે તો 'બૃહત્કાવ્ય-દોહન'ના સુપ્રસિદ્ધ ગ્રન્થો જેવડા ઓછામાં ઓછા સો ગ્રન્થો તો સહેજે ભરાય. જો કે જુદા જુદા પ્રાચીન ગ્રન્થભંડારો અને સંગ્રહોમાં જે ગદ્ય-સાહિત્ય મારા જોવામાં આવ્યું છે એ વિચારતાં મને લાગે છે કે આ વિધાનમાં સંભવ અત્યુક્તિનો નહિ પણ અલ્પોક્તિનો છે.

આ ગદ્યસાહિત્યનો માત્ર એક અલ્પ અંશ અત્યાર સુધીમાં બહાર આવ્યો છે. ગાયકવાડ્ઝ ઓરિયેન્ટલ સિરીઝમાં એ ગ્રન્થમાળાના આદ્ય સંપાદક શ્રી. ચિમનલાલ ડાહ્યાભાઈ દલાલે છપાવેલ 'પ્રાચીન ગુર્જર

---

* પ્રસિદ્ધ, મારા વડે સંપાદિત, 'પ્રસ્થાન,' ફાગણ-ચૈત્ર, સં. ૧૯૮૮

\+ પ્રસિદ્ધ, સં. આચાર્ય જિનવિજયજી, 'પુરાતત્ત્વ,' પુસ્તક ૫, અંક ૪.

काव्यसंग्रह'मां तथा आचार्य जिनविजयजी-संपादित 'प्राचीन गुजराती गद्यसन्दर्भ'मां उपलब्ध प्राचीनतम गद्यसाहित्यनी उत्तम वानगी छे. डॉ. टी. एन. दवेए लंडन युनिवर्सिटी समक्ष रजू करेला पोताना बृहन्निबंधमां (A Study of the Gujarati Language in the 16th Century V. S.) सं. १५४३मां रचायेला 'उपदेशमाला'ना बालावबोधनुं संपादन करेलुं छे. त्यार पछी बृहन्निबंधरूपे आवां एकबे संपादनो थयां छे, पण ते हजी प्रकाशित थयां नथी. गुजरात तथा राजस्थानमांथी बहार पडतां सामयिकोमां केटलीक नानीमोटी प्राचीन गद्यकृतिओ प्रसंगोपात्त प्रसिद्ध थई छे. प्राचीन गद्यनां प्रेरक बळो अर्वाचीन गद्यनां प्रेरक बळोथी विभिन्न छे, अने परिणामे ए बन्ने युगमां विकसेला गद्य-साहित्यप्रकारो पण विभिन्न छे. वळी अर्वाचीन युगमां साहित्यनुं मुख्य वाहन गद्य बन्युं छे अने ए रीते एनुं महत्त्व वध्युं छे. पण जूनामां जूनी उपलब्ध गद्यकृतिओथी मांडी प्राचीन युगना छेल्ला प्रतिनिधि दयारामकृत 'सतसैया' उपरनी स्वरचित गुजराती टीका तथा स्वामीनारायणनां 'वचनामृतो' सुधीनी गद्यरचनाओ उपरथी जूना गुजराती गद्यनां बंधारण अने शैलीनो ऐतिहासिक दृष्टिए कालानुक्रमिक अभ्यास थाय त्यारे विचारोनी स्पष्ट अने रुचिर अभिव्यक्ति माटे जूना गद्यनुं सातत्य अर्वाचीन गद्यमां केटले अंशे रहेलुं छे तथा कई अने केवी नवी लढणो भाषामां विकसी छे ए चोक्कस स्वरूपे समजी शकाय. वळी पद्य करतां गद्य ए बोलाती भाषानुं विशेष निकटवर्ती होय, ए कारणे पण अभ्यास माटे एनुं एक खास महत्त्व छे. आ दृष्टिए नेमिचन्द्रकृत प्राकृत 'षष्टिशतक प्रकरण' उपरना—अनुक्रमे सोमसुन्दरसूरि, जिनसागरसूरि अने मेरुसुन्दर उपाध्यायकृत—त्रण प्राचीन गुजराती बालावबोधोना संपादननुं आ ग्रन्थमालाना प्रथम पुष्परूपे थतुं प्रकाशन अभ्यासीओने उपयोगी थशे एवी आशा छे.

'बालावबोध' एटले शुं ?

आ प्रस्तावनाना प्रारंभमां कह्युं छे के बालावबोध ए मूळ संस्कृत के प्राकृत ग्रन्थना अनुवाद के टीकारूपे होय छे. 'बाल' एटले वयमां नहि, पण समज के ज्ञानमां बाल. एना 'अवबोध' माटे थयेली रचनाओ ते 'बालावबोध'. गुजरातीनुं जूनामां जूनुं गद्यसाहित्य जैन शास्त्रग्रन्थोना बालावबोधरूपे छे. बालावबोध आम जो के जैन साहित्यनो शब्द छे, पण एनो अर्थ सहेज विस्तारीने 'भागवत,' 'भगवद्गीता,' 'गीतगोविन्द,' 'चाणक्य नीतिशास्त्र,' 'योगवासिष्ठ,' 'सिंहासनबत्रीसी,' 'पंचाख्यान,' 'गणितसार' आदि जे बीजी अनुवादरूप रचनाओ मळे छे ते माटे पण साहित्यना इतिहासमां ए शब्द प्रयोजी शकाय, केम के आ बधा गद्यानुवादोनो उद्देश एक ज छे. बालावबोधमां केटलीक वार मूळ ग्रन्थोनुं भाषान्तर होय छे, तो केटलीक वार दृष्टान्तकथाओ के अवान्तर चर्चाओ द्वारा मूळनो अनेकगणो विस्तार करेलो होय छे. पण 'बालावबोध'नो जे एक उत्तरकालीन प्रकार 'स्तबक' अथवा 'टबा'रूपे ओळखाय छे एमां मात्र शब्दशः भाषान्तर ज होय छे. एमां 'स्तबक'नी पोथीओनी लेखनपद्धति कारण-भूत छे. बालावबोधना वाचको करतां पण जेमनुं शास्त्रज्ञान मर्यादित होय एवा वाचकोने ध्यानमां राखीने 'स्तबक'नी रचना थयेली छे. एमां पोथीना प्रत्येक पृष्ठ उपर त्रण के चार पंक्ति मोटा अक्षरोमां मूळ शास्त्र-ग्रन्थनी लखवामां आवती अने प्रत्येक पंक्तिनी नीचे झीणा अक्षरोमां एनो अर्थ लखवामां आवतो, जेथी वाचकने प्रत्येक शब्दनो भाव समजवामां सरळता थाय. आ प्रकारनी लेखनपद्धतिने कारणे प्रत्येक पृष्ठ उपर नाना अने मोटा अक्षरोमां लखायेली पंक्तिओनां जाणे के 'स्तबक'—झूमखां रचायां होय एम जणातुं. ए उपरथी आ प्रकारना अनुवादो माटे 'स्तबक' शब्द वपरायो, जेमांथी गुजराती 'टबो' व्युत्पन्न थयो.

बालावबोधना कर्ताओ पोताना विषयना जाणकार विद्वानो हता; ए कारणे एमना अनुवादो शिष्ट होय छे अने शब्दोनी पसंदगी मूळने अनुसरती तेम ज समुचित अर्थनी वाहक होय छे. एमनो प्रथम उद्देश साहित्यिक आनंद आपवानो नहि, पण वाचकने मूळ वस्तुनुं ज्ञान करावववानो छे, छतां तरुणप्रभसूरिकृत 'षडावश्यक बालावबोध' (सं. १४११) जेवी केटलीक रचनाओनां कथानकोमां वर्णकशैलीना अलंकार-प्रचुर गद्यना आगमननी अेंधाणीओ वरताय छे खरी. परन्तु मूळ ग्रन्थने सादी भाषामां समजावववानो 'बालावबोध'ना साहित्यप्रकारनो प्रथम उद्देश छे ते तो भाग्ये ज कोई बालावबोधमां असफल रहेलो जणाशे. जूना गुजराती साहित्यमां बालावबोध पांच-पचीस नहि पण कुडीबंध छे; अने संस्कृत-प्राकृत भाषाओमां संघरायेला शास्त्रज्ञानने लोकभाषाओ द्वारा बहुजनसमाज समक्ष सरल स्वरूपमां मूकवानी जे प्रवृत्ति मध्यकाळमां समस्त भारतवर्षमां नजरे पडे छे ए ज आ बालावबोधोनी बहोळी अनुवादप्रवृत्तिमां पण एक चालक बळरूपे छे एम कहेवामां भाग्ये ज अतिशयोक्ति गणाशे.

एक ज मूल ग्रन्थना एक करतां वधु बालावबोधो जेमां साथोसाथ प्रसिद्ध थता होय एवुं, मने ख्याल छे त्यां सुधी, आ पहेलुं ज प्रकाशन छे. एक ज मूल 'षष्टिशतक प्रकरण'नो त्रण जुदा जुदा विद्वानोए करेलो अनुवाद एमां एक साथे जोई शकाशे. ए त्रणे विद्वानो लगभग एक ज समयमां थयेला छे; सोमसुन्दरसूरिनो बालावबोध विक्रमना पंदरमा शतकना अंतमां रचायेल छे, ज्यारे जिनसागरसूरि अने मेरुसुन्दर उपाध्यायना बालावबोधो विक्रमना सोळमा शतकना प्रारंभमां रचाया छे. रचना उपरथी जणाय छे के त्रणेनो आशय मूळनी अनुवादरूप समजूती आपवानो छे; जो के कोई कोई स्थळे त्रणेए थोडोक विस्तार करी दीधो छे. मूळ प्राकृत गाथा तथा ते उपरना त्रणे य बालावबोधो एक साथे छापेला

होवाथी आवां स्थानो अनायासे जोई शकाशे. केटलाक विस्तृत बालावबोधोमां आवे छे एवी अवान्तर चर्चाओ के दृष्टान्तो प्रस्तुत अनुवादोमां नथी. त्रण समसामयिक विद्वानोए एक ज मूल ग्रन्थना करेला त्रण जुदा जुदा गद्यानुवादो मूलना त्रिविध भाषान्तर उपरांत एक ज भावना वाचक विविध शब्दो तेम ज एक मूल शब्दनी तत्कालीन जुदी जुदी अर्थच्छायाओ तथा एना रूपभेदो—जेमां तत्कालीन बोलीभेदोनुं प्रतिबिंब पण पड्युं होय एवो पूरो संभव छे—जाणवामां उपयोगी थशे.

‘ षष्टिशतक प्रकरण ’ अने तेनो कर्ता

धर्म के तत्त्वज्ञानने लगता कोई एक विषय उपर प्राकृत पद्यमां रचायेली संक्षिप्त कृतिओने जैन साहित्यमां ‘ प्रकरण ’ कहे छे. ‘ षष्टि-शतक ’ आवुं एक प्रकरण छे, अने एमां १६० गाथाओ छे (१६१मी गाथा केवल पुष्पिका रूप छे), ते उपरथी एने ‘ षष्टिशतक ’ नाम आपवामां आवेलुं छे.* एना कर्त्ता नेमिचन्द्र भंडारी नामे श्रावक गृहस्थ छे. आ कृतिनुं चोक्कस रचनावर्ष मळतुं नथी, पण विक्रमना तेरमा शतकमां नेमिचन्द्र विद्यमान हता ए निश्चित छे. जैन श्वेतांबर संप्रदायना खरतर गच्छनी विविध पट्टावलीओमां तेम ज मेरुसुन्दर उपाध्यायकृत बालावबोध (पृ. २)मां उल्लेख छे ते प्रमाणे, तेओ मारवाडमां मरोट

---

* मूल ‘षष्टिशतक’ ते उपरनी तपोरत्न अने गुणरत्ननी टीका (सं. १५०१) सहित जैन सत्यविजय ग्रन्थमाळाना छठ्ठा पुष्प तरीके अमदावादथी ई. स. १९२४मां प्रसिद्ध थयेल छे. गुजराती अनुवाद साथे ‘षष्टिशतक’ मूल सं. १९७६मां जामनगर-वाळा पं. हीरालाल हंसराजे छपावेल छे, वळी मोहनलालजी जैन ग्रन्थमाळाना बीजा पुष्प तरीके ई. स. १९१७मां बनारसथी एनो मूळ पाठ बहार पडेल छे. उपर नोंधेली, तपोरत्न अने गुणरत्ननी संस्कृत टीका उपरांत ‘ षष्टिशतक ’ उपर सहज-मंडनकृत व्याख्यान, धर्ममंडनगणिकृत टीका तथा कोई अज्ञात कर्तारचित अवचूरि जाणवामां आवेल छे (जुओ प्रो. वेलणकरकृत ‘ जिनरत्नकोश ’, पृ. ४०४).

गामना वतनी हता. ए काळे जैन संप्रदायमां चैत्यवासी यतिओनुं प्राबल्य हतुं अने महावीरे प्रबोधेला आकरा संयममार्गनी अपेक्षाए एमनामां ठीक ठीक शिथिलाचार प्रवर्तती हतो. आथी 'द्रव्य, क्षेत्र, काल अने भावना मेळथी' सद्गुरुनी शोध करता नेमिचन्द्र पाटणमां आव्या तथा त्यां खरतर गच्छना आचार्य जिनपतिसूरि (सं. १२१०-१२७७)नी चर्या जोई, परम संयमी गुरु तरीके एमना आचारोनुं अवलोकन करी, एमनो उपदेश सांभळीने व्रतो स्वीकार्यां. पछी पोताने वतन पाछा आवीने पोताना पुत्र आंबडने नेमिचन्द्र जिनपतिसूरि पासे लई गया, अने तेमनी पासे पुत्रने महोत्सवपूर्वक दीक्षा अपावी. नेमिचन्द्रना आ पुत्र दीक्षित थया पछी आचार्य जिनेश्वरसूरि (सं. १२४५-१३३१) तरीके प्रसिद्ध थया. आ जिनेश्वरसूरिनी दीक्षानुं वर्णन विक्रमना चौदमा शतकमां थयेला कवि सोममूर्तिकृत 'जिनेश्वरसूरि संयमश्री विवाहवर्णन' ए नामना ३३ कडीना संक्षिप्त काव्यमां छे (प्रसिद्धः श्री. जिनविजयजी संपादित 'जैन ऐतिहासिक गुर्जर काव्यसंचय'मां तथा श्री. अगरचंद नाहटा संपादित 'ऐतिहासिक जैन काव्यसंग्रह'मां).

'षष्टिशतक'नी गाथाओमां शुद्ध धर्म, मिथ्यात्व, सदाचार, सद्गुरु, कुगुरु आदिनुं स्वरूप कर्ताए मुखपाठे करी शकाय एवी गाथाओमां संक्षेपमां समजाव्युं छे. निरूपणमां जे अभिनिवेश अने शिथिलाचार सामेनो प्रकोप जणाय छे एनुं कारण उपर सूचवी छे तेवी ए समयनी धार्मिक-सामाजिक परिस्थितिमां रहेलुं छे.

वळी आ प्रकरणनी रचनामां नेमिचन्द्रथी थोडा ज समय पूर्वे थई गयेला आचार्य जिनवल्लभसूरि (स्वर्गवास सं. ११६७)कृत 'पिंड-विशुद्धि प्रकरण'नुं वाचन पण एक प्रेरक कारण हतुं. जिनवल्लभसूरि पहेलां कूर्चपुरगच्छीय चैत्यवासी जिनेश्वरसूरिना शिष्य हता. पण एक

वार 'दशवैकालिक सूत्र' वांचतां, सावद्य औषध आदि करता पोताना अति प्रमादी गुरुने जोई तेओ उद्वेग पाम्या, अने पछी शुद्ध क्रियानिधि, नवांगी वृत्तिकार—जैन आगमसाहित्यनां नव अंगो उपर प्रमाणभूत संस्कृत टीकाओ रचनार–अभयदेवसूरि (विक्रमना बारमा शतकनो पूर्वार्ध) पासे जई शास्त्राध्ययन कर्युं अने एमना शिष्य थया, तथा 'पिंडविशुद्धि प्रकरण', 'सार्ध शतक' आदि संख्याबंध ग्रन्थो रच्या.* जिनवल्लभ-सूरिए जे चैत्यो बंधाव्यां एने 'विधिचैत्य' नाम आपी एमां शास्त्रविरुद्ध कार्य थाय नहि ए प्रकारना श्लोको तेमणे कोतराव्या.+ नेमिचन्द्रने पोताना अनुभव अने अवलोकनने परिणामे जे कहेवानुं हतुं एने आ

---

* 'खरतर गच्छ पट्टावली संग्रह' (सं. जिनविजयजी), पृ. १०-२४.

+ सामाजिक इतिहासनी दृष्टिए रसप्रद एवा, एमांना बे श्लोक नीचे प्रमाणे छे—

अत्रोत्सूत्रजनक्रमो न च न च स्नात्रं रजन्यां सदा
साधूनां ममताश्रयो न च न च स्त्रीणां प्रवेशो निशि ।
जातिज्ञातिकदाग्रहो न च न च श्राद्धेषु ताम्बूलमि-
त्याज्ञाऽत्रेयमनिश्रिते विधिकृते श्रीजैनचैत्यालये ॥

(अर्थात् अनिश्राए विधिपूर्वक थयेला आ जैन चैत्यमां एवी आज्ञा छे के एमां उत्सूत्र जनोनो संचार नथी, एमां रात्रे स्नात्र-स्नान नथी, साधुओए एमां ममतापूर्वक रहेवानुं नथी, एमां रात्रे स्त्रीओने प्रवेश नथी, एमां जाति अने ज्ञातिनो कदाग्रह नथी, अने एमां श्रावकोए तांबूल खावानुं नथी.)

इह न खलु निषेधः कस्यचिद् वन्दनादौ
श्रुतविधिबहुमानी त्वत्र सर्वोऽधिकारी ।
त्रिचतुरजनदृष्ट्या चात्र चैत्यार्थवृद्धि-
व्ययविनिमयरक्षाचैत्यकृत्यादि कार्यम् ॥

(अर्थात् अहीं कोईने पण वंदनादिनो निषेध नथी, शास्त्रविधिने मान आपनार सौ कोईनो अहीं अधिकार छे, आ चैत्यना धननी वृद्धि व्यय विनिमय रक्षा तथा धार्मिक कार्यो त्रणचार जणनी नजर नीचे करवानां छे.)

'षष्टिशतक'नी १६१मी गाथामां 'विधिमार्गरत भव्य' जनो माटे पोते ए रचना करी होवानुं नेमिचन्द्रे कह्युं छे ते आ साथे सरखाववा जेवुं छे.

पूर्वकालीन आचार्येना जीवनकार्य अने ग्रन्थरचनाओमांथी अनुमोदन मळ्युं अने परिणामे तेणे 'षष्टिशतक'नी गाथा १०७-८मां तथा १२९मां जिनवल्लभसूरिने बहुमानपूर्वक बिरदाव्या छे अने 'प्रभु जिनवल्लभ जेवा तो मात्र जिनवल्लभ छे' (पहु जिणवल्लहसरिसो पुणो वि जिणवल्लहो चेव) एम कहीने एमना प्रत्येनो पोतानो अनन्य भक्तिभाव दर्शाव्यो छे. गाथा १२९ स्पष्ट रीते पुरवार करे छे के नेमिचन्द्र जिनवल्लभसूरिने प्रत्यक्ष मळ्या नहोता, पण जिनवल्लभना ग्रन्थोए ज नेमिचन्द्रना हृदय उपर ऊंडी असर करी हती.* विक्रमना तेरमा शतकनी उत्तरकालीन अपभ्रंशमां नेमिचन्द्रे रचेलुं 'जिनवल्लभसूरि गुरुगुणवर्णन' नामे ३५ कडीनुं काव्य पण ए ज वस्तु पुरवार करे छे (जुओ परिशिष्ट १). नेमिचन्द्रनी बीजी एक रचना पण उपलब्ध छे, अने ते नव गाथाओनुं प्राकृत 'पार्श्वनाथ स्तोत्र'. आ ग्रन्थना परिशिष्ट २ मां ते पहेली ज वार प्रकाशित थाय छे.

एक पूर्वकालीन प्रकरणग्रन्थ, धर्मदास गणिकृत प्राकृत 'उपदेशमाला'नो+ मानभेर उल्लेख नेमिचन्द्रे 'षष्टिशतक'नी ९६मी गाथामां

* 'उपमितिभव प्रपंच कथा' (सं. ९६२)ना कर्ता सिद्धर्षिए पोताथी थोडा ज समय पूर्वे थई गयेला हरिभद्रसूरिनो उल्लेख पोताना 'धर्मबोधकर गुरु' तरीके कर्यो छे अने तेमणे 'ललितविस्तरा' वृत्ति अनागतनो विचार करीने पोताने माटे ज निर्मी होवानुं बहुमानपूर्वक नोंध्युं छे. एक पूर्वकालीन विद्वाने पोतानी आध्यात्मिक दृष्टिने बराबर रुचे एवी कृति लखी ए माटे सिद्धर्षिना ए प्रशंसाना उद्गारो छे. नेमिचन्द्रनो जिनवल्लभसूरि साथेनो आध्यात्मिक संबंध लगभग ए प्रकारनो ज गणी शकाय.

+ जैन अनुश्रुति प्रमाणे, धर्मदासगणि महावीरना शिष्य हता. परन्तु 'उपदेशमाला'नी भाषा तो उत्तरकालीन जैन महाराष्ट्री छे ए जोतां आ अनुश्रुतिने केटले अंशे प्रमाणभूत गणवी ए प्रश्न छे. विक्रमना दशमा सैका करतां तो ए प्राचीनतर छे ज, केम के ए समये थयेला सिद्धर्षिए 'उपदेशमाला' उपर टीका रचेली छे.

कर्यो छे. 'षष्टिशतक'नी सामान्य उपदेशात्मक गाथाओ उपर 'उपदेश-माला'नी असर छे, अने 'षष्टिशतक'ना बालावबोधकारो पण एमांथी वखतोवखत अवतरणो टांके छे (पृ. १५, २२, ५१, ६१, ७०, ९६, ९७, ११६, १२५, १३०, १४१, १५४, १५५).

'षष्टिशतक'ना बालावबोधकारो-(१) सोमसुन्दरसूरि

सोमसुन्दरसूरि (सं. १४३०-१४९९) ए तपागच्छना सुप्रसिद्ध आचार्य छे. प्रकांड पंडित होवा साथे तेओ एक शिष्ट ग्रंथकार छे, अने संस्कृत तेम ज गुजरातीमां पद्यात्मक तेम ज गद्यात्मक एमनी संख्याबंध रचनाओ जाणवामां आवेली छे. 'भाष्यत्रयचूर्णि,' 'कल्याणक स्तव,' 'रत्नकोश,' 'नवस्तवी' आदि एमनी संस्कृत धार्मिक कृतिओ छे. गुजराती पद्यमां 'आराधना रास' अने 'नेमिनाथ नवरसफाग' तथा गद्यमां 'उपदेशमाला' (सं. १४८५), 'योगशास्त्र,' षडावश्यक,' 'आराधना पताका,' 'नवतत्त्व,' 'भक्तामर स्तोत्र' आदि उपर तेमणे बालावबोधो रच्या छे.* एमनो 'षष्टिशतक' बालावबोध, एना अंतमां उल्लेख छे ते प्रमाणे, सं. १४९६मां रचायेलो छे. आ प्रतिष्ठित आचार्ये तत्कालीन धार्मिक प्रवृत्तिओमां हंमेशां आगेवानी लीधी हती अने पाटण तथा खंभातना सुप्रसिद्ध प्राचीन पुस्तकभंडारोनी सुव्यवस्था करी हती अने ताडपत्र उपर लखायेला प्राचीनतर ग्रन्थोनुं कागळ उपर संस्करण देवसुन्दरसूरि अने सोमसुन्दरसूरिना मंडळे कर्युं हतुं. सोमसुन्दरसूरिना बहोळा शिष्यमंडळनी साहित्यसेवा पण अनेक दृष्टिए नोंधपात्र छे. एमना केटला ये शिष्यो प्रसिद्ध वादीओ, उपदेशको

* 'उपदेशमाला' अने 'योगशास्त्र'ना बालावबोधोमांथी कथाओ आचार्य जिनविजयजी-संपादित 'प्राचीन गुजराती गद्यसन्दर्भ'मां लेवामां आवी छे.

અને ગ્રન્થકારો હતા. એમના એક શિષ્ય પ્રતિષ્ઠાસોમે રચેલા સંસ્કૃત 'સોમસૌભાગ્ય' મહાકાવ્યમાં એમનું જીવનચરિત ગૂંથેલું છે.*

(૨) જિનસાગરસૂરિ

બીજા બાલાવબોધકાર જિનસાગરસૂરિ ખરતર ગચ્છની પિપ્પલક શાખાના આચાર્ય છે. તેમણે સં. ૧૫૦૧માં 'ષષ્ટિશતક' ઉપર બાલાવબોધ રચ્યો હતો.+ ગુજરાત અને રાજસ્થાનમાં જુદે જુદે સ્થળે એમણે કરાવેલી મૂર્તિઓની પ્રતિષ્ઠાવિધિના સંખ્યાબંધ લેખો સં. ૧૪૯૧થી સં. ૧૫૧૦ સુધીનાં જુદાં જુદાં વર્ષના મળે છે.§ 'ષષ્ટિશતક'ના બાલાવબોધ ઉપરાંત તેમણે સંસ્કૃતમાં કેટલીક ગ્રન્થરચના કરેલી છે. પંડિત ઉદયશીલ ગણિના આગ્રહથી તેમણે 'હૈમલઘુવૃત્તિ'ના ચાર અધ્યાયની દીપિકા રચી હતી. વળી એમણે 'કર્પૂરપ્રકરણ' ઉપર અવચૂરિ રચેલી છે, જેનો પ્રથમાદર્શ એમના વિદ્વાન શિષ્ય તથા રાજશેખરકૃત 'કર્પૂરમંજરી' અને સોમપ્રભાચાર્યકૃત 'સિન્દૂરપ્રકર'ના ટીકાકાર ધર્મચન્દ્રે લખ્યો હતો.‡ જિનસાગરસૂરિના હસ્તે વિદ્યાવિસ્તારની કેટલીક પ્રવૃત્તિ થયાના ઉલ્લેખ પણ મળે છે. ઉદાહરણ તરીકે, એમના ઉપદેશથી સં. ૧૪૯૨માં મેવાડના દેવકુલપાટકપુરમાં (અર્થાત્ દેલવાડા ગામમાં) એક ઊકેશવંશીય શ્રાવકે 'આવશ્યક બૃહદ્વૃત્તિ' લખાવી હોવાનો નિર્દેશ મળે છે. વળી એમના

---

* આ પ્રભાવશાળી આચાર્ય અને એમના શિષ્યમંડળની પ્રવૃત્તિઓ માટે જુઓ શ્રી. મોહનલાલ દ. દેસાઈકૃત 'જૈન સાહિત્યનો સંક્ષિપ્ત ઇતિહાસ,' પૃ. ૪૫૧-૭૧.

+ એ જ, પૃ. ૪૮૬ ઉપર શ્રી. દેસાઈએ એનું રચનાવર્ષ સં. ૧૪૯૧ નોંધ્યું છે, પણ મેં ઉપયોગમાં લીધેલી હાથપ્રતમાં સં. ૧૫૦૧નો સ્પષ્ટ ઉલ્લેખ છે.

§ 'જૈન ગુર્જર કવિઓ,' ભાગ ૨, પૃ. ૬૯૪.

‡ 'જૈન સાહિત્યનો સંક્ષિપ્ત ઇતિહાસ,' પૃ. ૪૭૫, ૫૧૫

उपदेशथी सं. १४९५मां लखायेली ' धर्मोपदेशमाला वृत्ति 'नी प्रति लींबडीना ग्रन्थभंडारमां सचवायेली छे.*

(३) मेरुसुन्दर उपाध्याय

जूना गुजराती साहित्यमां मेरुसुन्दर उपाध्याय बालावबोधकार तरीके सुप्रसिद्ध छे. तेओ विक्रमना सोळमा शतकना पूर्वार्धमां थई गया. तेओ खरतर गच्छना आचार्य पांचमा जिनचन्द्रसूरि (सं. १४८७-१५३०)ना शिष्य हता, अने ' षष्टिशतक 'नो बालावबोध एमना पोताना ज कथन प्रमाणे (पृ. ३), एमणे गुरुनी आज्ञाथी बनारसमां रच्यो हतो. मेरुसुन्दरे ' शत्रुंजय स्तवन 'नो बालावबोध सं. १५१८मां तथा तरुणप्रभसूरिकृत ' षडावश्यक बालावबोध 'ने अनुसरीने ए ज ग्रन्थ उपरनो नवो बालावबोध सं. १५२५मां मांडवगढ (मांडु)मां रच्यो हतो. वळी ' शीलोपदेशमाला, ' ' पुष्पमाला प्रकरण, ' ' भक्तामर-स्तोत्र, ' ' वृत्तरत्नाकर, ' ' भावारिवारण, ' ' कल्पप्रकरण, ' ' कर्पूरप्रकर ', ' योगशास्त्र, ' ' पंचनिर्ग्रन्थी ' आदि ग्रन्थो उपरना एमना बालावबोधनी प्रतो आ पहेलां जाणवामां आवेली छे.+ ' षष्टिशतक 'ना बालावबोधमां रचनावर्ष नथी, पण उपरनी वीगतो जोतां विक्रमना सोळमा शतकना पूर्वार्धमां एनी रचना थया विषे शंका नथी. मूळ ग्रन्थना भावने सरल गुजराती गद्यमां, संक्षेपमां रजु करवानी मेरुसुन्दरनी हथोटी प्रशंसापात्र छे, अने एमनी ' उपाध्याय ' पदवी उपरथी अनुमान थाय छे के तेओ शिष्योने भणाववानुं कार्य करता हशे अने ए कार्य करतां करतां शिष्य-हितार्थे आटला बधा मूळ ग्रन्थोने गुजरातीमां उतारवानुं एमने सूझ्युं हशे.

---

* ' जैन गुर्जर कविओ, ' भाग २, पृ. ६९४.

+ ए ज, भाग १, पृ. ६०१-२; भाग ३, पृ. १५८२-८५; ' जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास, ' पृ. ५२२.

उपर जणावेली रचनाओ उपरांत नेमिचन्द्रकृत एवा बे बालाव-बोधो जाणवामां आव्या छे, जेनी नोंध आ पहेलां कोई विद्वाने करी नथी. एक छे गुजराती आलंकारिक सोमपुत्र वाग्भटकृत 'वाग्भटालंकार' (विक्रमना १२मा शतकनो उत्तरार्ध)नो बालावबोध तथा बीजो बौद्ध विद्वान धर्मदासगणिकृत अलंकारग्रन्थ 'विदग्धमुखमंडन'नो बालावबोध. आ बन्ने कृतिओ खास नोंधपात्र एटला माटे छे के संस्कृत अलंकार-ग्रन्थोना बालावबोधो जवल्ले ज मळे छे. 'वाग्भटालंकार'नो बालावबोध मेरुसुन्दरे सं. १५३५मां रचेलो छे; ए ज वर्षमां लखेली एनी २७ पत्रनी शुद्ध प्रति में लगभग अढी वर्ष पहेलां जोधपुरना महाराजाना पुस्तकालयमां जोई हती अने एमांथी थोडी जरूरी नोंध करी लीधी हती. 'विदग्धमुखमंडन'ना बालावबोधनी जोधपुरना जैन भंडारनी एक अपूर्ण हस्तलिखित पोथी उपाध्याय विनयसागरजीए उपयोग माटे मोकली हती. ए प्रति लिपि उपरथी सत्तरमा शतकमां लखायेली जणाय छे. आ बन्ने कृतिओ, उपर कह्युं ते प्रकारे, महत्त्वनी होवाथी एमांथी केटलांक नमूनारूप अवतरण अहीं आपुं छुं. पहेलां **वाग्भटालंकार बालाव-बोधनो** आदि-अंत जोईए—

आदि—

॥ र्द० ॥ उँ नमः श्रीश्रुतदेवतायै ॥

सिद्धं सिद्धिदमीश्वरं मघवता संस्तूयमानं परं
स्फूर्जत्संसृतिदुस्तराब्धितरणे चञ्चत्तरीसुन्दरम् ।
आनन्दामलवल्लरीप्रविलसत्प्रत्यग्रधाराधरं
वन्दे नाभिनरेन्द्रनन्दनमहं श्रीमद्युगादीश्वरम् ॥ १ ॥

अनेकसाधुसाध्वीभिः श्रावकश्राविकादिभिः ।
पूरितोऽस्ति धराख्यातो गच्छः खरतराभिधः ॥ २ ॥

तस्मिन् बभूवुरमी नानालब्धिसमाश्रिताः।
सौभाग्यभाग्यनिलयाः श्रीजिनभद्रसूरयः ॥ ३ ।

तेषां गुरूणामुदिते सुपट्टे नानागुणालंकृतचारुवर्ष्मणः।
प्रसन्नचित्ता जयिनस्तु सन्ति भट्टारकाः श्रीजिनचन्द्रसूरयः ॥ ४ ॥

आसाद्य तत्प्रसादं करोति सरलं स्फुटार्थवररचितम्।
इह **मेरुसुन्दरगणिर्वाग्भटबालावबोधनं** चारु ॥ ५ ॥

इहादौ सकलकल्याणमालाललितवल्लरीसजलजलधरसंनिभं विविधार्थसिद्धिवितरणकुशलममलगुणचक्रवालकलितकलेवरं श्रीयुगादीश्वरं स्तुवन्नाह।

श्रियं दिशतु वो देवः श्रीनाभेयजिनः सदा।
मोक्षमार्गं सतां ब्रूते यदागमपदावली ॥ १ ॥

श्रीनाभेयजिनो देवः श्रीआदिनाथः। वो युष्मभ्यं सदा श्रियं दिशतु ददातु। श्रीनाभेयजिनदेव श्रीआदिनाथ तह्म रहइं सदा श्री लक्ष्मी दिउ। यदागमपदावली सतां सत्पुरुषाणां मोक्षमार्गं ब्रूते। जेह जिनना आगम सिद्धांतना पद वाक्यनी आवली श्रेणि सत्पुरुष रहइं मोक्षमार्ग बोलइ। अन्यस्य कस्यचित् पदानां पङ्क्तिर्दृष्टा सती सतां सत्पुरुषाणां मार्गं प्रकाशयति। अनेराइ कहि पुरुषना पद चरणनी श्रेणि दीठी हूती सत्पुरुषनइ मार्ग प्रकासइ। इसिउ उक्तिलेश जाणिवउ ॥ छ ॥

साधुशब्दार्थसन्दर्भं गुणालङ्कारभूषितम्।
स्फुटरीतिरसोपेतं काव्यं कुर्वीत कीर्त्तये ॥ २ ॥

कविः काव्यं कुर्वीत। कवीश्वर काव्य करइ। किमर्थं। कीर्तये। कीर्त्तिनइ अर्थि। किंविशिष्टं काव्यम्। साधुशब्दार्थसन्दर्भम्। साधु दोषरहित शोभन छइं जे शब्द नइ अर्थ तेह तणु सन्दर्भ रचनाविशेष छइं। पुनः किंविशिष्टं काव्यम्। गुणालङ्कारभूषितम्। गुण सौंदर्यादिक अलंकार उपमादिक तेहिं भूषित अलंकृत छइ। पुनः किंविशिष्टं काव्यम्। स्फुटरीतिरसोपेतम्। स्फुट प्रकट छइ जे रीति पांचाल्यादिक अनइ

रस शृंगारादिक तेहिं उपेत संयुक्त छइ । तत्र रीतिनामुद्देशः कथ्यते । उक्तं च ।

द्वित्रिपदा पाञ्चाली लाटीया पञ्च सप्त वा यावत् ।
शब्दाः समासवंतो भवति यथाशक्ति गौडीया ॥
असमस्तपदा वैदर्भी रीतिः । इति रीतिचतुष्कम् ॥

द्वित्रीणि वा यदानि यस्यां रीतौ सा पाञ्चाली । बि त्रिणि वा पद हुइं जेणइं रीतिइं ते पांचाली रीति जाणिवी । पंचभिः सप्तभिः पदैर्लाटीया रीतिर्ज्ञातव्या । पांचि अथवा साति पदि लाटीया रीति जाणिवी । यथाशक्ति समासवंतः शब्दा गौडीया रीतिर्भवति । यथाशक्तिइं समास-संयुक्त शब्द हुइ ते गौडीया रीति जाणिवी । असमस्तपदा पृथक्पदा वैदर्भी रीतिर्ज्ञातव्या । समस्त पादि जूइ जूइ पदि वैदर्भी रीति जाणिवी । ईणइ परिइं रीति च्यारिइ जाणिवी । एहिं रीतिसंयुक्त काव्य कीर्त्तिनइ अर्थि हुइ । एतद्विपरीतं तु काव्यं विपरीतफलमेव स्यादिति तात्पर्यार्थः । एह तु विपरीतकाव्य विपरीतफल हुइ इसु तात्पर्यार्थ जाणिवु ॥ छ ॥

अंत—

अथ बीभत्समाह ॥

बीभत्सः स्यात् जुगुप्सातः सोऽहृद्यश्रवणेक्षणात् ।
निष्ठीवनास्यभङ्गादिः स्यादत्र महतां न च ॥ ३० ॥

जुगुप्सातः बीभत्सरसः स्यात् । जुगुप्सा कुत्सित वस्तुनु बीभत्स रस हुइ । विभावादिनस्योपदिशति । स बीभत्सः अहृद्यश्रवणेक्षणात् । निष्ठीवनास्यभङ्गादिः स्यात् । ते बीभत्स रस अहृद्य सूगामणो सांभलिवानु अनइ जोइवानु । निष्ठीवन थूंकिवूं, आस्यभंग मुख मोडवूं इत्येवमादिक हुइ । च अन्यत् अत्र महतां निष्ठीवनास्यभंगादयः प्रायो न वक्तव्या इति ॥ च अनइ महांत गुरूआनइं निष्ठीवन आस्यभंगादिक प्राय सहाजिइ न हुइं ॥ छ ॥

शांतरसमाह ॥

सम्यग्ज्ञानसमुत्थानः शान्तो निःस्पृहनायकः ।
रागद्वेषपरित्यागात् सम्यग्ज्ञानस्य चोद्भवः ॥ ३१ ॥

सम्यग्ज्ञानसमुत्थानः शान्तो रसः स्यात् । सम्यक् ज्ञाननु ऊपनु शांत रस हुइ । कीदृशः । निःस्पृहनायकः । निःस्पृह निराकांक्षी नायक छइ । च अन्यत् रागद्वेषपरित्यागात् सम्यक् ज्ञानस्य उद्भवो भवेत् । रागद्वेषना परित्याग छांडिवातु सम्यक् ज्ञाननु उद्भव उत्पात्ति हुइ ॥ छ ॥

उपसंहरन्नाह ॥

दोषैरुज्झितमाश्रितं गुणगणैश्चेतश्चमत्कारिणं
नानालङ्कृतिभिः परीतमभितो रीत्या स्फुरन्त्या सताम् ।
तैस्तैस्तन्मयतां गतं नवरसैराकल्पकालं कवि-
स्रष्टारो रचयन्तु काव्यपुरुषं सारस्वतध्यायिनः ॥ ३२ ॥

कविस्रष्टार आकल्पकालं कल्पान्तं यावत् काव्यपुरुषं रचयन्तु निष्पादयन्तु । कविस्रष्टा आकल्प कल्पांत जाण काव्यपुरुष रचउ नीपजावउ । कीदृशं । दोषैः श्रुतिकट्वादिभिः उज्झितम् । दोष श्रुतिकट्वादिके उज्झित त्यक्त छइ । तथा गुणगणैः औदार्यादिभिः आश्रितम् । तथा गुणना समूहे औदार्यादिके आश्रित छइ । तथा चेतः चमत्कारिणं । चित्तनइं चमत्कार करतु छइ । नानालङ्कृतिभिः परीतम् । नानाविध अलंकारे परीत युक्त छइ । तथा सतां सत्पुरुषाणां विदुषां वा अभितः स्फुरन्त्या रीत्या तैस्तैः नवरसैः तन्मयतां गतम् । तथा संत विद्वांसनी सविहुं प्रकारि स्फुरंती उल्लसंती रीतिइं करी तेह तेह नवरासि करी तन्मयतागत प्राप्त छइ । किंलक्षणाः कवयः । सारस्वतध्यायिनः । सारस्वतमंत्रनू ध्यान करता छइ ।

श्रीमत् खरतरगच्छे श्रीमज्जिनभद्रसूरींद्राः
तत्पट्टे विजयंते जिनचंद्रजितीश्वरा गुरवः ॥

तेषामंतेवासी वाचकवरमेरुसुंदरः शुचिवाक् ।
चक्रे वाग्भटविहितालंकारस्य प्रवरविवृतिम् ॥
बाणाग्निबाणशशिधरसंख्ये वर्षे विशुद्धतरदिवसे ।
ग्रन्थः समर्थितोऽयं नंदतु यावज्जगति मेरुः ॥

संवत् १५३५ वर्षे श्रीखरतरगच्छे* श्रीमेरुसुंदरोपाध्यायैः वाग्भटालंकार-बालावबोधः कृतोऽयं चिरं नंदता[त्] ॥ छ ॥ छ ॥ कल्याणमस्तु ॥ आ० कालासुत श्रीवत्सलखितं ॥ छ ॥ छ ॥ छ ॥ श्री ॥ छ ॥ संवत् १५३५ वर्षे द्वितीय श्रावणे सुदि पंचमी गुरुवासरे इंद्रीग्रामे ऊकेशगच्छे श्रीसिद्धाचार्य-संताने भ. श्रीसिद्धसूरिविजयराज्ये पं० जयरत्नानामुपदेशेन लिखापितोऽयं वाग्भटालंकारबालावबोधः ॥ ई० ॥ ओसवालज्ञातीय मं० तारा भा० रम्माई पु० मं. जगाकेन पु० पहिराजयुतेन भा० रंगूश्रेयसे ॥ शुभं भूयात् दायिकवाचकयोः ॥ श्रीरस्तु ॥

'विदग्धमुखमंडन'ना बालावबोधनी जे एक मात्र प्रति जाणवामां आवेली छे एमां ३५ पत्र मळे छे, पण प्रति अधूरी छे. जो के छेवटना मात्र छ श्लोकनो ज बालावबोध एमां न होई प्रतिने अखंडितकल्प गणी शकाय. अर्थात् मूळ प्रतिनुं छेल्लुं एकाद पत्र गूम थयेलुं होवुं जोईए. आथी **विदग्धमुखमंडन बालावबोध**ना प्रारंभमांथी थोडो नमूनो जोईए—

....

....

तस्मिन् वराः श्रीजिनभद्रसूरयः सिद्धान्तवारांनिधिपूर्णचन्द्राः ।
सरोषकन्दर्पविमुक्ततीक्ष्णबाणावलीगर्वहरा बभूवुः ॥ ३ ॥
तेषां महानन्दजुषां गुरूणां विशिष्टपट्टे जयिनस्तु सन्ति ।
सरस्वतीदत्तवरा अनेकशिष्याश्रिताः श्रीजिनचन्द्रसूरयः ॥ ४ ॥

* मूळ प्रतमां आ अर्धी पंक्ति उपर कोइए हरताळ फांसेली छे.

संप्राप्य सिद्धिकारणमादेशं मेरुसुन्दरस्तेषाम् ।
कुर्वे बालकबोधं विदग्धमुखमंडनस्य ॥ ९ ॥

शास्त्रारम्भे शास्त्रकारो विशिष्टेष्टदेवतानमस्कारलक्षणं मङ्गलाचरणं करोति। इह तु धर्मदासगणिः विशिष्टेष्टदेवं शौद्धोदनिं स्तुवन् वक्ति। तस्यायमादिश्लोकः।

सिद्धौषधानि भवदुःखमहागदानां
पुण्यात्मनां परमकर्णरसायनानि ।
प्रक्षालनैकसलिलानि मनोमलानां
शौद्धोदनेः प्रवचनानि चिरं जयन्ति ॥ १ ॥

शौद्धोदनेर्बौद्धस्य प्रवचनानि चिरं चिरकालं यावत् जयन्ति सर्वोत्कर्षेण वर्तन्ते। शौद्धोदनि बौद्धनां वचन चिरकाल सीम जयवंत वर्त्तइं। किंविशिष्टानि प्रवचनानि। भवदुःखमहागदानां सिद्धौषधानि। भव संसार तणां छइ जे दुःख तेह जि भणित रोग तेह टालिवानइ अर्थि सिद्ध औषध छइ। छ। पुनः किंलक्षणानि वचनानि। पुण्यात्मनां परमकर्णरसायनानि। पुण्यवंतना कर्णनइ विषयि रसायन समान छइ। तथा मनोमलानां प्रक्षालनैकसलिलानि। मनोमल मनना तापक पषालवानइ अर्थि एक सलिल पाणी छइ। छ।

जयन्ति सन्तः सुकृतैकभाजनं परार्थसम्पादनसद्व्रतस्थिताः।
करस्थनीरोपमविश्वदर्शिनो जयन्ति वैदग्ध्यभुवः कवेर्गिरः ॥ २ ॥

संत साधु जयवंत वर्त्तइं। किंविशिष्टाः संतः। सुकृतैकभाजनं। सुकृत पुण्यनूं एक भाजन पात्र छइं। किंविशिष्टाः संतः। परार्थसम्पादनसद्व्रतस्थिताः। पर अनेरानां अर्थसंपादन कार्यकरण तेह जि भणित सद्व्रत तेहनइ विषयि स्थित रह्यां छइं। तथा करस्थनीरोपमविश्वदर्शिनः। कर हस्तनइ विषयि स्थिर रह्युं छइ जे नीर पाणी तेहनी परिइं अनित्य विश्व देषता छइं। तथा कवेर्गिरः जयन्ति। कवीश्वरनी वाणी जयवंत वर्त्तइं। कथंभूता गिरः। वैदग्ध्यभुवः। वैदग्ध्य चतुरमानी भू उत्पत्तिस्थानक छइ। छ।

आक्रान्तेव महोपलेन मुनिना शप्तेव दुर्वाससा
सातत्यं बत मुद्रितेव जतुना नीतेव मूर्च्छां विषैः ।
बद्धेवातनुरज्जुभिः परगुणान् वक्तुं न शक्ता सती
जिह्वा लोहशलाकया खलमुखे विद्धेव संलक्ष्यते ॥ ३ ॥

जिह्वा परगुणान् वक्तुं अशक्ता सती खलमुखे एवंविधा संलक्ष्यते। जीभ पर अनेराना गुण बोलिवा अशक्त हूंती दुर्जननइ मुखि एहवी दीसइ। उत्प्रेक्ष्यते। महोपलेन महाद्दषदा आक्रान्ता इव। जाणीइ महांत मोटइ पाषाणिइ चांपी हुइ जिसी। उत्प्रेक्ष्यते। दुर्वाससा मुनिना शप्ता इव। जाणीइ किरि दुर्वासा ऋषीश्वरिइं शपी हुइ जिसी। बत इति खेदे। सातत्यं निरंतरं जतुना मुद्रिता इव। अनइ बत इसिइं खेदिं। सदाइं लाषइं मूंद्री हुइ जिसी। तथा विषैः मूर्च्छां नीता इव। विषिं हालाहलि मूर्च्छा पमाडी-हुइ जिसी। उत्प्रेक्ष्यते। अतनुरज्जुभिर्बद्धा इव। जाणीइ किरि मोटे दोरे बांधी हुइ जिसी। उत्प्रेक्ष्यते। लोहशलाकया विद्धा इव। जाणीइ किरि लोहनी शिलाकाइ बांधी हुइ जिसी। छ।

आ बे बालावबोधोमां मूळना श्लोको समजावतां संस्कृत अने गुजरातीनुं जे मिश्रण करवामां आव्युं छे ते ए समये शिष्योने आ प्रकारना ग्रन्थो भणाववानी पद्धतिमां सामान्य होवुं जोईए. जैन आगम-ग्रन्थो उपरनी चूर्णिओना गद्यमां केटलीक वार प्राकृत साथे संस्कृतनो संकर जोवा मळे छे ते आ साथे सरखावी शकाय. जो के उपर्युक्त बालावबोधोमां संस्कृत अने गुजराती वाक्यो साथोसाथ आवतां होवा छतां परस्परथी तद्दन अलग छे; कोई पण वाक्य एमां मिश्रभाषामय (Macaronic) भाग्ये ज जोवा मळशे.

'षष्टिशतक'ना अन्य बालावबोधो

उपर्युक्त त्रण लेखको-सोमसुन्दरसूरि, जिनसागरसूरि अने मेरुसुन्दर उपाध्याय-कृत बालावबोधो उपरांत 'षष्टिशतक'ना बीजा केटलाक बालावबोध जाणवामां आव्या छे. सने १९५०मां मारा विद्यागुरु पू.

मुनिजी पुण्यविजयजीना सौजन्यथी मने जेसलमेरनी ज्ञानयात्रा करवानो अवसर मळ्यो त्यारे त्यांना किल्लाना भंडारमां 'षष्टिशतक'ना एक बालावबोधनी २४ पत्रनी पोथी जोवामां आवी हती. एमां कर्तानुं नाम नथी, पण आ ग्रन्थमां समावेला उपर्युक्त त्रणे बालावबोधोथी ते भिन्न छे. षष्ठीना मारु-गुर्जर अनुग 'रहइं' अने 'हूइं'ने स्थाने अहीं मारवाडी प्रत्यय 'रउ' (अर्वाचीन 'रो'), 'री' मळे छे, अने ए त्रणे बालावबोध करतां आनी रचना केटलाक दसका पछीथी थई होवानो तर्क थाय छे. लिपि उपरथी पोथी विक्रमना सत्तरमा सैकामां नकल करायेली जणाय छे. आ पुस्तकमां प्रकाशित थयेला बालावबोधो साथे तुलना माटे एनो आदि-अंत अहीं उतारुं छुं.

आदि—

प्रणम्य मारुदेवाह्वं जिनं निर्जितमन्मथम् ।
करोमि षष्टिशतके वार्ता सौख्यावबोधिनीम् ॥

अरिहं देवो सुगुरु सुद्धं धम्मं च पंचनवकारो ।
धन्नाण कयत्थाणं निरंतरं वसइ हिययम्मि ॥ १ ॥

इये गाथानइ विषइ च्यार बोल सारभूत छइ ते कहीइ । किहा ते च्यार बोल । **अरिहं देवो** कहतां अरिहंत देव । **सुगुरु** क० तीर्थंकररी आज्ञाइं करी सहित जे गुरू २ । **सुद्धं धम्मं च** क० सूधउ वीतरागनउ भाष्यउ धर्म्मइ, **पंचनवकारो** क० पांच परमेष्ठिनमस्कार । ए च्यारेइ बोल **धन्नाण** क० जे धन्य भाग्यवंत, **कयत्थाणं** क० कीध्या छइ साध्या छइ जीए अर्थ एहवा जे जीव तियांरइ हीयानइ विषइ **निरंतरं** क० निरंतर सदा सर्वदा ए च्यारेइ वाना **वसइ** क० वसइ ।

हिव बि गाहाइ आपणा आत्मानइ सीख कहइ छइ ।

अंत—

इणइ प्रकारइ **भंडारी नेमिचंद** क० नेमिचंद्र भंडारीयइ साजण तणइ पुत्रइ श्रीजिनेश्वरसूरि तणइ पिताइ **रइयाउ** क० नवी जोडी केतली-

एक **गाहाउ** क० गाथा १६१ प्रमाण । जि के **विहिमग्गरया** क० वीतराग देवरउ भाष्यउ मार्ग्ग तीयइ मार्गिइ चालिवा सावधानइ हवा **भव्वा** क० भव्यजीव ते **पढंतु** क० भणंतु । **जाणंतु** क० अर्थ जाणउ जिम सम्यक् प्रकारइ भणतां थकां गुणतां थकां वली मनमाहि अर्थ भावतां थकां अहो जीवो तुम्हे **जंतु सिवं** शाश्वता अनंतो मोष्यरा सुख पामउ ॥ १६१ ॥

इति श्रीनेमिचन्द्रभंडारिकविरचितषष्टिशतकप्रकरणस्य बालावबोध समाप्त ॥ शुभं भवतु ॥

आ उपरांत जेसलमेर अने बीकानेरना प्राचीन ग्रन्थभंडारोमां 'षष्टिशतक' उपरना केटलाक स्तबक (टबा) पण जोवामां आवे छे. क्षमारत्नना शिष्य धर्मदेवे सं. १५१५मां रचेला बालावबोधनी तथा जयसोमकृत स्तबकनी नोंध मळे छे,* पण ए कृतिओनी हाथप्रतो मारा जोवामां आवी नथी. प्रायः विक्रमना १९मा शतकमां थयेला मोहनकृत 'षष्टिशतक'नो दूहामय अनुवाद जैन सत्यविजय ग्रन्थमाळाना 'षष्टि-शतक'ना संस्करण साथे बहार पडेलो छे.

हाथप्रतो अने संपादन

आ ग्रन्थना संपादनमां कुल चार हस्तलिखित प्रतोनो उपयोग करवामां आव्यो छे. एमां सोमसुन्दरसूरिना बालावबोधनी प्रतो बे छे, ज्यारे जिनसागरसूरि तथा मेरुसुन्दरना बालावबोधनी एक-एक प्रत छे. प्रत्येक प्रतमां बालावबोध उपरांत मूल प्राकृत 'षष्टिशतक'नो पण ते

* 'जिनरत्नकोश,' पृ. ४०४. 'मंत्रीकर्मचन्द्रवंशावलीप्रबन्ध'ना कर्ता खरतरगच्छीय जयसोम विक्रमना १७मा शतकमां थई गया तथा छ कर्मग्रन्थो उपर बालावबोध (सं. १७१६) रचनार तपागच्छीय जशसोम-शिष्य जयसोम १८मा शतकमां थई गया. परन्तु ए बेमांथी कया जयसोमे आ स्तबक रच्यो छे ते 'जिनरत्नकोश'मां जे टूंकी नोंध छे ते उपरथी कही शकाय नहि.

ते बालावबोधकारने संमत एवो पाठ आपेलो छे. आ चारे हस्तलिखित प्रतो पाटणना प्रसिद्ध श्रीहेमचन्द्राचार्य ज्ञानमन्दिरमां राखवामां आवेला संघना भंडारनी छे. बधी ज प्रतो जैन धाटीनी देवनागरी लिपिमां लखायेल छे.

(१) सोमसुन्दरसूरिना बालावबोधनी बे प्रतो पैकी पहेली प्रतनो अनुक्रमांक १३४९ छे. एनुं कद १०॥"×४॥" छे अने पत्र २५ छे. प्रत्येक पृष्ठ उपर नियमित रीते १५ पंक्तिओ लखायेली छे. आ प्रतिनी नकल सं. १५१३मां थयेली छे.

(२) सोमसुन्दरसूरिना बालावबोधनी बीजी प्रतनो अनुक्रमांक १३५० छे. एनुं कद १०॥"×४॥" छे अने पत्र ४२ छे. जो के एनुं १२मुं पत्र मळतुं नथी. प्रत्येक पृष्ठ उपर ११ पंक्ति लखेली छे. आ प्रतिमां नकल कर्यानुं वर्ष नथी, पण लिपि उपरथी ते सोळमा सैकानी लागे छे. आ प्रत पहेलीनी तुलनाए अशुद्ध छे. मूळ प्रतीक वांचीने लखवामां पण लहियानी घणी भूलो थयेली छे. जेम के—चतुर्थी अने षष्ठी विभक्तिनो अर्थ व्यक्त करता '°हूइ'ने स्थाने तेणे सर्वत्र 'हुइं' लख्युं छे. केटलीक वार तो आखी पंक्तिओ लहियाना प्रमादने लीधे पडी गयेली छे, जेनो यथास्थान निर्देश कर्यो छे.

(३) जिनसागरसूरिना बालावबोधनी प्रतनो अनुक्रमांक १०१५ छे. एनुं कद १२"×४॥" छे अने पत्र १४ छे. मात्र पहेला पृष्ठ उपर २० पंक्ति लखेली छे, बाकीनां बधां पृष्ठ उपर १९ पंक्तिओ छे. 'षष्टिशतक'नो बालावबोध आ पोथीमां १२मा पत्रना पहेला पृष्ठ उपर पहेली पंक्तिमां पूरो थाय छे; ए पछी पोथीना अंतभाग सुधी 'गौतमपृच्छा'नो बालावबोध लखायेलो छे, जेमां कर्तानुं नाम नथी. आ प्रतिमां लिपिनो मरोड घणो सुन्दर छे.

लेखनवर्ष नथी, पण लिपि उपरथी प्रति सोळमा शतकमां लखायेली जणाय छे.

(४) मेरुसुन्दर उपाध्यायना बालावबोधनी प्रतनो अनुक्रमांक ३८८२ छे. एनुं कद १०।"×४।।" अने पत्र १६ छे. प्रत्येक पृष्ठ उपर १५ पंक्तिओ लखेली छे. प्रति शुद्ध छे. लेखनवर्ष नथी, परन्तु लिपि उपरथी ते पण सोळमा सैकामां लखायेली जणाय छे.

आम सोमसुन्दरसूरिकृत बालावबोधनी ज बे प्रतो होवाथी ए ज बालावबोधनां पाठान्तरो नोंधी शकायां छे. एमां सं. १५१३ वाळी प्रतने मुख्य प्रत तरीके स्वीकारी छे अने बीजी प्रतना पाठभेदो टिप्पणमां टांक्या छे. पण 'धरीइ-धरीइं,' 'अनइ-अनइं,' 'तीणइ-तीणइं,' 'विषइ-विषइं,' ए प्रकारना पाठभेदो के जे जूनी गुजरातीमां बहु विपुल छे ते नोंध्या नथी.

'षष्टिशतक'नी मूल प्राकृत गाथानी बालावबोधकारोए करेली प्रस्तावना, पछी मूळ गाथा तथा ते पछी अनुक्रमे त्रण बालावबोधो ए प्रमाणेनो क्रम मुद्रणमां राखेलो छे. एमां **[सो.]**, **[जि.]** अने **[मे.]** ए संक्षेपो वडे अनुक्रमे सोमसुन्दर, जिनसागर अने मेरुसुन्दर ए त्रण बालावबोधकारो समजवाना छे.

'षष्टिशतक'नी मूल गाथाओनो पाठ पण सं. १५१३ वाळी प्रत प्रमाणे स्वीकारीने बीजी प्रतमां क्वचित् मळता अन्य पाठो नोंध्या छे. एमां पण 'एअं-एयं,' 'सअल-सयल,' जेवा पाठो जेमां उद्वृत्त स्वरनो लघुप्रयत्न 'य'कार थई जाय छे ए नोंध्या नथी. सोमसुन्दरसूरिना बालावबोधनी आ बीजी प्रतनो निर्देश कां तो वीगतथी अथवा '**सो.**' एम संक्षेपथी टिप्पणमां कर्यो छे. मूळ गाथाओनां पाठान्तरो जिनसागर-सूरि अने मेरुसुन्दरमां कवचित् मळे छे त्यां एमनो उल्लेख '**जि.**'

तथा '**मे.**' ए प्रमाणेना संक्षेपना निर्देशपूर्वक कर्यो छे. बालावबोधकारोए आपेलां अवतरणोनां मूळ स्थानो ज्यां खोळी शकायां छे त्यां तेमनो निर्देश कौंसमां कर्यो छे.

श्रीहेमचन्द्राचार्य ज्ञानमन्दिरनी आ बधी हाथप्रतो उपयोग माटे मेळवी आपवा माटे पू. मुनिश्री पुण्यविजयजीनो तथा ज्ञानमन्दिरना व्यवस्थापकोनो हुं उपकार मानुं छुं.

परिशिष्टो—अगाउ कह्युं छे ते प्रमाणे, नेमिचन्द्र भंडारीनी बे कृतिओ आ ग्रन्थना परिशिष्ट तरीके लेवामां आवी छे—एक छे उत्तरकालीन अपभ्रंशमां रचायेलुं 'जिनवल्लभसूरि गुरुगुणवर्णन' अने बीजी छे प्राकृत 'पार्श्वनाथ स्तोत्र.'

(१) 'जिनवल्लभसूरि गुरुगुणवर्णन' जेसलमेरना बडा भंडारमांनी बे पानानी प्रतमांथी मळ्युं छे. ए बे पत्र उपर पत्रांक ८९-९० लख्या छे, तेथी अनुमान थाय छे के ते कोई सळंग मोटी हाथप्रतनो अंश छे. ९० अंकवाळा पत्रना बीजा पृष्ठनो अर्धा करतां वधारे भाग कोरो छे, तेथी लागे छे के मूळ सळंग पोथीनुं आ छेल्लुं पत्र हशे. लिपि उपरथी प्रति पंदरमा सैकामां लखायेली जणाय छे. एनी पुष्पिकामां खरतरगच्छना जे आचार्योनां नाम आप्यां छे एमां छेल्लुं नाम सागरचन्द्रसूरिनुं छे, तेथी ए आचार्यना जीवनकाळमां एनी नकल थई हशे एवो स्वाभाविक तर्क थाय छे. सागरचन्द्रसूरिनुं अवसान सं. १४९१मां थयुं हतुं ('खरतरगच्छ पट्टावलीसंग्रह,' पृ. ३२), एटले एनाथी थोडां वर्ष पहेलां प्रति लखाई हशे.

श्री. अगरचंद नाहटासंपादित 'ऐतिहासिक जैन काव्यसंग्रह' (पृ. ३६९-७२)मां आ काव्य छपायुं छे. जो के एमां उपयोगमां लेवायेली प्रति करतां जेसलमेरवाळी प्रति निःशंकपणे जूनी छे. श्री. नाहटानी वाचनानां पाठान्तरो टिप्पणमां नोंध्यां छे.

(२) नेमिचन्द्र भंडारीकृत ' पार्श्वनाथ स्तोत्र ' अहीं प्रथम वार प्रसिद्ध थाय छे. गुजरात विद्यासभा (अमदावाद)ना हस्तलिखित पुस्तकसंग्रहमां एक प्राचीन जैन संग्रहपोथीनां ३६१ थी ३९४ सुधीमां पत्र छे, जेमां प्रकीर्ण संस्कृत-प्राकृत स्तोत्रादि लखेलां छे. एमां पत्र ३७८-७९ उपर आ ' पार्श्वनाथ स्तोत्र ' छे.

आ पोथीना पत्र ३९४ उपर ' महावीर स्तुति 'नी नकल पूरी थाय छे तेने अंते नीचे प्रमाणे पुष्पिका छे—

श्रीमहावीरस्तुतिः । कृतिरियं श्रीदेवमूर्त्युपाध्यायानां संवत् १३८७ वर्षे कार्तिक शुदि १० सोमवारे.... भसापुरे श्रीजिनप्रबोधसूरिशिष्येण आनन्द-मूर्त्तिना लिखितं ॥

' पार्श्वनाथ स्तोत्र ' तो आनी पहेलां, पत्र ३७८-७९ उपर, लखायेलुं छे, एटले एनी नकल पण सं. १३८७ना कारतक सुद १० पहेलां क्यारेक थयेली होवी जोईए.

त्रणे बालावबोधो तथा ' जिनवल्लभसूरि गुरुगुणवर्णन 'मांना नोंध-पात्र शब्दोनो कोश पुस्तकने अंते उमेर्यो छे. वडोदरा विश्वविद्यालयना गुजराती विभागना श्री. इन्द्रवदन अंबालाल दवे, एम. ए. एमणे शब्दकोश तैयार करवामां केटलीक सहाय करी हती ए वस्तुनी अहीं साभार नोंध लेवामां आवे छे.

अनुलेख

प्रस्तावनानां पृ. २०-२२नां बीबां गोठवाई गया पछी, ऊंझाना महाजनना हस्तलिखित पुस्तकभंडारमांथी, पू. मुनिश्री पुण्यविजयजीना सौजन्यथी ' विदग्धमुखमंडन 'ना मेरुसुन्दर उपाध्यायकृत बालावबोधनी सं. १६७२ मां नकल थयेली एक संपूर्ण प्रति मळी छे. जोधपुरवाळी

प्रति अपूर्ण होवाथी एमांथी आ कृतिनो अंतभाग मळतो नहोतो, ते आमांथी मळे छे. ऊंझानी प्रति अनुसार, आ बालावबोधनो अंतभाग नीचे प्रमाणे छे—

सदागतीत्यादि* । अयं दीनः अस्तं एष्यति । ए दीप अस्त पामिसिइ । कीदृशः । सदागतिहतोच्छ्रायः सदा नित्यमेव गति गमनि करी हत हणिउ उच्छ्राय उद्यम छइ । तमसः वश्यता । तमहूइं वश्यपणूंउ छइ । विधुरेकः शिवस्थितः । विधुर विह्वल तां कुण शिवस्थित कल्याणवंत ते । अपि तु नही को । द्वि० । अयं दीपः अस्तं एष्यति । ए दीप अस्त पामिसिइ । कीदृशः । सदागतिहतोच्छ्रायः । सदागति वायुइ हत हणिउ उच्छ्राय छइ । तमसो वश्यतां गतः । तम अंधारहूइं वश्यतां पामिउ छइ । एको विधुः शिवस्थितः । एक विधु चंद्रमा शिव श्रीमहादेवनइ विषयि स्थित छइ ॥ छ ॥ ६९ ॥

पूर्णचन्द्रेत्यादि । निर्मलांबरा कामिनी कस्य स्वांतं मनः एकान्तमदनोत्तरं न करोति । अपि तु सर्वस्यापि करोति । निर्मल अंबर वस्त्र इसी कामिनी स्त्री काहिंनूं स्वांत मन एकांति मदनोत्तर मदनाधिक्य न करइ । अपि तु सविहुनूं करइ । कीदृशी । पूर्णचंद्रमुखी । पूर्णिमाना चंद्रमावत् मुख छइ । रम्या मनोहरा द्वि० यामिनी रात्रिः कस्य स्वान्तं एकान्तमदनोत्तरं न करोति । अपि तु सर्वस्यापि करोति । कीदृशी । पूर्णचन्द्रमुखी । संपूर्णचंद्र जि भणित मुख छइ । रम्या रमणीया निर्मलांबरा । निर्मल अंबर आकाश छइ ॥ छ ॥ ७० च्युतदत्ताक्षरजाति ॥ छ ॥

इति श्रीधर्मदासविरचितविदग्धमुखमंडनकाव्यस्य वृत्तिरियं समाप्ता । ग्रंथाग्रं १४५४ संवत् १६७२ वर्षे ।

---

* ऊंझानी हाथप्रतमां मूलना आखा श्लोको नहि आपतां आ प्रमाणे केवळ मूलनां प्रतीको टांक्यां छे.

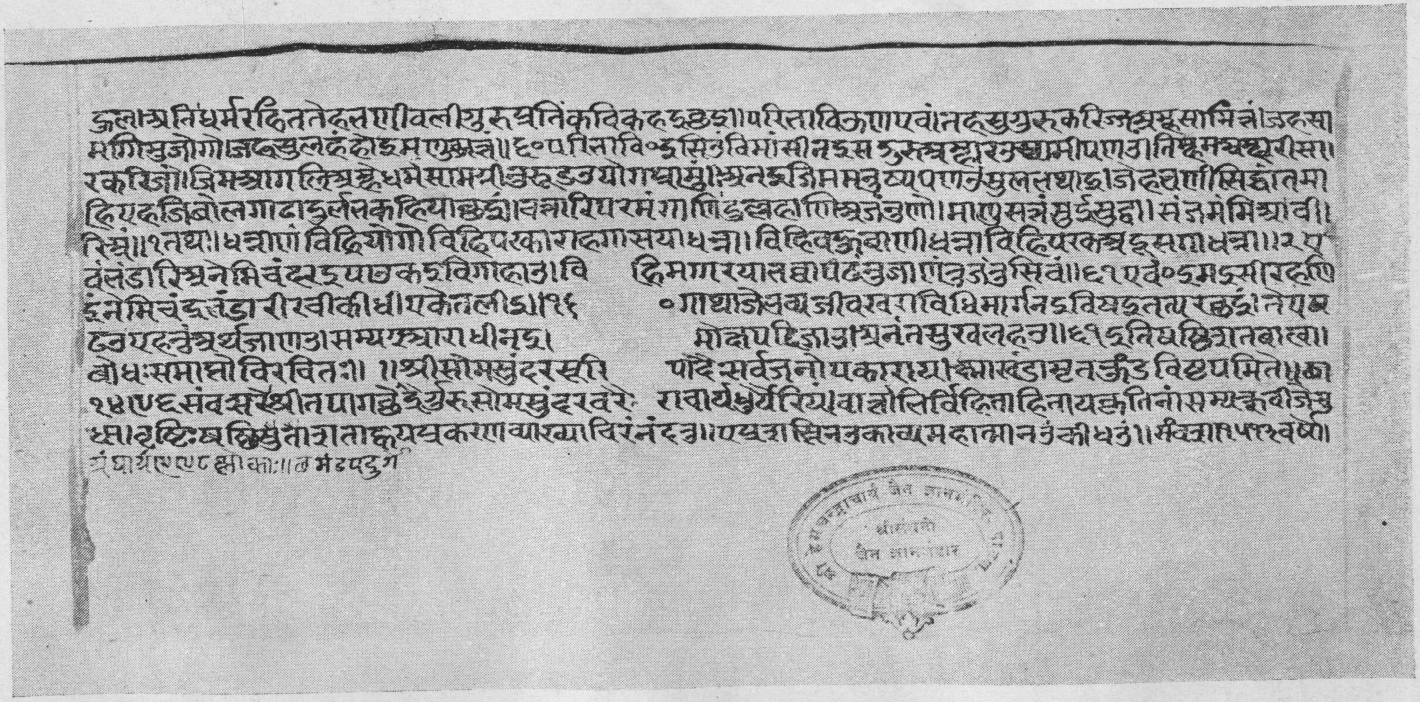

सोमसुन्दरसूरिकृत बालावबोधनी सं. १५१३मां लखायेली हस्तप्रतनुं अंतिम पत्र

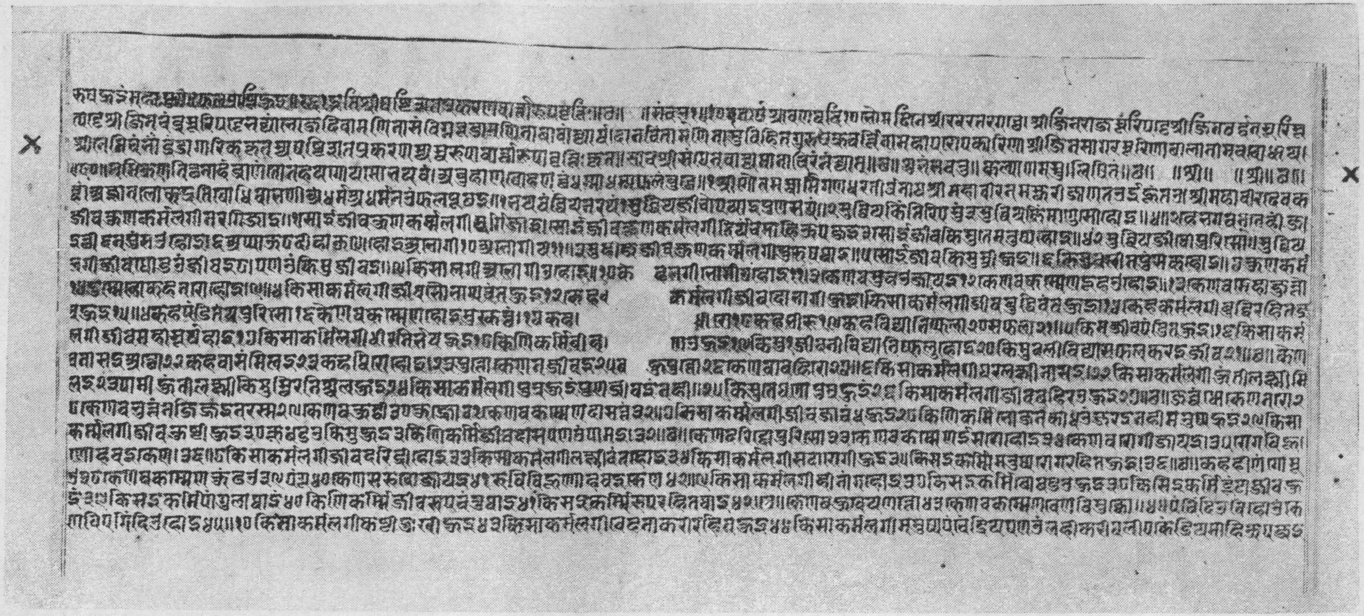

जिनसागरसूरिकृत बालावबोधनी हस्तप्रतनुं अंतिम पत्र [त्रीजी पंक्तिमां पुष्पिका समाप्त थाय छे.]

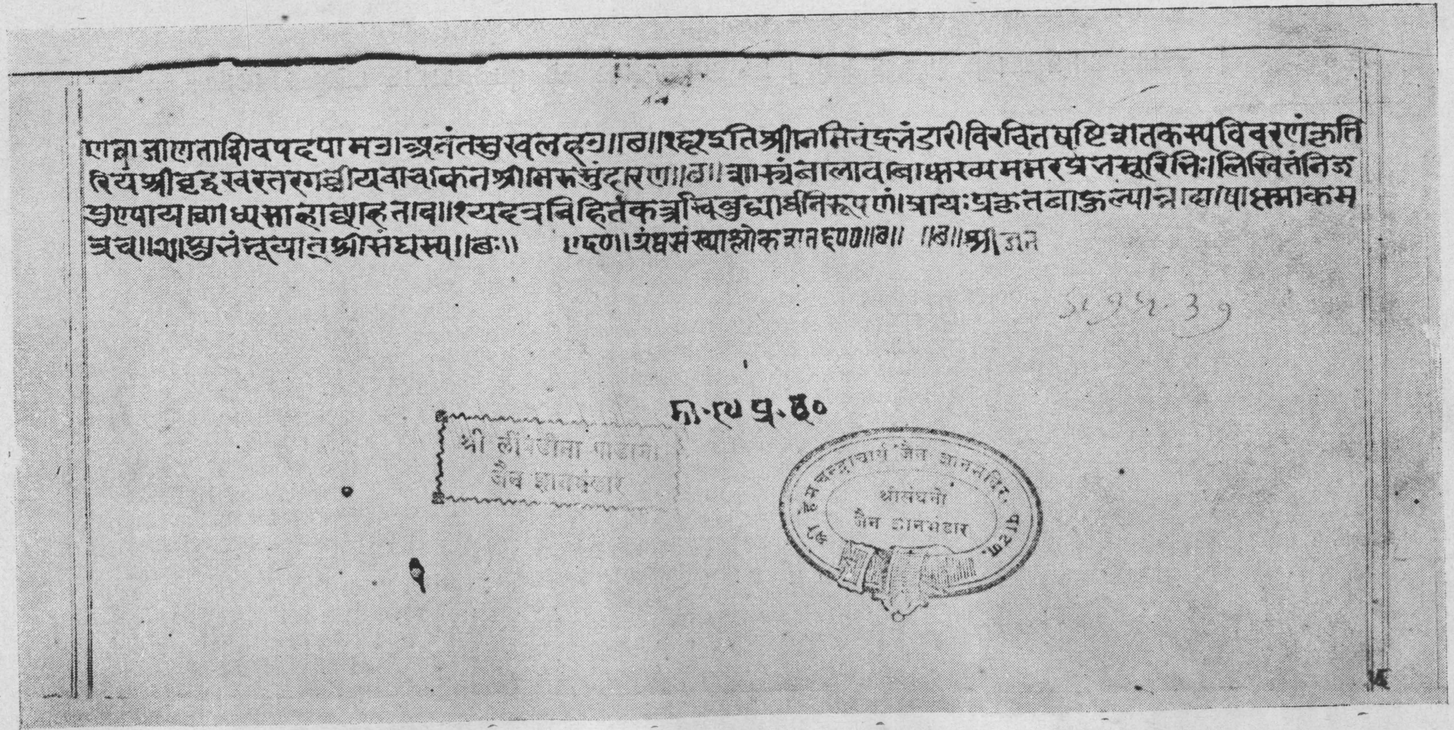

मेरुसुन्दरकृत बालावबोधनी हस्तप्रतनुं अंतिम पत्र

नेमिचन्द्र भंडारी-विरचित

षष्टिशतक प्रकरण

त्रण बालावबोध सहित

[सो.] सिरिवद्धमाणजिणवरपाए निअगुरुपए य नमिऊण ।
सट्ठिसयस्स य एयं वक्खाणं किंपि जंपेमि ॥ १ ॥
नात्रोक्तिमेलो न विभक्तियुक्तिः क्रियादियोगोऽपि च नो विलोक्यः ।
भावार्थसारैर्विधीयतैषा वृत्तिर्मया मुग्धविबोधनार्थम् ॥ २ ॥

नेमिचन्द्र भंडारी पहिलउं तिस्यउ[1] धर्म्म न जाणतउ । पछइ श्री**जिनवल्लभसूरि**ना गुण सांभली[2] अनइ तेहना कीधा **पिंडविशुद्धि**प्रमुख ग्रंथनइं परिचइं साचउ धर्म्म जाणिउ । तउ तीणं[3] श्रीधर्म सघलाइना मूल भणी श्रीसम्यक्त्वनी शुद्धि अनइ तेहनी दृढतानइ काजि १६० गाथा कीधी । सारभूत तिहां पहिलूं सर्व धर्म्म-माहि सारतत्त्वभूत च्यारि बोल पहिली गाहइं[4] कहि[5] छइ ॥

[जि.] श्रीगुणवितः फलिनः सुरद्रुसदृशोऽभितो महात्मानः ।
विजया भूर्वृषभाद्या अपि ददतां मंगलं नित्यम् ॥ १ ॥*
श्री**नेमिचन्द्र**विरचितचंचद्वैराग्यरङ्गकस्यैषा ।
श्री**जिनसागर**प्रभुणा बालावबोधाख्या ॥ २ ॥
षष्टिशताख्यप्रकरणव्याख्या प्रस्तूयतेऽत्र नव्येयम् ।
भव्यजनबोधहेतोर्वार्त्तारूपा विशुद्धा च ॥ ३ ॥

---

१ तिस्यउं. २ संभाली. ३ तीणइ. ४ गाहइ. ५ कइ.

* आ तथा आ पछीनो श्लोक मूल प्रतमां आम अशुद्ध ज प्राप्त थाय छे.

तथा हि। श्रीखरतरगच्छि श्रीजिनेश्वरसूरिनइ पिताइं श्रीनेमिचन्द्र भंडारी श्रावकि विधिपक्षस्थापक ए साठिसउ ग्रन्थ कीधउ। तिहां धुरि सर्व विघ्नोपशान्त्यर्थ इष्टदेवतानमस्काररूप नामग्रहणपूर्वक सम्यक्त्वस्थापक ग्रन्थकार प्रथम गाथा कहइ छइ ॥

[मे.] सयलसुरासुरनमियं पासजिणं पणमिऊण भावेणं।
बालाण बोहणत्थं पयडं विवरेमि सट्ठिसयं ॥ १ ॥

इहां श्रीखरतरगच्छि निरुपमगुणनिधान श्रीजिनवल्लभसूरिनइ पाटि श्रीजिनदत्तसूरि। तेहनइ पाटि श्रीजिनचन्द्रसूरि। तत्पट्टालंकार श्रीजिनपत्तिसूरि श्रीपत्तननगरमाहि विजयवंत वर्त्तइं। इसइ प्रस्तावि मरुदेशमंडन मरोटि नगरि श्रीनेमिचन्द्र भंडारी भार्या लखमिणि पुत्र आंबड सहित सुखिइं वसइं। अन्यदा प्रस्तावि गाथा १ नेमिचन्द्र भंडारीइ व्याख्यान माहि सांभलि। ति किसी।

अक्खंडियचारित्तो वयगहणाउ जो भवे निच्चं।
तस्स सगासे दंसण वयगहणं सोहिगहणं च ॥ १ ॥

ए गाथा सांभलीनइ आलोअणनी इच्छाइं बार वरस सीस-सुगुरुनी परीक्षा जोअतउ २ पत्तन नगरि आव्यउ। सगली पोसालइं द्रव्य क्षेत्र काल भावनइ मेलि सुगुरु अणलहतउ मनमाहि चिन्ता धरतउ हाट एकनइ थडइ बइठउ छइ। इसइ प्रस्तावि श्रावक पांच-सात श्रीजिनपत्तिसूरिना गुण वर्णवता सांभली पूछ्या। तुम्हे केहना गुण कहउ छउ? तेहे श्रीजिनपत्तिसूरिना गुण कह्या। पछइ तींह श्रावकां संघाति पोसालइं आवी गुरुनी देसना सांभली। गुरुनां लक्षण ईर्यासमिति प्रमुख जोअतउ रात्रिइं पोसालनइ खूणइ सूतउ २ चींतवइ। एतां दिवसमाहि प्रमादनउं कारणु न दीठउं। रात्रिं तउ पउंजता जइणाइं हीडइं छइं। सिध्याइं ध्यान करइं छइं। पणि वार २ महातमा ढूंढीमाहि

जाइं। तिहां कांइ कारण संभावीइ। पछइ पाछिली रात्रिनी पोरसिइं तेहमाहि पइसी राष वेलू तेल देषी। थोडी थोडी वस्तु गांठिं बांधी सूतउ। प्रभाति पोसाल बाहिरि जई जउ जोअइ तउ वेलू राष तेल दीठा। विस्मय ऊपनइ भोलउ चेलउ पूछिउ। ए सिइ काजि आवइ? चेलइ सर्व बात कही। वेलू वर्त्तिवानइ काजि। रक्षा जीवजइणानइ काजि। तेल लेपनइ काजि। इम संदेह भागउ। पच्छइ प्रगट हुइं सिद्धांततत्त्व सांभली श्रीसम्यक्त्वमूल बार व्रत पडिवजी **भरोढि** पाछउ आवी जान करी **आंबड** पुत्रनइं साथिं लेई गुरु समीपि आवी महामहोत्सवपूर्वक पुत्रनइं दीक्षादि वरावी। ते क्रमिइं २ भणतां गुणतां चारित्र पालतां श्री**जिनेश्वरसूरि** हूया। पछइ **नेमिचन्द्र भंडारीइं** श्री**जिन-पत्तिसूरि**नी रीति देषी। श्री**जिनवल्लभसूरि**ना कीधा **पिंड-विशुद्धि**प्रमुख ग्रन्थ सांभली ते गुरुनां वचन सर्व सिद्धान्तनइं मिलतां जाणी आस्था ऊपनी। सम्यक्त्वनी दृढतानइ काजि परोपकार भणी साठिसउ गाथारूप ग्रन्थु कीधउ। हिव ते गाथा लोकनइं समझाविवा भणी श्री**जिनचन्द्रसूरि**नइ आदेसि **वणारीसि मेरुसुन्दरि** गणिइं वार्त्ता बालावबोध संक्षेपिं कीजइ। तिहां धुरि च्यारि बोल सारभूत कहीइं॥

अरिहं देवो सुगुरु सुद्धं धम्मं च पंचनवकारो।
धन्नाण कयत्थाणं निरंतरं वसइ हिययम्मि॥ १॥

[**सो.**] एक श्रीअरिहंत वीतरागदेव[1] बीजा सुगुरु शुद्ध चारित्रिया शुद्धमार्गप्ररूपक गुरु[2] त्रीजउ शुद्ध धर्म जीवदयामूल कर्म-क्षयहेतु धर्म चउथउ पंचपरमेष्ठिनमस्कार सर्व सिद्धांतमाहि सार सर्व-पापक्षयंकर महामंत्र नउकार। ए च्यारि बोल सर्व जगत्[3] अनइ सर्व धर्म्ममाहि सार कुणह एक धन्य उत्तम भव्य अनइ कृतार्थ भाग्यवंत

१ °देवा. २ गरु. ३ जग.

आसन्नसिद्धि कइजिनइ हियइ निरंतर सदैव वसइ। अभागीआ अभव्य दूरभव्य जीव ए एकइ बोल न प्रामइं ॥ १ ॥

[जि.] समस्त धर्ममाहे मूलिगउ सम्यक्त्व धर्म तिणि कारणि सम्यक्त्व जाणावइ। अरिहंत देव ते किसु। राग द्वेष मोह मद मत्सर अहंकार प्रमुख दोष जेह माहे न हुइं। अंतरंग वइरी जिणि जीता हण्या ते अरहंत कहीइ। अनइ सुगुरु सुसाधु गुरु जे नीराग निःस्पृह क्षमावंत शान्त दान्त जितिंद्रिय निःकाम तपि करी दुर्बल। सम तृण मणि लोष्टु कांचन। सम शत्रु मित्र। साचउ धर्माक्षरनउ कहणहार। चातुर्गतिक संसार हूंतउ अहर्निश संजम चारित्र अभिग्रह पालइ। ते सुगुरु कहीइ। तथा चोक्तं।

अक्खरु अक्खइ कंपि न ईहइ। चउग्गइ भवसंसारह बीहइ।
संजम नियमह खणि नवि चूकइ। ए साधम्मिय सुहगुरु वुच्चइ ॥ १ ॥

सुद्धं धम्मं। जीवदयामूल धर्म। तथा चोक्तं।

दुःखं पापात् सुखं धर्मात् सर्वदर्शनसंमतम्।
न कर्त्तव्यमतः पापं कर्त्तव्यो धर्मसङ्ग्रहः ॥ २ ॥

ए त्रिहुं मिली सम्यक्त्व कहीइ। अनइ वली नउकारहूइं मोटाइ देखालिवा भणी **पंच नवकारो** पंचपरमेष्टिनमस्कार चऊद पूर्वनउं सार कहीइ। ए च्यारइ अरहंत सुसाधु गुरु जिनप्रणीत धर्मरूप सम्यक्त्व अनइ नउकार। **कयत्थाणं** कृतार्थ कृतकृत्य **धन्नाणं** धन्य भाग्यवंत पुरुषने हिय वसइ। **निरंतर** सदैव ॥ १ ॥

[मे.] अरिहंत देव सुसाधु गुरु अनइ सूधउं वीतरागनउं भाषिउं धर्म पंचपरमेष्टि नवकार ए च्यारि बोल धन्य भाग्यवंत कृतार्थ कीधा अर्थ संसार संबंधीया जेहे तींहनइ हीइ सदाइ वसइ। पणि बहुल संसारी जीवनइ हीइ कांई वसइ नहीं ॥ १ ॥

[सो.] हिव जे जीव घणु धर्म्म करी न सकइ तेहहूइ तत्त्व कहीइ[1] छइ ।

[जि.] सम्यक्त्वहूइं सुखाराध्यपणउं कहइ ।

[मे.] हिव आत्मानइं सीष कहइ ।

जइ न कुणसि तवचरणं न पढसि न गुणेसि देसि नो दाणं ।
ता इत्तियं न सक्कसि जं देवो इक्क[2] अरिहंतो[3] ॥२॥

[सो.] रे जीव ! जिम आगइ वरसी छमासी मासक्षपण आचाम्लादिक तप करता । केई हवडाइं करइं छइं । ते तउं करी न सकइं तउ म करेसि । जिम एकि अनेक आंग पूर्व प्रमुख सिद्धांत पठता गुणता हिवडाइं पढइ छइ । ते जउ पढी न सकअं[4] तउ म पढेसि । जिम आगइ चउद पूर्व प्रमुख अग्यार आंग[5] बिहु घडी-माहि पाधरां उपराठां गुणता हवडाइं अनेकि कोडि लाख आखा गणइं छइं । तिम[6] जउ गुणी न सकअं तउ म गुणेसि । जिम आगइ सांवत्सरिक[7] दान साढवार कोडि सुवर्णादिकनां दान देता हवडाइं[8] शक्तिमानिइं दिइं छइं तिम जउ दान देई न सकअं तउ म देसि । **ता इत्तियं०** पुण तउं एतलउं करी न सकइं ?[9] । **जं देवो०** जं देव एक अरिहंत वीतराग इति[10] बीजउ नहीं[11] ॥ २ ॥

[जि.] अहो पुरुष ! जइ **तवचरणं** तपश्चरण न करइं । नवउ कांई भणइ नही । आगिलउं भणिउं गुणइ नही । दानई न दिइं । एतलां तपश्चरण भणिवउं गुणिवउं दान देवउं दुःसाध्य छइ । ता तउ

---

१ कही. २ मे. इक्कु. ३ जि. अरहंतो. ४ सकइं. ५ आंगु. ६ तेम. ७ संवच्छरिक. ८ हेवडांइं. ९ सकअं. १० वीतरागइ जि. ११ बीजी प्रतमां आटलुं वधारे छे—जउ एतलउ देवत्त्वइनउ मनि निश्चउ आणअं तउ ताहरउं काज सरइ । ए सम्यक्त्वनउं मूल बीज इसिउ भाव ।

इत्तियं एतलउं न सक्कइं जउ माहरउ एकु जि अरहंत देव। बीजउ नही। इणि कारणि सम्यक्त्व पालतां सुहेलउं ॥ २ ॥

[मे.] अहो जीव! जउ तउं वरसी छमासी प्रमुख तपु करी न सकइं। कालनइ अनुसारि सूधउं चारित्र पाली न सकइं। सिद्धांत-प्रकरणप्रमुख पाठ जउ पढी न सकइं। जइ तउं आगम गुणी न सकइं। दान सुपात्र विषइ देइ न सकइं। तउ तउं एतूंअइ करी न सकइ जि देवु तउ एक अरिहंतइ जि। बीजा हरिहरादिक नहीं ॥ २ ॥

[सो.] को कहिसिइ इहलोकनां सुखनइ काजि बीजा देव आराधीइं छइं। तेह आश्री कहइ छइ।

[जि.] इसुं कही जिनधर्मना करणहारहूइं गुण कहइ छइ।

[मे.] कांइ ते कहइ।

रे जीव! भवदुहाइं इक्कं चिअ हरइ जिणमयं धम्मं।
इयराणं पणमंतो सुहकज्जे मूढ! मुसिओ सि ॥ ३ ॥

[सो.] रे जीव! जिन वीतरागनउ धर्म्म एकलउ जि एकाग्र-मनि आराधीतउ हुंतउ भवसंसारनां दुःख फेडइ। सर्व सुख करइं निश्चइं। **इयराणं** इहलोकनां सुखनइं काजिइं इतर देव रागद्वेषा-द्याक्रान्त[1] क्षेत्रपाल वाराही प्रमुखहूइं नमतउ अनेक उपायनां[2] मानतउ रे **मूढ!** मूर्ख! मुसीअं छअं[3]। तेहे कर्म ऊपहरउं कांई कराइ नहीं। मुहियां धर्म चूकअं[4] छअं ॥ ३ ॥

[जि.] रे जीव! एकु जि जिनमत जिनभाषित धर्म्म **भव-दुहाइं** संसारनां दुःख **हरइ** स्फेडइ! तिणि कारणि हे **मूढ!**

---

१ रागद्वेषाद्याक्रान्ता. २ अनेक नउयाना. ३ छअं मुहिआं. ४ चूकउं.

मूर्ष ! अनेरा देवहूइं प्रणमतउ हूंतउ मुसिउ छइं । सम्यक्त्वरूपिउ धन तेहना हारवइतउ ॥ ३ ॥

[मे.] रे जीव ! एकलु अ जि जिनमत जिनभाषित धर्म्म आराधतां हूंतां **भव** संसारना दुक्खनइं फेडइ । अनइ इतर हरिहरादिकनइं प्रणमतां थोडा सुखनइ काजि **मूढ !** मूर्ख ! मुसाणउ छइ । धर्म्म हूंतउ चूकइ छइ ॥ ३ ॥

[जि.] जिनधर्मनउ प्रभाव कही सम्यक्त्ववंतहूइं मोक्षपदप्राप्ति बोलइ छइ ।

देवेहिं दाणवेहिं य सुओ न[1] मरणाओ रक्खिओ कोइ ।
दढकयजिणसंमत्ता बहुअ वि अयरामरं पत्ता ॥ ४ ॥

[सो.] देव-दानवे जाष शेष क्षेत्रपाल आसपाल गोगा विणायग चामुंडादिके को मरणतउ राखिउ किहांइं न सांभलिउ । तेहे को मरणतउ न रखाइं[2] । निकाचित कर्म कुणइं टाली न सकीइं[3] । जउ एहे को मरणतउ[4] राखिउ हुइ तउ को[5] किहांइं जीवतउ देखीइ । पुण नथी । घणाइ देवदेवता आराधी जमारउ सघलउ मिथ्यात्वनां सइं[6] करीनइ मूआइ जि । आघाइं घणा संसारना जन्ममरण जि उपार्जियां । **दढकय०** दृढ वीतरागनउं सम्यक्त्व पालीनइ **बहु०** घणाइ अनंता[7] जीव अजरामरपणइ पहुता । मोक्ष पाम्या[8] । जन्मजरामरणरहित[9] हूया ॥ ४ ॥

[जि.] देवे दानवे पुण कोई लोक मरण हूंतउ राखिउ सांभलिउ ? अपि तु कोई न सांभलिउ । कोई अमर हूतउ सांभलिउ ? दृष्टीकृत

---

१ बीजी प्रतोमां नथी. २ रक्खइं. ३ सकाइं. ४ मरतउ. ५ कोहि. ६ सइं. ७ अनंता ज. ८ प्राम्या. ९ °मरणा°.

जिनसम्यक्त्व हुइं ते घणाई अजरामरपद पाम्या। एतलइ सम्यकत्व-धारक सघलाई अमर हुइं ॥ ४ ॥

[मे.] देव दानव गोत्रज क्षेत्रपालप्रमुखे किहांई सांभलिउ जे मरणतउ कोई राषिउ ? अपि तु को राषिउ नहीं। पणि दृढ कीधउं जिन ऊपरि सूधउं मन, सम्यक्त्व खरउं जे जीवे पालिउं ते जीव घणा अजरामरपदि मोक्षपदि पहुता ॥ ४ ॥

[जि.] हिव सम्यकत्वनउं प्रमाण कही मिथ्यात्वनउं प्रमाण कहइ छइ।

जह कुवि वेसारत्तो मुसिज्जमाणो वि मन्नए हरिसं।
तह मिच्छवेसमुसिया गयं पि न मुणंति धम्मनिहिं ॥५॥

[सो.] जिम कोएक मूर्ख वेश्या अधम निस्नेह स्त्री तेहनइ व्यसनि वाहिउ तेहहूइं आपणी लक्ष्मी पूरतउ पोतउ[1] हारतउइ मुसितउइ तुच्छ सुखनइं लोभिइं हर्ष मानइं तिम ए अजाणी[2] जीव कूडउ धर्म मिथ्यात्व तेह[3] वेश्या तुच्छ मोहनइं कीधइं इहलोकना चमत्कारमात्रना वाहिया हुंता धर्मरूपिउं निधान गिउंइ जाणइ नहीं। मूर्ख इसिउं न जाणइ ईणइ मिथ्यात्व[4] करी अम्हारउ सघलउ धर्म जाइ छइ। परलोकि अम्हे दुःखिया थासिउं[5] ॥ ५ ॥

[जि.] जिम कोई वेश्यासक्त पुरुष वेश्याइं मुसीतई हूंतउ हर्ष मानइ तिम मिथ्यात्वरूप वेश्याइं मुस्या हूंता धर्मरूपिउं निधान गमिउंई न जाणइं ॥ ५ ॥

[मे.] जिम कोई वेश्यानइ विषइ अनुरक्त रातउ थोडास्या

---

१ पोतउंइं. २ अजाण. ३ तेहरूपिणी. ४ मिथ्यात्त्वि. ५ थासिअं.

विषयनइ काजि धनादिक मुसीतउ हर्ष मानइ तिम मिथ्यात्वरूपिणी वेश्याइं मुसीतउ जीव धर्मरूपीउं निधान गयउं न जाणइ ॥ ५ ॥

[सो.] को इसिउं कहिसइ[1] । आपणइ वडांनइं कुलाचारि चालीइ । एतलउ[2] धर्म । बीजउ विचार कांई न कीजइ । तेह[3] आश्री कहइ छइ ।

[जि.] कुलक्रमागत भावइ तिसु धर्म न करिवउं । ए वात प्रकासइ छइ ।

लोअपवाहे सकुलक्कमम्मि जइ होइ मूढ धम्मु त्ति[4] ।
ता मिच्छाण वि धम्मो थक्का य अहम्मपरिवाडी ॥ ६ ॥

[सो.] रे मूढ ! जउ लोकनइ प्रवाहि आपणइ २ कुलाचारि चालतां धर्म हुइ तउ कुणएक धर्मवंत नहीं ? सघलाइ खाटकी, माछी, वेश्या, घांची, मोची, ठठार प्रमुख सहू आपणइ २ कुलाचारि चालइं छइं । आगिला वडा पूर्वज जे काम करता ते पाछिला[5] करइं छइं । **ता मिच्छाण वि धम्मो०** तउ जे पापी हिंसाना करणहार कुमार्गना चालणहार म्लेच्छ तेहहूइं धर्म हूउ । तेहइ धर्मवंत हूआ । **थक्का०** अधर्म पापनी परिपाटी परंपरानी वातइ नाठी । अधर्म किहांइं छइ नही । सहू धर्मवंतइ जि हूउं । एतलइ इसिउ भाव । कुलाचार जूउ । धर्मनउ मार्ग जूउ । कुलाचार किहनउ केतलउ पुण्यमय हुइ । किहनउ पापमय हुइ । पुण्य धर्मनउ आचार जिहां जीवदया सत्यवचन ब्रह्मचर्यादिक गुण तिहां जि छइ । अनेथि नथी । केती वारइं पूर्वज दालिद्री हुसिइ[6] तउ संतानीइ किसिउं लक्ष्मी आवती न लेवी ? अथवा को पूर्वज कूअइ पडी मूउ हुसइ तउ संतानीअइं किसिउं कूअइ पडी

---

१ कहिसिइ. २ एतलइं. ३ ते. ४ जि. धम्म त्ति. ५ पाछिलाइं. ६ हुइ.

मरिवउं? एह भणी कुलाचारनउ कांइ नहीं। सूधउ धर्म जि जाण हूंतइ लेवउ ॥ ६॥

[जि.] लोकनइ प्रवाहि करी आपणइ कुलक्रमि हे मूढ! धर्म इसिउं जइ हुइ तउ पछइ **मिच्छाण वि** म्लेच्छनउ धर्म। **अहम्म-परिवाडी** अधर्मनी परिपाटी श्रेणि थाकी रही ॥ ६॥

[मे.] रे मूर्ख! लोकप्रवाहि आपणा २ कुलनइ आचारि चालतां जउ धर्म्मु हुइ तउ म्लेच्छ खाटकी वेश्या ते सहू आपणइ २ कुलाचारि चालइ छइ। तउ तेहनइ धर्म्म होसिइ। एतइ अधर्म्मनी परंपरा नाठी। अधर्म्म किहांइं नथी। सहू धर्म्मवंतइ जि हूउं ॥ ६॥

[जि.] दृष्टान्तनइ बलि करी धर्म्महूइं मोटाई देखालइ।

लोयम्मि रायनीईनायं न कुलक्कमम्मि कइया वि।
किं पुण तिलोअपहुणो जिणंद[1]धम्माहिगारम्मि[2] ॥७॥

[सो.] लोकइ माहि राजनीतिनउ न्याय कुलक्रम माहि नावइं। राजनीतिनउ मार्ग जूउ। कुलाचार जूउ। तउ पाधरी राजनीति माहि कुलाचार न जोइइं। तिहां राजाज्ञाइ जि जोवी। **किं पुण०** त्रैलोक्य[3] त्रिभुवनना प्रभु ठाकुरु[4] श्रीजिनेन्द्र वीतरागना धर्मनइ अधिकारि कुलाचार न[5] जोइइं। तिहां सर्वथा जोवा न आवइं। तिहां खरी वीतरागनी आज्ञाइ जि लेईनइ धर्म करिवउ। इसिउ भाव ॥ ७॥

[जि.] लोकइ माहि राजनीति मोटी। **नायं** ज्ञातं दृष्टान्त। कुलक्रमि **कइया वि** किवारइं नीति न्यायमार्ग्ग प्रमाण नहीं। एतलइ राजनीति जिम प्रमाण तिम जिनधर्म जि प्रमाण। जइ लोकइ माहे इसु छइ तउ त्रैलोक्यनउ स्वामी श्रीजिनेन्द्र तेहनउ धर्मनइ अधिकारि

---

१ जिणिंद°. २ मे. °धम्माहियारम्मि. ३ तउ त्रैलोक्य. ४ ठाकुर. ५ किम.

किसुं कहिवउं ? जिम राजा ति आगलि सामान्य लोकनउ न्यायमार्ग्ग प्रमाण नहीं तिम जिनधर्म आगलि कुलक्रमागत अनेरा धर्म प्रमाण नहीं ॥ ७ ॥

[मे.] लोकमाहि राजनीतिनउ न्याय कुलक्रम माहि कहीइ नावइ। काइं बेवइ मार्ग्ग जूआ। तउ पछइ त्रैलोक्यनउ प्रभु ठाकुरु जिनेन्द्र तेहना धर्मनइ अधिकारि कहिवउं किसउं ? ॥ ७ ॥

[सो.] जीवहूइ संसार ऊपरि वैराग्य आवता दुहिलउ छइ। ए वात कहइ छइ।

[जि.] वली जिनधर्मनी मोटाई प्रकासइ।

जिणवयणवियन्नूण वि जीवाणं जं न होइ भवविरई।
ता कह अवियन्नूणं मिच्छत्तहयाण पासम्मि ॥ ८ ॥

[सो.] जे श्रीजिनवचन सिद्धांत तेहना विज्ञ जाण छइं तेहइ[1] जीवहूइं जउ संसारनी विरति वैराग्य नावइं। **ता कह०** तउ अविज्ञ अजाण जे मिथ्यात्विइं[2] करी हणिया वाहिया[3] छइं ते कन्हलि संसारनी विरति निवृत्ति किम आवइ ? जाणहूइं मिथ्यात्वादिक पापनी निवृत्ति नथी आवती तउ अजाण मिथ्यात्वीहूइं किम आवइं ? विरतिनउं आविवउं गाढउं दुहिलउं छइ। इसिउ भाव ॥ ८ ॥

[जि.] जिनवचन तणा जाणहार जीवईहूइं जइ भवविरति संसार हूंतउं विरमण न हुइं। **अवियन्नूणं** अजाणता अज्ञान अनइ [मिथ्या]त्वहत मिथ्यात्वव्याप्या जीव तेहनइ पासि कन्हइं किसु संसारनउ मेल्हिवउं हुइ ? अपि तु न हुइं। एतलइं जिनधर्म लगी

---

१ तेइ. २ मिथ्यात्वि. ३ 'वाहिया' नथी.

जीवहूइं वैराग्य ऊपजइ। मिथ्यात्व लगी सांमुहउ जीव संसार वधारइ ॥ ८ ॥

[मे.] जे जिनवचननउ जाण मनुष्य तेहनइ जि भव संसार तेहनी विरति नथी आवती तउ कहउ न, अजाणनइं किम विरति आवइ ? जे मिथ्यात्विं करी हत हण्या जे जीव छइं तेहनइं पासइ रहइ तेहनइं विरति आवतां गाढी दोहिली छइ। इसउ भाव ॥ ८ ॥

[जि.] जिनधर्म साचउ इसुं जाणी सम्यग्दृष्टिहूइं मिथ्यात्वी देखी जकाई मनमाहि ऊपजइ तकाई कहइ छइ।

विरयाणं अविरए जीवे दट्ठूण होइ मणतावो।
हा हा कह भवकूवे[1] बुड्डुंता पिच्छ नच्चंति ॥ ९ ॥

[सो.] जे विरत पापतउ निवर्त्या[2] जीव छइं तेहहूइं अविरत[3] पाप करता देखी मनमाहि[4] संताप थाइ। **हा हा०** अहा ! ए अविरत जीव संसाररूपिआ कूआ माहि बूडता देखि किम नावइ ? ए बापडा पाप करी नवनवी गतिइं नवनवे प्रकारि रुलिस्यइ, किम थासिइं इम खेद प्रामइं ॥ ९ ॥

[जि.] विरत सम्यग्दृष्टि जीवहूइं अविरत मिथ्यात्वी जीव **दट्ठूण** देखी करी **मणतावो** मनि संताप हुइ। किसु संताप ए। **हा हा** खेदे ! रे जीव ! **पिच्छ**। जोइ संसाररूपीउ कूउ तेह माहे बूडता बापडा किसु नाचइं छइं ? एतलइ सम्यक्त्वी इसुं जाणइ। जउ संसारमाहे कोई जीव बूडइ नहीं तउ भलउं। तिणि कारणि संसारमाहे बूडता जीव देखी मनि संताप करइं। इसु भाव ॥ ९ ॥

---

१ जि. भवकूपे. २ निवृत्त्या. ३ अविरत जीव. ४ मनमाहि चित्तमाहि.

[मे.] जे विरत पाप हूंता निवर्त्त्या छइं जीव तेही अविरतनउं स्वरूप देषी मनमाहि किम परिताप नाणइं ? काइं होइस्यइ ? खेदि । अविरत जीव संसाररूपीआ कूआमाहि बूडता, देषउ, किम नाचइं छइं ॥ ९ ॥

[सो.] केती वारइं बीजा आरंभ न मूकारइं[1] तउ मिथ्यात्व काई छांडअ[2] नहीं ? जेह भणी मिथ्यात्वनउ मोटउ अवगुण छइ ते कहइ छइ ।

[जि.] आरंभ लगी जीव दुःखी हुइ इसुं जाणवइ छइ ।

[मे.] किवारइं बीजा आरंभ न मूकइं तउ मिथ्यात्व कांइं न छांडइं ?

आरंभजम्मि पावे जीवा पावंति तिक्खदुक्खाइं ।
जं पुण मिच्छत्तलवं[3] तेणं न लहंति जिणबोहिं ॥ १० ॥

[सो.] वाहण प्रवहण क्षेत्रकरसणादिक आरंभनां जे पाप छइं तेह लगइ जीव आवते भवांतरि तीक्ष्ण गाढां दुक्ख प्रामइ । पुण धर्मनउ अणलहिवउं न हुइं । **जं पुण०** पुण जं जिनधर्म ऊपरि द्वेष करतउ मिथ्यात्वनउ लवलेशइ करइ तीणइ आवतइं भवि जिनधर्मइ जि न लहइं । बोधिबीजइ जि दुःप्राप थाइ । तीणइ घणउ कांइ संसारि रुलइं ॥ १० ॥

[जि.] **आरंभ** षड्विधजीवनिकायविनाशनरूपि पापि कीजतइ हूंतइ जीव अज्ञानी **तिक्खदुक्खाइं** तीक्ष्ण नरकादिकनां दुःख प्रामइं । जे वली जीवहूइं मिथ्यात्वनउ लवलेश छइ तिणि मिथ्यात्वनइ लेशि करी जीव जिनबोधि वीतरागनउं सम्यक्त्व न लहइं । एतलइ

---

१ मूकाई. २ छाडउं. ३ मे. मिच्छित्त°.

जिनधर्मि गाढउ करी आरंभ वर्जिउ छइ। जइ ते आरंभ करइ तउ दुःख लहइ। जिणि कारणि जीव मिथ्यात्व करइ तिणि कारणि जीव सम्यक्त्व न लहइ। जिहां आरंभ तिहां सुख नहीं अनइ जिहां मिथ्यात्व तिहां सम्यक्त्व नहीं। वली धर्म कीजइ तउ अरहंत देवई-नउ। अनेरउ धर्म न करिवउ। यत उक्तं

श्रोतव्यः सौगतो धर्मः कर्त्तव्यः पुनरार्हतः।
वैदिको व्यवहर्तव्यो ध्यातव्यः परमः शिवः॥ १०॥

[मे.] आरंभ क्षेत्रकरसणादिकइंतउ ऊपनउं जे पाप तेहतउ जीव तीव्र दुक्ख पामइं। पणि तिहां धर्मनउं अणलहिवउं न हुइं। पणि वली जे मिथ्यात्वनउ लवलेशमात्र करइं तेह लगी आवतइ भवि जिनबोधि जिनधर्म्म न लहइं॥ १०॥

[सो.] हिव जे गाढा तप नियम क्रिया करइं छइं पुण उत्सूत्र प्ररूपइं छइं तेह आश्री कहइं छइं।

[जि.] सघलाई जीवहूइं जिनबोधिनउं अप्राप्तिकारण कहइ छइ।

[मे.] हिव जे गाढी क्रिया करइ अनइ उत्सूत्र प्ररूपइ तेह आश्रई कहइ।

जिणवरआणाभंगं[1] उम्मग्ग[2]उस्सुत्तलेसदेसणयं।
आणाभंगे पावं ता जिणमयदुक्करं धम्मं॥ ११॥

[सो.] उन्मार्ग[3] व्यवहार सामाचारी विरुद्ध उत्सूत्र श्रीसिद्धान्तनी आज्ञा विरुद्ध जे लेशमात्र थोडु[4] उपदेश तेहतउ **जिणवर०** वीतरागनी आज्ञानु भंग हुइ। यत उक्तं श्री**आवश्यके**—

---

१ आ गाथा सो. नी बीजी प्रतमां लखावी रही गयेली छे. २ जि. अमग्ग°.
३ 'उन्मार्ग...सामाचारी विरुद्ध' ने स्थाने 'जिण.' ४ थोडउ.

उस्सुत्तमायरंतो[1] उस्सुत्तं चेव पन्नवेमाणो ।
एसो अ अहाछंदो इच्छाछंदु त्ति एगट्ठा ॥ १ ॥
(उपदेशमाला, गा. २२१)

उम्मग्गदेसणाए चरणं नासंति जिणवरिंदाणं ।
बावन्नदंसणा खलु न हु लब्भा तारिसा दुट्ठुं ॥ २ ॥
(आवश्यक, गा. ११५२) इति वचनात् ।

'पयमवि असद्दहंतो सुत्तत्थं मिच्छदिट्ठीओ' इति सिद्धान्तवचनाच्च । **आणाभंगे०** जु[2] आज्ञाभंग कीधइ हूंतइं महापाप । घणीइ क्रिया अनुष्टानकष्टादिक करतउइ अनाराधिक[3] जि हुइ । **ता जिण०** तेह भणी श्रीजिनशासननउ धर्म्म आराधतां गाढउ दुक्कर । गाढी क्रियाइ करतां वीतरागनी आज्ञा पाखइ आराधिंवउ न हुइ काज न सरइं । बीजा पाधरा ठाकुराइनी आज्ञा भागीइं महादोष कहीइं । 'आज्ञाभङ्गो नरेन्द्राणामशस्त्रवधमुच्यते' इति वचनात् । तउ त्रिभुवनस्वामी वीतरागनी आज्ञानइं भांजिवइ दोषनउं सिउं कहीइ ? ॥ ११ ॥

[जि.] अमार्ग्ग कुमार्ग्ग तेहना कहिवातउ उत्सूत्र सिद्धान्त विरुद्ध वचन तेहनउ लवमात्र उपदेसतउ श्रीजिनाज्ञानउ भंगालाप हुइ । आज्ञानइ भंगि हूंतइ **पावं** पाप हुइ । ता तउ पच्छइ पापनइ उदइ हूंतइ जीवहूइं जिनमत जिनभाषित धर्म दुःकर दुःप्राप हुइ ॥ ११ ॥

[मे.] उन्मार्ग सेवतां उत्सूत्र सिद्धान्त विरुद्ध तेहनउ लेशमात्र उपदेश देतां जिनवर वीतरागनी आज्ञानउ भंग हुइं । ते आज्ञाभंग लगी महापाप हुइ । तेह पाप लगी जिनधर्म्म गाढउ दुक्कर हुइ ॥ ११ ॥

---

१ आ गाथा 'आवश्यक'मां जोवामां आवती नथी, पण 'उपदेशमाला'मां छे. २ 'जु' नथी. ३ अनाराधक.

[सो.] वली अेह जि वात कहइ छइ।

[जि.] वली प्रकारान्तरि जिनधर्मनी प्राप्ति दुर्लभ कहइ छइ।

जिणवरआणारहिअं वद्धारंता[1] ति केवि जिणदव्वं।
बुड्डंति भवसमुद्दे मूढा मोहेण अन्नाणी ॥ १२॥

[सो.] जिणवर० वीतरागनी आज्ञारहित देवद्रव्य वधारतांइ हुंतां मूढ मूर्ख केतलाइ मोहिइ धर्मनइं भ्रमि अज्ञानी अजाण संसार-समुद्र माहि बूडइं। एहनउ इसिउ भाव। देवद्रव्य वधारिवानी बुद्धिइं घणइं लाभिइ षाटकी माछी वागुरीप्रमुख अधर्म[2] रहइं आपइ। अथवा शालि दालि घृत पक्वान्नादिक अथवा देवद्रव्य वस्त्रादिक जइ घणइं मूलिइं आपणइ[3] घरि वावरइ। अनेराइ श्रावकहूइं दिइ। अथ[4] महात्मा दर्शनी थिकु देवद्रव्य वधारी प्रासादादिके वेचइ। अथवा रूडीइ धुरहूइं ग्रहणा पाषइ व्याजिइ देवद्रव्य आपइं। इत्यादिकि अनेकि प्रकारि करी अविधिइं देवद्रव्य वधारतांइं संसार-समुद्र माहि बूडइं। जे देवद्रव्य विधिइं सुस्थानकि स्थापइं रक्षा करइं वृद्धि[5] लिइं तेहइं[6] महाफल हुइं। यत उक्तं **दिनकृत्ये—**

जे पुणो जिणदव्वं तु वुड्ढिं निंति सुसावया।
ताण रिद्धि पवड्ढेइ कित्ती सुक्खं बलं तहा ॥ १॥

(गा. १३७)

जिणपवयणवुड्ढिकरं पभावगं नाणदंसणगुणाणं।
वड्ढंतो जिणदव्वं तित्थयरत्तं लहइ जीवो ॥ २॥
एवं नाऊण जिणदव्वं वुड्ढिं निंति सुसावया।
जरामरणरोगाणं अंतं काहिंति ते पुणो ॥ ३॥ (गा. १४४-४५)

---

१ जि. वद्धावरित्ता वि देइ जिणदव्वं. २ अधर्मी. ३ आपइ. ४ अर्थ. ५ वृद्धिइं. ६ तेहहूइं.

[जि.] जे जीव जिणवरेन्द्रनी आज्ञा पाषइ जिनद्रव्य चैत्यद्रव्य व्याजि देई वधारताई हूंता मूढ मूर्ख भवसमुद्र माहे मोहि करी अज्ञानी अजाण हूंता बूडइं । तिणि कारणि तेहांहूइं जिनधर्म दुर्लभ ॥ १२ ॥

[मे.] जिनवरनी आज्ञारहित देवद्रव्य केई वधारता हूंता मूढ मूर्ख अजाण संसारसमुद्र माहि बूडइं ॥ १२ ॥

[सो.] जे 'महारउ देव ! महारउ गुरु !' इसिं कदाग्रहि वाह्या छइं ।

[जि.] अथ अयोग्यहूइं जे धर्मोपदेस दिइ तेह उपदेसता उद्देसी कहइ ।

[मे.] सूधा धर्मनां अभिलाषीआ न हुइं तेहनइं उपदेसु न देवउ । ते आगिली गाहइं कहइ ।

कुग्गहगहगहियाणं मूढो[1] जो देइ धम्मउवएसं ।
सो चम्मासीकुक्कुरवयणम्मि खिवेइ कप्पूरं ॥ १३ ॥

[सो.] कुग्गह० जे कदाग्रहरूपीउ ग्रह कहीइ भूतप्रेतादिकनउ छल तीणं करी[2] ग्रहिया गहिला[3] कीधा छइं तेहहूइं **मूढो जो०** मूढ अजाण जे धर्म्मनउ उपदेश दिइं, शुद्ध देवगुरुधर्मनां स्वरूप कहइं **सो चम्मासी०** ते चांबडाना खाण्हार कूकर भुंडीउ तेहनइ वयणि मूहडइ कपूर घातइं । रूडी वस्तु कुस्थानकि घातइं । सोनानी झाल कादवमाहि लांषइं । एतलइं इस्यउ भाव[4] ॥ १३ ॥

[जि.] 'ए माहरउ देव ! ए माहरउ गुरु !' इसिउ देव कुगुरु ऊपरि कदाग्रह तिणि करी ग्रहीत व्याप्त पुरुषहूइं जे पुरुष मुग्ध

---

१ जि. मुद्धो. २ करी जे. ३ ग्रहिया. ४ आ पछी सो. नी बीजी प्रतमां 'कदाग्रहीहूइं उपदेश न देवउ' एटलुं वधारे छे.

भोळउ सरल स्वभावि हूंतउ शुद्ध धर्मोपदेश दिइ ते पुरुष **चम्मासी** चर्मभक्षक कुक्कुरनइ वदनि मुखि कपूर क्षिपइ पालइ। जिम कुतिरानइ मुहि कपूर घालिउं हूंतउं निःफल थाइ तिम अयोग्यहूइं धर्मोपदेस दीधउ हूंतउ निःफल। एतावता अयोग्यहूइं धर्मोपदेस न देवउ ॥ १३ ॥

[मे.] जे कदाग्रहरूपीउ ग्रह तीणइं करी जे ग्रह्या छल्या छइं तेहनइं जे मूढ अजाण धर्मनउ उपदेश दिइं, सूधउं देवगुरुधर्मनउं स्वरूप कहइं ते चर्मासी चांबडानउ खाणहार कूतिरउ तेहनइ मुखि कपूर घातइं। रूडी वस्त कुथानंकि घातइं। एतइ कदाग्रहीनइं उपदेश न देवउ ॥ १३ ॥

[सो.] शुद्ध प्ररूपकनी रीसइ रूडी। उत्सूत्रभाषकनी क्षमाइ विरुई। ए वात कहइ छइ।

[जि.] अथ गुरुनउ कोपई भलउ। केहीएकनी क्षमाई भली नही। इसुं जणावइ छइ।

[मे.] सूधा कहणहारनी रीसइं रूडी, पणि उत्सूत्रभाषीनी क्षमाइं पाडूइ। ए वात कहइ।

रोसो वि खमाकोसो सुत्तं भासंतयस्स धन्नस्स।
उस्सुत्तेण खमा वि य दोसमहामोहआवासो ॥ १४ ॥

[सो.] रोसो वि० जे धन्य उत्तम सूत्र श्रीसर्वज्ञभाषित सिद्धांत तेह **भासंत** बोलतां आपणा खरपणइं[1] वलि साचउ विचार करतां केती वारं[2] रोस ऊपजइ। ते रोसइ[3] क्षमानउ कोश भंडार जाणिवउ। ते रीस रूडी इसिउ भाव। **उस्सुत्तेण०** अनइ उत्सूत्र सिद्धान्त विरुद्ध जे बोलइं तेहनी क्षमाइ दोषइ जि कहीइ, विरूईइ जि

१ खरपणवइं. २ वार. ३ रोस.

कहीइ, जेह भणी महामोह महाअजाणिवउं तेहनउ आवास स्थानक छइ। **चंडरुद्र** आचार्य सरीषा सुद्ध प्ररूपकनी रीसइ रूडी। **जमालि** सरीषा उत्सूत्रप्ररूपकनी क्षमाइ विरूई इसिउ भाव। यत उक्तं **गच्छाचारप्रकीर्णके—**

जीहाए वि लिहंतो न भद्दओ जत्थ सारणा नत्थि।
दंडेण वि ताडंतो स भद्दओ सारणा जत्थ ॥ १४ ॥ (गा. १७)

[जि.] सूत्र भाषता उपदेश देता भणावता गुरुनी **रोसो वि** रोषई **धन्नस्स** धन्य पुरुषहूइं क्षमानउ भंडार हुइ। जिम क्षमा भली तिम गुरुनी रीसई परमार्थवृत्तिइं हितकारिक हूंती भली क्षमारूप जाणिवी। जिम **चंडरुद्राचार्यनी** रीस नवदीक्षित महात्माहूइं केवल ज्ञान भणी हुइ। उत्सूत्रि करी क्षमाई कीधी हूंती दोष महाअज्ञान तेहनउ आवास स्थानक हुइ ॥ १४ ॥

[मे.] तेहनउ रोसु क्षमानउ कोसु जाणिवउ, जे सूत्र सिद्धान्त खरउं बोलइ, धन्य भाग्यवंत हूंतउ। अनइ उत्सूत्र सिद्धान्त विरुद्ध जे बोलइ तेहनी क्षमाइ दोषइ जि हेतु कहीइ, जेह भणी ते उत्सूत्र-प्ररूपक महामोह अजाणिवउं तेहनउ आवास स्थानक छइ। **चंद्र-रुद्राचार्य** सरीषा सुद्ध प्ररूपकनी रीसइ रूडइ। **जमालि** सरीषा उत्सूत्रप्ररूपकनी क्षमाइ विरुई ॥ १४ ॥

[सो.] हिव[1] जिनधर्मनउं दुर्लभपणउं कहइ छइ।

[जि.] 'मोक्षि सुख छइ कि नथी?' ए वातनउ निश्चय कहइ छइ।

[मे.] हिव जिनधर्म्मनउं दुर्लभपणउं कहइ।

१ हेव.

इक्को वि न संदेहो जं जिणधम्मेण अत्थि मुक्खसुहं ।
तं पुण दुव्विण्णेयं अइउक्कडपुण्णरहियाणं ॥ १५ ॥

[सो.] इक्को वि० एकइ थोडउ लगारइ ए वातनउ संदेह नथी, जं जिनधर्मिइं करी मोक्षसुख छइ । जीवदयामूल जिनधर्म आराधतां मोक्षसुख लाभइ जि । ए वातनउ वरांसउ नथीइ जि । **तं पुण०** ते जिनधर्म **दुविण्णे०** जाणतां दोहिलउ । कहिहूइ ? **अइउक्क०** अतिउत्कट गाढा मोटा पुण्य भाग्यरहित कदाग्रही उन्मार्ग वांकी बुद्धिना धणी जीवहूइं । अति गाढा भाग्यवंत जीवहूइं मार्गानुसारिणी बुद्धिना धणीहूइं जाणतां सोहिलउ जि छइ ॥ १५ ॥

[जि.] जउ जिनधम्मि करी मोक्षनउ सुख छइ । अथ नथी इसु संदेह एकई नही । किंतु निःसंदेह मोक्षसुख छइ । नैयायिक-वैशेषिकादिकने मते मोक्षि सुख नथी । आत्यन्तिकी दुःखनिवृत्तिर्मोक्षः । इस्या मोक्षलक्षणना कहिवातउ दुःखानुषंगिपणातउ सुखई दुःख । तेह दुःखस्वरूपनउ उच्छेद अत्यंत अभाव मोक्ष । इस्या सांभलवइ संदेह । पुण संदेह न करिवउ । किमु । जउ मोक्षसुख न हुइं तउ कोई जाण वांछइ नही । जिम करणंक । तिणि कारणि मोक्ष सहू वांछइ । तउ सही मोक्षि सुख छइ । इसिइ अनुमानि करी मोक्षसुख छइ । तथागमे प्रोक्तं—

न जरा जन्म नो यत्र न मृत्युर्न च बन्धनम् ।
न देहो नैव च स्नेहो नास्ति कर्मलवोऽपि च ॥
केवलं केवलं यत्र यत्र दर्शनमक्षयम् ।
अक्षयं च सुखं यत्र वीर्यं सम्यक्त्वमक्षयम् ॥

तं पुण० तें पुण मोक्षसुख अतिउत्कृष्ट पुण्यरहित पुरुषे **दुविण्णेयं** दुर्ज्ञेय जाणीतां दुहिलउं ॥ १५ ॥

[मे.] एकइ थोडउइ ए वातनउ संदेह नथी जे जिनधर्म आराधतां मोक्षनां सुख छइ जि। पणि ए वात जाणी न सकीइं जे अति उत्कट पुण्यरहित जीव मोक्ष पामिस्यइं ॥ १५ ॥

[सो.] जिनधर्मना दुर्लभपणाइजिनी वात कहइ छइ।

[जि.] मोक्षसुख स्थापी जिनमतई जि जाणीतां दुहिलउं इसुं प्रकटइ छइ।

[मे.] जिनधर्मना दुर्लभपणानी[1] वात कहइ[2]।

सव्वं[3] पि वियाणिज्जइ लब्भइ तह चउरिमाइ जणमज्झे।
इक्कं पि भाय दुलहं जिणमयविहिरयणसुविआणं ॥१६॥

[सो.] **सव्वं पि॰** बीजउं सहू जाणतां सोहिलउं। संसारनां विज्ञान कला गीत नृत्यादिक। तथा वली लोकमाहि चतुरपणउं बोलवइ व्यवसाय वाणिज्यनइ विषइ डाहपण ते सहू सोहिलउं[4]। **इक्कं पि॰** हे भ्रात! बांधव! एकइ जि जगमाहि दुर्लभ **जिणमय॰** श्रीजिनमत श्रीवीतरागना शासननी विधि आचार तेह रूपीआ रत्ननुं सम्यक् जाणिवउं। धर्मनी कुशलाई दुर्लभ। यत उक्तं—

धन्नाणं विहिजोगो विहिपक्खाराहगा सया धन्ना।
विहिबहुमाणी धन्ना विहिपक्खअदूसगा धन्ना॥

वली श्रीजिनवचन उत्सर्गापवादबहुल छइ। तेह भणी लाभ-छेहनउं[5] जाणिवउं दोहिलउं। जिम श्रीधर्मनी वृद्धि हुइ तिमइ जि कीधउं जोईइ। यत उक्तं श्री**उपदेशमालायां—**

---

१ दुर्लभपणाइजिनी. २ कहइ छइ. ३ आ आखी गाथा **सो.** नी बीजी प्रतमांथी पडी गई छे. जो के ते उपरनो बालावबोध एमां छे. ४ सोहिलुं. ५ छेहानउं.

तम्हा सव्वाणुन्ना सव्वनिसेहो अ पवयणे नत्थि ।
आयं वयं तु लिज्जा लाहाकंखि व्व वाणियओ ॥ (गा. ३९२)

[जि.] सघलउंइ विज्ञान जाणीइ । लोकमाहे तेह तथा च वली **चउरिमा** चतुरिमा पंडिताई **लब्भइ** लहीइ । पुण हे **भाय !** भ्रात बांधव संबोधने । एकइ जु जिनमत विधिरूपीउं रत्न तेहनउं सुविज्ञान सम्यग् प्रकारि साचउं जाणिवउं दुहेलउं । भाग्य हुइ तउ जिनधर्म जाणीइ ॥ १६ ॥

[मे.] 'सघलंइ जाणीइ परीछीइ' तिम लोकमाहि **चउरिमाइं** बोलिवउंइ सोहिलउं । पणि हे भाई ! एक जि दोहिलउं जे श्रीजिनमत वीतरागना शासननी विधि आचाररूप रत्न तेहनउं साचउं जाणिवउं ॥ १६ ॥

[सो.] सूधा धर्मनउं जाणिवउं परहूं छउ । कहिणहारहूंइं सांप्रत कालि कहिवुंइ दुहिलउं । ए वात कहि[1] छइ ।

[जि.] अथ साचउं सम्यक्त्व कहिवउं दृष्टांति करी दुःप्राप कहइ छइ ।

मिच्छत्तबहुलयाए विसुद्धसम्मत्तकहणमवि[2] दुलहं ।
जह वरनरवइचरिअं पावनरिंदस्स उदयम्मि ॥ १७ ॥

[सो.] मिथ्यात्वनी बहुलता घणा जीव प्राहिइं भला भला तेहइ मिथ्यात्वी जि तीणइं करी **विसुद्ध०** खरा सम्यक्त्वना स्वरूपनउ कहिवउइ दुर्लभ । साचा सम्यक्त्वनी वात कही न सकइं । **जह वर०** जिम वारू न्यायी धर्मवंत आगिला रायनुं चरित्र **पावनरिंद०** पापी अन्यायी[3] अधर्मी रायनइ उदइ[4] वर्त्तइ कही न सकीइं । बीहता

---

१ कहइ. २ °कहणमिव. ३ 'अन्यायी' नथी. ४ उदय.

भणी ते राय अगमता भणी कुपिउ अनर्थ करइ। तिम खरा सम्यक्त्वनुं[1] कहिवूंइ[2] लोकनउंइ[3] अगमतुं थाइं। तेह भणी कहिवुंइ दुर्घट। इसिउ भाव ॥ १७॥

[जि.] मिथ्यात्वनी बहुलता प्रचुरता तिणि करी विशुद्ध सम्यक्त्वनउं कथनई कहिवउंइ दोहिलउं। जिम पापी नरेन्द्रनइ उदइ **वरनरवरचरियं** प्रधान राजेन्द्र श्री**राम**ादिक तेहनुं न्यायरूप चरित्र कहिताई दोहिलउं हुइ ॥ १७॥

[मे.] मिथ्यात्वनी बहुलता लगी भलाइ जीवनइं सूधा सम्यक्त्वनउं कहिवउंइ दोहिलउं। साचा सम्यक्त्वनी वातइ कही न सकीइं। केहनी परिइं। जिम न्याई राजानउं चरित्र पापी राजानइ उदयि तेहनी ठकुराई कही न सकीइं। कांइ। ते अणगमती वातइं कोप धरइ। तिम मिथ्यात्वी आगलि सूधा सम्यक्त्वनउं कहिवउं अरुचि ऊपजावइ ॥ १७॥

[सो.] केती वारइं को गुरुइ उत्सूत्रभाषी हुइ। तउ सिउं करिवुं, ते कहइ छइ।

[जि.] अथ विद्यावंतई कूडाबोलउ मेल्हिवउ। इसुं दृष्टांति करी स्थापइ छइ।

बहुगुणविज्जानिलओ उसुत्तभासी तहा विमुत्तव्वो।
जह वरमणिजुत्तो वि हु विग्घकरो विसहरो लोए॥१८॥

[सो.] **बहु॰** घणा गुण अनइ विद्यानउ निलय घर स्थानक गुरु छइ। गाढउ विद्यावंत गाढउ गुणवंतु[4] छइ। पुण उत्सूत्रभाषी

१ °ना स्वरूपनउं. २ कहिवउंइ दुर्लभ साचा सम्यक्त्व नीकाहिवुंइ. ३ लोकनइ. ४ गुणवंत.

श्रीसर्वज्ञनउं वचन न मानइ ऊथापइ। **तह्रा विमुत्तव्वो०** ते गुरुइ तिम मूकिवउ[1] छांडिवउ, जिम विषधर साप **वरमणि०** माथइ वारू विषापहार मणि करी सहित हुइ तेऊ विघ्न मरणकरणहार भणी दूरि मेल्हीइ तिम ते गुरुइ उत्सूत्रभाषी अनंत संसारनां मरण देन्हार भणी दूरि त्यजवउ[2] परहउ छांडिवउ ॥ १८ ॥

[जि.] बहु घणा गुण जिहां छइ इसी विद्या तेहनउ निलय गृह एह्वउंइ उत्सूत्रभाषी हूंतउ **तह्रा वि** तथापिहिं मूकिवउ। जिम लोकमाहि प्रधान मणिसंजुत्तई हूंतउ **हु** निश्चइं विघ्नकर मृत्युकारक विषधर मेल्हीइ ॥ १८ ॥

[मे.] बहु घणा गुण विद्या तेह्नउ निलय स्थानक गुरु छइ, पणि उत्सूत्र वचननउ भाषणहार बोलणहार तथापि मूंकिवउ। कहिनी परइं। जिम वर प्रधान मणि सहितइ साप विघ्नकारक मरणदायक लोकमाहि हुइ तिम उत्सूत्रभाषी गुरु पणि मोक्षनइं विघ्नकारक हुइ ॥१८॥

[सो.] लोक प्राहइं सगपण अनइ लक्ष्मीइजिनइं लोभिइं लीजइ। धर्मनउं प्राहइं कांई न गणइ। ए वात कहइ छइ।

[जि.] अथ मोह्नु प्रभाव कहइ छइ।

सयणाणं वा मोहे लोआ घिप्पंति अत्थलोहेण।
नो घिप्पंति सुधम्मे रम्मे हा मोहमाहप्पं ॥ १९ ॥

[सो.] सयणाणं० लोआ० ए[3] लोक सगानइ मोहिइं अथवा लक्ष्मीनइ लोभिइं लीजइ। तेन्हा देव-गुरु मानइं तेह सिउ नात्रा[4] संबंध करइं। धर्म कांई न जोअइं। **नो घिप्पंति०** सुधर्म खरउ धर्म जे रूडउ ते न लिइं, तिहां न राचइं। **हा** कहीइ अहो!

---

१ मूंकवउ. २ त्यजिवउ. ३ 'ए' नथी. ४ नात्रां.

मोहमाहप्पं० संसारनउ मोह अजाणिवउं तेहनउं ए माहात्म्य महिमा छइ । कुणइ काई[1] थाइं ? ॥ १९ ॥

[जि.] स्वजन सगा तेहनइ मोहि **वा** वली अथवा द्रव्यनइ लोभि लोक लीजइ । पण रम्य प्रधान सुधर्म जिनधर्म तिहां **नो घिप्पंति** न लीजइं । **हा** खेदे मोहनउं माहात्म्य प्रमाण ॥ १९ ॥

[मे.] स्वजनादिकनइ अर्थना लोभ लगी लोक संसारनइ व्यापारि घातइं । हाट पाटणि वणिजव्यापार सीषवइं । पणि सूधा स्वामीना भाष्या धर्म्मनइ मार्गि न घातइं । जे धर्म रम्य प्रधान छइ । **हा** इसइ खेदे । ते मोहनउं माहात्म्य जाणिवउं ॥ १९ ॥

[सो.] अधर्मी अनइ धर्मी जीव रहइं बेई ज वीसामानां स्थानक छइ । ए वात कहइ छइ ।

[जि.] अथ गृहस्थहूइं वीसामानउं स्थानक कहइ ।

गिहवावारपरिस्समखिन्नाण नराण वीसमणठाणं ।
एगाण होइ रमणी अन्नेसिं जिणिंदवरवाणी[2] ॥ २० ॥

[सो.] गिहवावार० दिन सघलउ जे गृहस्थनउ व्यापार व्यवसाय वाणिज्य काजकाम तेहनइं श्रमिइं करी जे पुरुष खिन्न ऊसना छइ, तेहहूइं[3] **वीसमण०** वीसामानां स्थानक बेइ जि छइ । **एगाण०** एक जे अधर्मी संसाराभिलाखी[4] जीव तेहहूइं रमणी स्त्री वीसामानउं स्थानक । तेह आगलि आपणउं काजकाम मंत्र गूझ कही समाधि प्रामई । उक्तं च श्री**उपदेशमालायां**—'गुरु गुरुतरो अइगुरु पियमाइयअवच्चपियजणसिणेहो० ' । **अन्नेसिं** बीजा विवेकीआ

---

१ कांई न थाइ. २ जि. जिणिंदवरधम्मो, मे. जिणंदवरधम्मो. ३ तेहूइं. ४ संसाराभिलाषी.

धर्मवंतहूइं जिनेन्द्र श्रीवीतरागनी वर प्रधान वाणी[1] श्रीसिद्धांत[2] धर्ममय वचन तेह जि विश्रामनउं स्थानक हुइ। सिद्धांतना अर्थ विचारतां[3] जोतां तेहनउं मन महासमाधि लहइ। इसिउ भाव।

[जि.] गृहव्यापार घरनउ व्यापार तेहनउ परिश्रम करिवउं तिणि करी खिन्न थाका तेह नर मनुष्यहूइं वीसामानुं स्थानक हुइं। एक संसारी जीवहूइं रमणी स्त्री विश्रामस्थानक हुइं। अनेरा कोई भव्य श्रावकहूइं श्रीसर्वज्ञोक्त वरधर्म वीसामास्थानक हुइ ॥ २० ॥

[मे.] गृहनउ व्यापार व्यवसायादिक तेहनइं श्रमिं जि नर ऊसना छइं, तींह रहइं वीसामानां स्थानक बिह जि। एकनइं रमणी स्त्री वीसामानउं स्थानक। कांइं ते आगलि आपणां काजकाम वात कही समाधि पामइ। ए संसारी जीवनी स्थिति। अनइ अनेरा विवेकी जीवनइ सामायक पडिकमणा जिनपूजा प्रमुख धर्मकार्य तेहइ जि वीसामाना स्थानक हुइ ॥ २० ॥

[सो.] धर्मवंतनइं अनइ अधर्मवंतनइं संसारना काज करतांइं वडउ विहरउ पडइ छइ। ए वात कहइ[4] छइ।

[जि.] अजाण अनइं जाण ते बिहुंनइ पेट भरवानउं फल कहइ।

तुल्ले वि उअरभरणे मूढ-अमूढाण पिच्छसु विवागं।
एगाण नरय-दुक्खं अन्नेसिं सासयं सुक्खं ॥ २१ ॥

[सो.] जे जगमाहि मूढ[5] मूर्ख अविवेक अधर्म अनइ जे अमूढ धर्मवंत विवेकिया ते बिहु रहइं[6] उदरनउं भरिवउं, आपणा

---

१ प्रधान जे. २ श्रीसिद्धांतोक्तं. ३ विचार. ४ कहै. ५ बीजी प्रतमां नथी. ६ रहइ.

कुटुंबनउं[1] भरणपोषण[2] करिवउं तुल्यइ[3] जि छइ, सरिखउइ[4] जि छइ। पुण **पिच्छसु०** आगलि फलनउ केवडउ वहिरउ[5] आंतरउ[6] पडइ छइ। देखि। **एगाण०** एक जे मूढ पापी खाटकी माछी कुलाल घांची[7] प्रमुख बीजाइ अधर्मी पेटनइ कारणि अनेक जीवहिंसादिक पापकर्त्तव्य कुवाणिज्य कुव्यवसाय करी मरी नरकनउं दुःख प्रामइं छइं। **अन्नेसिं०** बीजा जे धर्मवंत तेहनइ[8] कांई भूष्या रहिता नथी, पुण रूडा जीवदया सत्य वचन सहित शुद्धा व्यवसाय वाणिज्य करी लक्ष्मी ऊपार्जी उदरभरण[9] कुटुंबनां भरणपोषण करइं छइं। अनइ धर्मइ आराधइं छइं। ते आगलि शाश्वत सुख प्रामइं छइं। अजाण नइं जाणहूइं एवडउ आंतरउ छइ ॥ २१ ॥

[जि.] पेटि भरिवइ सरीषइ जि हूंतइ कर्मविपाक जोउ, मूढ मूर्ष, अमूढ पंडित ज्ञाततत्त्व तेह बिहुं तणउ। **एगाण०** एक मूढहूइं नरकदुःख जोइ। **अन्नेसिं०** अनेरा अमूढहूइं शाश्वत सौख्य जोइ ॥२१॥

[मे.] पेटनउं भरिवउं मूर्ख पंडित बिहुनइं सरीषउं। पणि फलनउ विपाक जोउ। किसउ। एक जे स्त्रीपुत्रादिक कन्हइ जइ वीसामउ लिइं तेहनइं नरकनां दुक्ख। अनेरा जे वीतरागनइ धर्मि वीसामउ लिइं तेहनइं शाश्वतां सुख ॥ २१ ॥

[सो.] सांभलिवाइ[10] थिकु[11] धर्म लाभइ। ए वात कहइ छइ। बिहुं गाहे करी।

[जि] अथ जिणि अनुक्रमि सम्यक्त्व हुइ।

१ कुडुंबनउ. २ °नउं. ३ तुलिइ. ४ सरिखउंइ. ५ विहरउ. ६ अंतरउ. ७ घाची. ८ तेहइ. ९ उदरभरणपोषण. १० सांभलवाइ. ११ थकउ.

जिणमयकहापबंधो संवेगकरो जिआण सव्वो वि ।
संवेगो सम्मत्ते सम्मत्तं सुद्धदेसणया ॥ २२ ॥
ता जिणआणपरेणं धम्मो सोअव्व सुगुरुपासम्मि ।
अह उचिअं सड्ढाओ तस्सुवएसस्स कहगाओ ॥ २३ ॥

[**सो.**] **जिणमय०** जिनमत श्रीसर्वज्ञना शासननी कथानउ प्रबंध विस्तार सघलउइ[1] भव्य जीवहूइं[2] संवेगकारी वैराग्यहेतु छइ । अनेरे दर्शन[3] एह्वउ नथी । तिहां राग शृंगारयुद्धादि दोषमय जि छइं । तेहे सांभले संवेगो कांई न ऊपजइं । **संवेगो०** ते संवेग वैराग्य ज्ञानगर्भ साचउं सम्यक्त्व इछतइ हुइ । मिथ्यात्वी रहइं जे वैराग्य ते कलत्रपुत्रादिकना विगोग थकउ ऊपनउ[4] दुःखमोहगर्भ जि[5] हुइ । ते सम्यक्त्व पुण शुद्ध देशना साचा जिनवचननइं[6] सांभलिवइं जि लाभइं । ते जिनवचन सुगुरुइ जि कन्हइ लाभइ । **ता जिण आण०** तेह भणी धर्म गुरु[7] कन्हइ सांभलिवउ[8] । अथवा उचित योग्य जिम हु[9] तिम **सड्ढाओ** श्रावक[10] कन्हलि[11] **तस्सुवएसस्स** जिननउ सिद्धांतनउ जे उपदेश तेहनउ कहणहारु सम्यग् जिनमार्गप्ररूपक जे **सड्ढा** श्रावक ते कन्हलि सांभलिवउ । मिथ्यात्वी अथवा उत्सूत्र-प्ररूपक तेह कन्हलि न सांभलिवउ ॥ २२-२३ ॥

[**जि.**] जिनमतनउ कथाप्रबंध सघलउई जीवहूइं संवेग वैराग्यकारक हुइ । शुद्धी देसनाइं करी सम्यक्त्व हुइ । **ता०** तउ जिनाज्ञापरि श्रीवीतरागनी आज्ञाप्रतिपालकि पुरुषिइं **सुगुरुपासम्मि**

---

१ सघलुइ. २ °रहूइं. ३ दर्शने. ४ ऊपनुं. ५ 'जि' नथी. ६ °प्रवचनइं. ७ सुगुरु. ८ आ पछी बीजी प्रतमां आटलुं वधारे छे—'इसी जे जिननी आज्ञा तेहनइ विषयइ तत्परिपालतइ जाणि सुगुरु सुसाधु पासि धर्म सांभलित्रउ.' ९ हुइ. १० तेह श्रावक. ११ 'कन्हलि...सांभलिवउ'ने स्थाने बीजी प्रतमां 'कन्हलि धर्म सांभलिवउ' एटलुं ज छे.

सद्गुरु समीपि धर्म **सोअव्व** सांभलिवउ। **अह** अथवा **उचिअं** उचित योग्य जिम हुइ तिम **सड्ढाओ** श्रावकसमीपिं श्रीजिनधर्म सांभलिवउ। किसु छइ श्रावक। **तस्सुवएसस्स कहगाओ** तेह जिननउ सिद्धांत तणउ उपदेस तेहनउ कहणहार जिनमार्गप्ररूपक ॥ २२-२३ ॥

[मे.] जिनमतनउ कथाप्रबंध सघलउइ भव्य सघलाइ जीवनइं संवेगकारी वैराग्यहेतु हुइ। अनइ संवेग वैराग्य साचइ सम्यक्त्व थकइ हुइ। तेह भणी सम्यक्त्व सूधी देसनाइं जि लाभइ। अनइ ते सुद्ध-देसना सुगुरइ जि करइ। तेह भणी जिननी आज्ञा तत्पर सावधान जीवि धर्म सुगुरु पासि सांभलिवउ। अथवा उचित योग्य श्रावक कन्हलि सांभलिवउ। पणि ते श्रावक केहवउ। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव सारी सूद्धा उपदेशनउ कथकु हुइ ॥ २२-२३ ॥

[सो.] कहिवउं नइ सांभलिवउं जिम सफल थाइ तिम कहइ छइ।

[जि.] अथ सुगुरु समीपि अथवा शुद्ध श्रावक कन्हइं धर्म सांभलिइ हूंतइ सांभलणहारहूइं जिसउ गुण हुइ।

स कहा सो उवएसो तं नाणं जेण जाणए जीवो।
सम्मत्तमिच्छभावं गुरुअगुरु धम्मलोअठिई ॥ २४ ॥

[सो.] ते कथा कही प्रमाण, ते उपदेश सांभलिवउ[1] प्रमाण, ते जाणिउं प्रमाण, जीणइं करी जीव एतला बोल जाणइ। **सम्मत्त०** आ सम्यक्त्व, आ मिथ्यात्व, आ गुरु, आ कुगुरु, आ धर्मनी स्थिति, आ लोकव्यवहारनी स्थिति कहीइ ए बिहरउ जाणइ। जीणइं उपदेशइं

---

१ सांभलिउ.

सांभलिइं सम्यक्त्व-मिथ्यात्व, गुरु-अगुरु, धर्ममार्ग-लोकमार्गनउ विहरउ न जाणइं, तीणइं सांभलिइं सिउं छइ ? कांइ न हुइ ॥ २४ ॥

[जि.] ते जिनकथा प्रमाण, ते जिनोपदेश प्रमाण, ते ज्ञान प्रमाण, **जेण** जिणि वातइं जिणि उपदेसइं, जिणि जाणिवइ करी जीव सम्यक्त्व अनइ मिथ्यात्व जाणइ, गुरु अनइ अगुरु कुगुरु जाणइ, धर्म जाणइ अनइ लोकस्थिति जाणइ ॥ २४ ॥

[मे.] ते कथा कही प्रमाण, ते उपदेस सांभलिउ प्रमाण, ते ज्ञान प्रमाण जीणइं जाणिवइ करी सम्यक्त्व-मिथ्यात्व, गुरु अनइ कुगुरु, धर्ममार्ग-लोकमार्गनी स्थिति जाणइ ॥ २४ ॥

[सो.] केतलां[1] अभागिआंहूइं[2] जिनमत जाण्याइ पूठिइ मिथ्यात्व न जाइ[3] । ए वात दृष्टांति करी कहइ छइ ।

[जि.] केई एक अधमहूइं सुगुरु कन्हइं उपदेस सांभलिइ हूंतइ मिथ्यात्व न जाइ । ए वात दृष्टांति करी कहइ छइ ।

जिणगुणरयणमहानिहिं लद्धूण वि किं न जाइ मिच्छत्तं ।
अह पत्ते वि निहाणे किवणाण[4] पुणो वि दारिद्दं ॥ २५ ॥

[सो.] **जिण०** वीतरागना जे गुण, परमेश्वरनउ धर्म तेह-रूपीउं रत्नभरिउं निधान लहीइनइ[5] किसिउं केतला अभागीआ जीव रहइं मिथ्यात्वनउ मननउ[6] परिणाम जातउ न देषीइ ? ते कांई न जाइं ? ते अभाग्यजिनउं कारण । तेह ऊपरि दृष्टांत कहइ छइ । **अह पत्ते०** अथवा अभागीइं कृपणि निधान लाधउं हुइ, पुण वेची वावरी न सकइं, तेह भणी वली दारिद्री जि कहीइ । तिम सम्यक्त्व लहीइनइ धर्म

---

१ केतलाइ. २ हुइ. ३ जाइइ. ४ जि. मे. किविणाण. ५ लहीनइ. ६ मननतणउ.

नाराधइ, मिथ्यात्व जि करइ ते तेह सरीषउ जाणिवउ। इसिउ भाव ॥ २५ ॥

[**जि.**] **जिणगुण॰** सर्वज्ञगुण तेहरूपिउं रत्ननउं महानिधान ते लहीइ कदी मिथ्यात्व कांइं न जाइ ? अथ जाणिवउं। निधानि पामिइ हूंतइ कृपणांहूइं **पुणो** वली दारिद्यइ हुइ। तथैवोक्तं—

दानं भोगो नाशस्तिस्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य।
यो न ददाति न भुङ्क्ते तस्य तृतीया गतिर्भवति ॥

तिणि कारणि सम्यक्त्वरूपिउं महानिधान लही मिथ्यात्वी जीवरूपिया कृपणहूइं मिथ्यात्वरूप दारिद्य न जाइं ॥ २५ ॥

[**मे.**] जिन वीतरागना गुणरूप रत्नभरिउं महानिधान लहीनइ मिथ्यात्व कांइ न जाइं ? जीव मिथ्यात्व कांइं न मूकइं ? अथवा लाधइ निधानि कृपणनइं वली दालिद्र जि हुइ। कांइ वेची वावरी न सकइं तेह भणी दालिद्री कहीइ ॥ २५ ॥

[**सो.**] जिनशासननां पर्वइ उत्तम। ए वात कहइ छइ।

[**जि.**] अथ जिनधर्मपर्व प्ररूपइ।

सो जयउ जेण विहिया संवच्छरचाउमासिअसुपव्वा।
निद्धंधसाण जायइ जेसिं पभावओ धम्ममई ॥ २६ ॥

[**सो.**] **सो जयउ॰** ते जिन जयवंतउ वर्त्तउ, जीणइं संवच्छरी वरसी चाउम्मासी प्रमुख सुपर्व रूडां पर्व, अमारिप्रवर्त्तन तपनियम ब्रह्मचर्य पोसह प्रभावनादिक केवल पुण्यमय जि सुपर्व रूडां पर्व कीधां। **निद्धंधसाण॰** जेह पर्वना प्रभावतउ जे[1] गाढा निद्धंधस अधर्मी तेहइ

---

१ जि.

केतला रहइं धर्मनी मति ऊपजइ। तेहइ केतला तेहे पर्वे उपवास दानादिक करता देखीइं ॥ २६ ॥

[जि.] ते जयवंतु हुइ, जिणि वीतरागि सांवत्सरि चातुर्मासिक सुपर्व मनोहर पर्व **विहिया** कीधां। जिहां जिनोक्त सांवत्सरिकादिक पर्वना प्रभाव हूंतउ **निद्धंधसाण** सर्वदा पापशक्तई जीवहूइं **धम्ममई** धर्म करिवानी बुद्धि **जायइ** हुइ ॥ २६ ॥

[मे.] ते श्रीजिन जयवंत वर्त्तउ, जीणइं ए शोभन भलां पर्व कीधां, संवत्सरी चउमासी प्रमुख, जिहां तपनियमप्रभावनादिक पुण्य कीजइं। गाढाइं **निद्धंधस** अधर्मीनइ पणि जेह पर्वना प्रभावइतउ धर्मनी मति ऊपजइ ॥ २६ ॥

[सो.] मिथ्यात्वीनां पर्व आश्री वात कहइ छइ।

[जि.] अथ मिथ्यात्व पर्वना करणहारनउं स्वरूप कहइ छइ।

नामं पि तस्स असुहं जेण निदिट्ठाइं मिच्छपव्वाइं।
जेसिं अणुसंगाओ धम्मीण वि होइ पावमई ॥ २७॥

[सो.] नामं पि तस्स॰ तेहनउं नामइ अशुभ विरूउं, नामइ तेह पापीनउं न लेवउं, लेवा नावइं, जीणइं ए होली बलेव नवरात्र प्रमुख मिथ्यात्वपर्व कीधां। जेहे पर्वे धूलिनउं ऊडाडिवउं, गालिनउं देवउं, जीवहिंसादिकनउं करिवउं प्रवर्त्तइ। **जेसिं॰** जेह पर्वना अनुषंग योगतउ धर्मवंतइनइ मनि पापनी मति आवइ। तेहइ गहिलाई करइं, मन विरूआं थाइ, वचन[1] यथातथा बोलइ ॥ २७ ॥

[जि.] तेहनउं नामई असुभकारिउं अग्राह्य, जिणइं **मिच्छ-पव्वाइं** मिथ्यात्वपर्व **निदिट्ठाइं** कह्यां। किसा भणी तेहनउं नाम

---

१ वचनइ.

असुभ ? **जेसिं अणुसंगाओ** जेहां मिथ्यात्वनां पर्वनां संग लगी **धम्मीण वि** धर्मवंतईहूइं पाप करिवानी बुद्धि हुइ ॥ २७ ॥

[मे.] तेहनउं नामइ अशुभ पाडूउं, जीणइं मिथ्यात्वीनां पर्व होळी बळेव नवरात्रीप्रमुख उपदेश्यां । जिहां धूलि ऊडाडीइ, हिंसा कीजइ । जे पर्वना अनुषंग योगइतउ धर्मवंतइ मनि पापमति ऊपजइ ॥ २७ ॥

[सो.] संसर्गिइं करी केतलानइ विहरउ पडइ, केतलानइ न पडइ । ए वात कहइ छइ ।

[जि.] अर्थ पर्वसंसर्ग कही उत्कृष्ट धर्मवंतहूइं अनइ गाढा पापीहूइं सुसंसर्ग कुसंसर्ग कांई न करइं । ए वार्त्ता प्रकटइ ।

मज्झठिई पुण एसा अणुसंगेणं हवंति गुणदोसा ।
उक्किट्ठपुण्णपावा अणुसंगेणं न घिप्पंति ॥ २८ ॥

[सो.] मज्झ० मध्यम पुरुषनी स्थिति जं तेह रहइं **अणुसंगेणं** संगतिनइ विशेषिइं गुणइ हुइं, दोषइ हुइं । गुणवंतनी संगतिइं गुणवंतइ[1] थाइ। पापनी संगतिइं दोषवंत थाइं। ए मध्यम जीवनां विशेष । **उक्किट्ठ०** उत्कृष्ट जे पुण्यना धणी गाढा उत्तम, अनइ उत्कृष्ट पापना धणी गाढा मिथ्यात्वी ते बे संगति[2] न लीजइं । संगतिनउ विहरउ न पडइं । धर्मी[3] ते धर्मीइ[4] जि । पापी ते पापीइ जि । काच नइ रत्न वरिसना सइं एकठा रहइं । साप अनइ सापनउ मणि घणउ काल एकठां रहइ । पुण जे जिसउं ते तिसिइं जि । संगतिनउ विहरउ न पडइं । इसिउ भाव ॥ २८ ॥

---

१ गुणवंत. २ संगतिइं. ३ धम्मी. ४ धम्मीइ.

[जि.] पुण वली ए मध्यम स्थिति मध्यम पुरुषनी अवस्थिति जाणिवी। ए किसी जु ? **अणुसंगेणं हवंति गुणदोसा।** संसर्गजा दोषगुणा भवन्ति। सुसंसर्ग लगी गुण हुइ। कुसंसर्गतउ दूषण हुइं। मनुष्य त्रिविधा। उत्तम मध्यम जघन्यरूप। **उक्किट्ठपुण्णपावा** उत्कृष्ट पुण्यवंत उत्कृष्ट पापवंत सुसंसर्गि कुसंसर्गिइं **न घिप्पंति** न लीजइं ॥ २८ ॥

[मे.] या मध्यम स्थिति। अनुषंग कहतां संसर्ग तेह लगी गुण नइ दोस ऊपजइ। अनइ उत्कृष्ट पुण्य नइ पापना धणी कुणहइनइ संसर्गि छीपइं नहीं। उत्कृष्ट पापीनइं धर्मवंतनउ संसर्ग न लागइं। उत्कृष्ट धर्मवंतनइ पापीनउ संसर्ग न लागइं जि ॥ २८ ॥

[सो.] वली एह जि वात कहइ छइ।

[जि.] किम जाणीइ ए वात।

अइसयपावियपावा धम्मिअपव्वेसु तो वि पावरया।
न चलंति सुद्धधम्मा धन्ना किवि पावपव्वेसु ॥ २९ ॥

[सो.] अइसय॰ अतिशयप्रापितपापा गाढा पापी जीव **धम्मि॰** धर्ममय पर्व आवइ तउ पापइजिनइ[1] विषइ[2] रत हुइं। पाप जि करइं। धर्म ऊपरि मन नावइं। **न चलंति॰** केतलाइ धन्य पापपर्विइ आविइ[3] आपणा **सुद्धधम्म॰** चोष्य धर्मतउ चलइं नहीं, क्षुभइं नहीं। तेहना मन लगारइ धर्मतउ डोलइ नहीं। तेह भणी उत्कृष्ट पुण्यवंत अनइ उत्कृष्ट पापवंतहूइ संसर्गिइ कांइ विशेष न हुइं ॥ २९ ॥

[जि.] अतिशयप्रापितपाप। उत्कृष्ट पापवंत पुरुष **धम्मिय-पव्वेसु तो वि** धार्मिक पर्वे सांवत्सरादिकेइ **पावरया** पापरत पापई

---

१ पापजिनइ. २ 'विषइ' नथी. ३ 'आविइ' नथी.

जु करइं। **धन्ना किवि** केई एक धन्य कृतपुण्य पुरुष **पाव-पव्वेसु** पापोत्सविइ आविइ हूंतइ सुद्ध धर्म हूंतउ जीवदयामूल धर्म हूंतउ **न चलंति** न डोलइं। तिणि कारणि उत्तम अनइ जघन्य संसर्गि न लीजइ ॥ २९ ॥

[मे.] उत्कृष्ट पापना धणी धार्मिक पर्युषणाप्रमुख पर्व आव्ये हूंते पापनइ विषइ रत हुइं। केई एक धन्य कृतार्थ पापपर्व आव्ये हूंते धर्म हूंता न चालइं न डोलइं ॥ २९ ॥

[सो.] हव लक्ष्मी ऊपरि वात कहइं[1]।

[जि.] लक्ष्मीना बे भेद देखालइ।

लच्छी वि हवइ दुविहा एगा पुरिसाण खवइ[2] गुणरिद्धी।
एगा य उल्लसंती अपुण्णपुण्णाणुभावाओ ॥ ३० ॥

[सो.] लच्छी वि॰ लक्ष्मीइ संसारमाहि बिहु प्रकारि हुइ। **एगा॰** एक लक्ष्मी आवती हुंती पुरुषहूइं[3] गुणरूपिणी ऋद्धि क्षेपइ नीगमइ। लक्ष्मी हुइ, पूठिइं[4] हियानउ धर्म जाइ। अनइ विनय विवेक गांभीर्य[5] दाक्षिण्यादिक पुण[6] जाइं। गर्वांधित थिउ हींडइ। **एगा य॰** अनइ एक भाग्यवंतनइ लक्ष्मी हुइ, पूठिइं विनय विवेक दाक्षिण्यादिक गुण उल्लसइं। धर्म ऊपरि मन आवइ। भारेखम[7] गंभीरपणउं आवइं। बिहुं रिद्धिनउं कारण कहइ छइ। **अपुण्ण॰** जे अभागीआनइं लक्ष्मी हुइ छइ ते पाछिलइ भवि कांइ पापनउं[8] बंधिउं जीवदयारहित पंचाग्नि माघस्नानादिक अज्ञान कष्टरूप पुण्य[9] तेहनइं प्रभाविइं हुइं। तेह लगी पाप करी आघउ मरी दुर्गतिइं जाइं। संसारि रुलइं। अनइ जे धर्म-

---

१ कहइ छइ. २ खिवइ. ३ रहइं ४ पूठि. ५ गांभीर्यादि. ६ गुण. ७ भारेखमी. ८ पापानुबंधिउं. ९ पुण्यनइं.

वंतनइ घरि लक्ष्मी हुइ[1] तेह लगइ अनेक[2] तीर्थयात्रा प्रासाद संघ-भक्ति दानादिक अनेक पुण्य करी मरी परलोकि सुगतिइं जाइं। आघउ संसार तरइ ॥ ३० ॥

[जि.] लक्ष्मी द्विविध **हवइ** हुइ। **एगा** एक लक्ष्मी पुरुषनी गुणरिद्धि दक्षदाक्षिण्यादिक गुणलक्ष्मी क्षिपावइ नीगमइ। **एगा** एक लक्ष्मी गुणश्रेणि उल्लसावइ। किसातउ ? अपुण्य अनइ पुण्य तेह बिहुं-नउ अनुभाव प्रभाव तेहतउ। एतलइ पापानुबंधिनी लक्ष्मी पुरुषनी गुणश्रेणि विणासइ। बीजी पुण्यानुबंधिनी लक्ष्मी गुणश्रेणि वधारइ ॥ ३०॥

[मे.] लक्ष्मी पुणि बिहु प्रकारि हुइं। एक लक्ष्मी आवती हूंती पुरुषनइं औदार्यादिक गुण अनइ ऋद्धि बिहुंनइं क्षपावइ नीगमइ। एक लक्ष्मी आवती हूंती विनयविवेकादिक गुणनइ उल्लसावइ। ते पाप नइ पुण्यनउ अनुभवु जाणिवउ ॥ ३० ॥

[सो.] हेव कुगुरु कुश्रावकनूं[3] स्वरूपुं[4] कहइ छइ।

[जि.] अज्ञान गुरु-श्रावकनउं स्वरूप कहइ छइ।

गुरुणो भट्टा जाया सड्ढे थुणिऊण लिंति दाणाइं।
दुन्नि[5] वि अमुणियसारा दूसमसमयम्मि बुड्डुंति ॥ ३१ ॥

[सो.] गुरुणो० ईणइं दुःषमाकालि[6] संप्रति गुरु भाट थ्या। जिम भाट छंद छप्पया[7] करी लोक रीझवी दान लिइ तिम गुरुइ वंश पूर्वज गोत्र वर्णवी श्रावक रंजवी आहारवस्त्रादिकना दान लिइं। **दुन्नि वि** बे गुरु अनइ श्रावक **अमुणिय०** 'दुलहा[8] हु

---

१ हुइ ते पाछिलइ भवि जीवदया सहित जिनधर्म आराधिउ हुइ तेह पुण्यानुबंधिया पुण्यनइ प्रभाविइ हुइं. २ अनेकि. ३ °नुं. ४ स्वरूप. ५ जि. दोन्नि. ६ दुःखमाकालि. ७ छपाया. ८ 'दुल्लहा...एहवउं' सुधीनो अंश सो. नी पहेली प्रतमांथी पडी गयेलो होइ बीजी प्रतमांथी लीधो छे.

मुहादाई मुहाजीवी वि दुल्लहा । मुहादाई मुहाजीवी दो वि गच्छंति सुग्गइं ' । एहवउं जिनवचननउं रहस्य अजाणतां बूडइं । संसारसमुद्र-माहि घणउं रुलइं ॥ ३१ ॥

[जि.] गुरु भाट कीर्त्तिपाठक **जाया** हूया । **सड्ढ** श्रावक स्तवीनइं दानादिक लिइं । **दोन्नि वि०** ते बेई लेणहार देणहार **अमुणियसारा** अज्ञातजिनवचनरहस्य हूंता **दूसमयम्मि** दुःषमाकालि बूडइं ॥ ३१ ॥

[मे.] जे गुरु श्रावकनइं वषाणी दानादिक लिइ ते गुरु भाट सरीषा जाणिवा । ते बिन्हइ वीतरागना वचनरहस्य अजाणता हूंता दुक्खमाकालमाहि बूडइ ॥ ३१ ॥

[सो.] हिवडां संसारना[1] जाण, धर्मना जाण, सांभलणहार नइ कहिणहार[2] थोडा ए वात कही[3] छइ ।

[जि.] अथ दुःखमाकालस्वरूप कहइ ।

मिच्छपवाहे रत्तो लोओ परमत्थजाणओ थोवो ।
गुरुणो गारवरसिया[4] सुद्धं धम्मं[5] निगूहंति ॥ ३२ ॥

[सो.] **मिच्छपवाहे०** घणउ लोक जे मिथ्यात्वप्रवाह कूडउ गुणना विचार पाखइ आपणा कुलक्रमागत देव गुरु धर्मनइं प्रवाहि रातउ छइ । **परमत्थ०** परमार्थ गुण जोई देव गुरुधर्मनउं बोलउं[6] तेहनउ जाण थोडउ । अनइ जे गुरु छइ तेहइ **गारव०** मान, महत्त्व,[7] प्रतिष्ठा, जिह्वाना रस, सयरनां सुख एह्वे गारवने रसे वाहिया

---

१ ' संसारना जाण ' नथी. २ कहणहार जाण. ३ कहइ. ४ गारवरहियं. ५ जि.मे. मग्गं. ६ लेवउं. ७ महुत्त्व.

सूधउ धर्म खरउ मार्ग **निगूहंति** गोपवइ। साचउं प्रकासइ नहीं ॥ ३२ ॥

[जि.] मिथ्यात्वप्रवाहि रक्त लोक छइ। परमार्थतत्त्वनउ जाण लोक **थोवो** थोडउ छइ। अनइ गुरु गारवरसिक सुखलंपट हूंता **सुद्धं मग्गं** सुद्धउ मार्ग महाकष्टतपःसाध्य मार्ग **निगूहंति** छपावइ। ते दुःषमाकालनउं प्रमाण ॥ ३२ ॥

[मे.] लोक प्रवाहइं मिथ्यात्वनइ प्रवाहि रातउ छइ। पणि परमार्थनउ जाण थोडउ। कांइ देव गुरुना विचार जोई आस्ता आणइं ते थोडा। तेही गुरु ऋद्धिगारव, रसगारव, सातागारव रसे पूरिया हूंता सूधउ मार्ग धर्मनउ प्रकासइं नही ॥ ३२ ॥

[सो.] देव-गुरुनां स्वरूप जाणतां दोहल्या। ए वात कइ[1] छइ।

[जि.] अथ देव-गुरुनउं स्वरूप दुर्ज्ञेय इसुं कहइ छइ।

सव्वो वि अरिहं देवो सुगुरु गुरु भणइ नाममित्तेण।
तेसिं सरूवं सुहयं[2] पुण्णविहूणा न पावंति[3] ॥ ३३ ॥

[सो.] सव्वो वि ए[4] सघलाइ श्रावक लोक नाममात्रि[5] इम कहइं—'अम्हारइ अरिहंत देव सुसाधु गुरु। अरिहंतो मह देवो जावज्जीवं सुसाहुणो गुरुणो इति वचनात्।' **तेसिं सरूवं** पुण ते देवगुरुनउं स्वरूप[6] **सुहयं** शुभहेतु साचउं। पुण भाग्यरहित जीव न प्रामइं। न ओलखइं[7] ॥ ३३ ॥

---

१ कहइ. २ सुपुन्नविहूणा. ३ मे. पाविंति. ४ 'ए' नथी. ५ नाममात्रइ. ६ सुरूप. ७ न उलषइं.

[जि.] सघलउइ लोक 'अरिहंत देव, सुसाधु गुरु' इसुं नाममात्रि करी भणइ। तेह देवगुरुनउं स्वरूप **सुहयं** सुखज्ञेय जाणतां सुहेतलडं, पुण पुण्यरहित हूंता पुण्य विणु **न पावंति** न लहइं लोक। तेही दुःषमाकालनउं प्रमाण ॥ ३३ ॥

[मे.] सघलाइ लोक इम कहइं, 'अम्हारइ अरिहंत देव, सुसाधु गुरु' इम नाममात्र कहइं। पणि ते देवगुरुनउं स्वरूप सुखदायक पुण्यरहित जीव न पांमइं ॥ ३३ ॥

[सो.] वली एह जि वात कहइ छइ।

[जि.] अथ मूर्ष जिनाज्ञाप्रतिपालक ऊपरि द्वेष वहइ। इसुं कहइ छइ।

सुद्धा जिणआणरया केसिं पावाण हुंति[1] सिरसूलं[2]।
जेसिं ते सिरसूलं[3] तेसिं मूढाण ते गुरुणो ॥ ३४ ॥

[सो.] **सुद्धा जि०** जे महात्मा सूधा खरा जिन वीतरागनी आज्ञा पालइ छइं, खरउं चारित्र पालइं छइं। ते महात्मा केतलाइ पापी भ्रष्टाचार रहइं सिरिसूल मस्तकसूल थाइं। **जेसिं ते०** जे भ्रष्टाचार रहइं सुविहित सिरिशूल थाइं। **तेसिं०** केतलाइ मूढ मूर्खलोकनइ तेह जि गुरु भणी मानीइं ॥ ३४ ॥

[जि.] शुद्धा प्रांजल सरलचित्त निर्मल **जिणआणरया** जिनाज्ञारत पुरुष केही पापियाहूइं **सिरसूलं** मस्तकशूल समान **होंति** हुइं। एतावता जिनाज्ञापालक पुरुष देखी द्वेष लगी माथइ त्रिसूल चडावइं पापी जीव। **जेसिं ते सिरसूलं०** जेहां पापीयांनइं ते मस्तकशूल हुइ तेहां मस्तकशूलधारक मूढ मूर्ख तणा ते जिनाज्ञारत

1 जि. होंति. 2 सिरि सूलं. 3 सिरि सूलं.

गुरु हुइं। ते मूढ इसुं मानइं जु जिनाज्ञारक्त गुरु हुइ। अनेरा नही। मिथ्यात्वीइ जैन गुरु मानइं। इति भावः ॥ ३४ ॥

[मे.] जे सूधी वीतरागनी आज्ञा पालइं, खरउं चारित्र पालइं ते केतलां पापीनइ मस्तकि सूल समान हुइं। जीयांनइ मस्तकि ते सुगुरु सूल समान हुइं, केतलांएक मूर्खनइं तेही गुरु करी मानीइ ॥३४॥

[सो.] ए वात दृढइ छइ।

[जि.] अथ मिथ्यात्वप्रबलता प्रकाशइ।

हा हा गुरुअ अकज्जं सामी न हु अत्थि कस्स पुक्करिमो।
कह जिणवयणं कह* सुगुरु सावया कह इअ अकज्जं ॥३५॥

[सो.] आहा गुरुऊ ए मोटुं अकार्य विरूऊ। स्वामी ठाकुर को नथी, जे शिक्षा दिइ। **कस्स०** कहइ आगलि पोकारि कीजइ। **कह जिणवयण०** किहां एहवउं जिनवचन निष्कलंक अनइ किहां सुविहित सद्गुरु अनइ किहां उत्तम श्रावक। **कह इअ०** किहां ए अकार्य। एह्वा भ्रष्टाचार अब्रह्मचारी गुरुनउं आराधिवउं। ए मोटउ त्रासउ। इसिउ भाव।

[जि.] हा हा इति खेदे। **गुरुअ अकज्जं** मोटउं अकार्य। स्वामी **न हु** निश्चइं नथी। **कस्स पुक्करिमो** किह आगलि पूकारां। ते किसुं अकार्य? **कह जिणवयण०** किहां जिनवचन, किहां सुगुरु, ते श्रावक किहां, जे सुगुरु श्रावक जिनवचनरहस्य जाणइं। इसिउं अकार्य। जिम किसीइ अपूर्व वस्तु गमी हूंतीइ ठाकुर पाखइ किह

---

* **सो.** नी बीजी प्रतनुं १२ मुं पत्र नहीं होवाथी आ स्थानथी मांडीने ४०मी गाथाना बालावबोधनी प्रथम पंक्तिमां 'सिउं कीजइ' शब्दो सुधीनां पाठान्तर नोंधी शकायां नथी.

आगलि पुकार कीजइ। तिम इणि दुषमाकालि जिनरहस्य सुगुरु श्रावक थोडा ॥ ३५॥

[मे.] **हा** इसिइ खेदि। ए मोटउं अकार्य। स्वामी तीर्थंकर केवली नहीं। कहि आगलि पुकार कीजइ। किहां ते जिनवचन सूधां। किहां ते सुविहित गुरु। किहां ते सूधा श्रावक, जे गुरुनी परीक्षा न करइ। ए मोटउं अकार्य ॥ ३५॥

[सो.] कुगुरु आश्री वात कहइ छइ।

[जि.] अथ लोकप्रवाह कहइ छइ।

[मे.] हिव कुगुरु भणी वात कहइ।

सप्पे दिट्ठइ नासइ लोओ न हु किंपि कोइ अक्खेइ।
जो चयइ कुगुरुसप्पं हा मूढा भणइ[1] तं दुट्ठं[2] ॥ ३६॥

[सो.] **सप्पे०** साप दीठइ लोक नासइ। अनइ कोइ कांइ न कहइं 'विरूउं कीधउं।' **जो चयइ०** जो जाणीनइ कुगुरुरूपिउ साप छांडइ। **हा मूढा०** अहो मूढ केतलाइ मूर्ख इम कहइ, 'ए दुष्ट विरूउं कीधउं। आपणा गुरु मूकी अनेरउ गुरु आश्रियउ' ॥ ३६॥

[जि.] सापि दीठइ लोक नासइ। पुण अनेरउ कोइ लोक नासणहार रहइं **किंपि** कांई **न हु अक्खेइ** न कहइं। **जो चयइ कुगुरुसप्पं०** जे पुरुष त्यजइ कुगुरुरूपिउ साप तेहहूइं मूढ मूर्ख **तं दुट्ठं** अयुक्तुं भणइ जु 'इणिइ आपणउ गुरु मेल्ही अनेरउ गुरु कीधउ, तिणि कारणि ए दुट्ठ' इसिउं कहइं। इसिउ न जाणइं जु इणिइं कुगुरु मेल्ही सुगुरु आश्रउ ॥ ३६॥

---

१ जि. मे. भणहि. २ जि. दट्ठं.

[मे] सापिं दीठइ लोक नासइ। तेहनइं लोक पणि कांई न कहइं जि 'विरूअउं कीधउं।' जे कुगुरुरूपीउ साप छांडइं त्यजइं। हा इसिइ खेदि। मूढ मूर्ख केतलाइ इम कहइ, 'ए दुष्ट ईणइं विरूअउं कीधउं' ॥ ३६ ॥

[सो.] साप पाहइं कुगुरु अधिकउ। ए वात कहइ छइ।

[जि.] सापई य पाहिइं कुगुरु दुष्ट। इसिउं देखालइ छइ।

सप्पो इक्कं मरणं कुगुरु अणंताइं देइ मरणाइं।
तो वर[1] सप्पं गहिअं मा कुगुरुसेवणं भद्द ॥ ३७ ॥

[सो.] **सप्पो०** साप डसइतउ एक जि वार मरण दिइ। **कुगुरु०** भ्रष्टाचारी गुरु अनेक कुमार्ग प्ररूपतउ सेवक रहइ अनंता मरण दिइं। घणउ संसार वधारइं। **तो वर०** तेह भणी अहो भद्र! उत्तम साप लीधउ रूडउ। **मा कुगुरु०** पुण कुगुरुनउं सेविवउं रूडूं नही ॥ ३७ ॥

[जि.] सर्प इक्कं एक मरण दिइ सेविउ हूंतउ। कुगुरु सेविउ हूंतउ अणंतां घणां मरण दिइं। तो तेणि कारणि सापनउं लेवउं रूडउं। पुण कुगुरुनउं सेविवउं रूडउं नही, हे भद्र! हे सुज्ञ! ॥ ३७ ॥

[मे.] सापु कुपिउ हूंतउ एक वार मरण दिइ अनइ कुगुरु सेविउ अनंतां मरण दिइ। तेह भणी साप झालिउ, ग्रहिउ भलउ। हे भद्र! कुगुरुनउं सेविवउं रूडउं नहीं ॥ ३७ ॥

[सो.] एह्वा कुगुरु जीव छांडइ नहीं। किसिउं कीजइ। ए वात कहइ छइ।

---

1 जि. वरि.

[जि.] अथ लोक गड्डरिकापवाहि पड़िउ हूंतउ कांई न मानइं। इसुं कहइ छइ।

जिणआणा वि चयंता गुरुणो भणिऊण जं नमिज्जंति।
ता किं कीरइ लोओ छलिओ गड्डरिपवाहेण ॥ ३८ ॥

[सो.] जिण० जे जिन वीतरागनी आज्ञा छांडइं छइ विराधिइ छइं, तेहइ गुरु भणी लोक जं नमस्करीइं वांदीइं वांदणां दीजइं। **ता किं०** तउ सिउं थाइ। लोक गड्डरिकाप्रवाहि छलिउ व्यापिउ छइ। जेहि एक गाडरी जाइं तीहि बीजीइ गाडरी जाइं। तिम एक लोक करता देखी बीजाइ ति करइं ॥ ३८ ॥

[जि.] जिणआणा वि० जिननी आज्ञा त्यजता मूकता जे हुइं तेही **गुरुणो भणिऊण** गुरु करी जत् जे **नमिज्जंति** नमस्करीइ वांदणां दीजइं। **ता** तउ पछइ गड्डरिकाप्रवाहि करी छलिउ हूंतउ लोक **किं कीरइ**। अपि तु लोक कांइ न जाणइं। जिम गाडर-पशु गाडर केडइ जाइ, तत्त्वातत्त्वविचार कांई न जाणइं, तिम लोकई ॥ ३८ ॥

[मे.] जिननी आज्ञा छांडता जे छइ तेहनइं जे गुरु करी नमइं, तउ लोक बापडउ किसउं करइ। सघलुयइ गड्डरीप्रवाहि छलिउ। जिहां एक गाडरु काई देषीनइ जाइ तिहां सघली गाडरी प्रवाहि पडी जाइं तिम लोक तत्त्वार्थ अणजाणतां एकि माहरा करीनइ जाइं। अनइ बीजा प्रवाहि देषावेषिं जाइं मानइं ॥ ३८ ॥

[सो.] कुगुरु छांडतां लोक दाक्षिण्यं करइं। ए वात कहइ छइ।

[जि.] लोक कुगुरु मेल्हतउ दाक्षिण्य करइ। अनेरइ स्थानकि दाक्षिण्य न करइं। इसुं कहइ।

निद्दक्खिण्णो लोओ जइ कुवि मग्गेइ रुट्टिआखंडं ।
कुगुरूण संगचयणे दक्खिण्णं ही महामोहो ॥ ३९ ॥

[सो.] निद्दक्खिण्णो० लोक एहवउ निर्दाक्षिण्य, जइ कोइ रोटीनउ खंड कटकउ मागइ तउ न दिइं । थोडइ काजि दाक्षिण्य न करइ । **कुगुरूण०** अनइ कुगुरुनउ संग एवडा अनर्थनउ हेतु ते छांडतां दाक्षिण्य करइं । काणि आणइ । **ही महामोहो** आहा ! ए महामोह, मोटउं अजाणिवउं, गाढउं मूर्खपणउं कहीइ ॥ ३९ ॥

[जि.] लोक निर्दाक्षिण्य गुणरहित छइ । **जइ कुवि** जइ कोई रोटीनउ कटकउ मागइ, तउ दाक्षिण्य मेल्ही रोटीकुटकई न दिइं । कुगुरु भ्रष्ट गुरुनउ संसर्ग तेहनइ मेल्हिवइ दाक्षिण्य करइ । **ही** खेदे । **महामोहो** मोटउं अजाणिवउं ॥ ३९ ॥

[मे.] लोक एहवउ निर्दाक्षिण्य । जइ को रोटीनउ खंड मागइ तउ हिं नापइं । अनइ कुगुरुना संगनउं त्यजिवउं तिहां दाक्षिण्य करइं । कहइं, ' हउं आपणा प्रियागत गुरु किम मूंकउं ' । पणि **ही** इसइ खेदि ए सहू महामोहनउं विलसित ॥ ३९ ॥

[सो.] वली कुगुरु आश्री कहइ छइ ।

[जि.] अथ मिथ्यात्वीनउं विलसित देखालइ ।

किं भणिमो किं करिमो ताण हयासाण धिट्ठदुट्ठाणं ।
जे दंसिऊण लिंगं खिवंति नरयम्मि मुद्धजणं ॥ ४० ॥

[सो.] किं भणिमो० सिउं बोलीइ । सिउं कीजइ । तेहहूंइ[1] हताश अभागिया रहइं, धीठ रहइ, दुष्टचित्तहूइ[2] **जे दंसिऊण०** जे लिंग महात्मानउ वेष आपणपामाहि देखाडीनइ

---

१ रहइं. २ रहइं.

खिवंति० मुग्धजन लोला[१] लोकनइं कुमार्ग सीषवीनइ नरगि घालीइ[२] छइं। दुर्गति पडइं छइं ॥ ४० ॥

[जि.] तेहां हताश भग्नाश घेठा महादुष्ट मिथ्यात्वी तणउं किसुं भणां। तेहहूइं किसुं करां। जे मिथ्यात्वी लिंग दर्शनीनउ वेषमात्र देखालीनइं **मुद्धजणं** मुग्ध लोला लोकहूइं नरकमाहे घातइं ॥ ४० ॥

[मे.] किसउं भणां। केहां किसउं करां। हत हणी आश जेहनी ते हताश तीयां हताशनइ दुष्टांनइं घेठांनइं। ते कउण। जे ओघउ मुहपत्ती रूप वेष देषाडीनइ मुग्ध भोला लोकनइं नरकमाहि षेपइं ॥ ४० ॥

[सो.] कुगुरु आश्री निंदास्तुति ग्रंथकार कहइ छइ[३]।

[जि.] भव्यलोकहूइं कुगुरु देखी सुगुरु ऊपरि गाढी भक्ति उल्लसइ। इसुं जणावइ।

कुगुरु वि संसिमो हं जेसिं मोहाइ चंडिमा दट्ठुं।
सुगुरूण उवरि भत्ती अइनिविडा[४] होइ भव्वाणं ॥ ४१ ॥

[सो.] कुगुरु वि० ते कुगुरुइ वषाणउं भलइं दीठा। **जेसिं०** जेहनी मोहादिक चेष्टा अब्रह्मचारीपणुं[५] अनइ क्रोधादिके करी क्रूरपणउं देखीनइ **सुगुरूण०** सुगुरु सुविहित चारित्रीया ऊपरि अति गाढी भक्ति भव्य[६] रहइं उपजइ। कुमति दीठी पाषइ भाति ऊपरि मन न बइसइं ॥ ४१ ॥

[जि.] ईहां ग्रंथकार श्री**नेमिचंद्र भंडारी** कहइ छइ। जउ हउं कुगुरु भ्रष्टचारित्रीया गुरुई **संसिमो** प्रसंसउं वर्णवउं।

---

१ भोला. २ घातइं. ३ 'छइ' नथी. ४ अइनिवडा. ५ °पणउं. ६ भव्य जीव.

जेसिं जेहां कुगुरुनी मोहादिक **चंडिमा** कूरता **दट्ठुं** देखी करी सुगुरु सुविहित ऊपरि भक्ति अतिनिबिड अतिगाढी भविक जीवहूइं हुइं। जिम ऊभति दीठीइं भातिइं मन रहइ ॥ ४१ ॥

[मे.] ते कुगुरु वखाणउं हूं भलइं दीठउ। जेहनी अब्रह्म-सेवादिक कुचेष्टा देषी अनइ सुगुरु ऊपरि भक्ति अतिनिबिड हुई। भविक जननइ कारणि ॥ ४१ ॥

[सो.] विरूउ काल देखी जाणहूइं विशेष सम्यक्त्व उल्लसइ। ए वात कहइ छइ।

[जि.] अथ मिथ्यात्वोदयिई हूंतइ भव्य जीवहूइं सम्यक्त्व उल्लसइ। ए वात कहइ।

जह जह तुट्टइ धम्मो जह जह दुट्ठाण होइ अइउदओ[1]।
सम्मद्दिट्ठिजियाणं तह तह उल्लसइ सम्मत्तं ॥ ४२ ॥

[सो.] ईणइं पांचमइ आरइ दुःखमाकालि जिम जिम धर्म त्रूटइ ओछउ[2] थाइ। **जह जह दुट्ठाण०** अनइ जिम जिम दुष्ट पापी जीव रहइं अतिउदय ठाकुराई ऋद्धि मान महत्त्व हुइ। **सम्मद्दिट्ठि०** तिम तिम सम्यग्दृष्टि जाण जीव रहइं सम्यक्त्व गाढउं गाढउं उल्लसइ दृढ थाइ। जिसिउं परमेश्वरि दुःखमाकालनउं स्वरूप कहिउं हूतउं तिसिउंइ जि देखीइ छइ। इम परमेश्वरना वचन ऊपरि आस्था आवइ। जिम ए साचउं तिम बीजाइं परमेश्वरनां वचन साचां। इसी परि सम्यक्त्व दृढ थाइ ॥ ४२ ॥

---

१ जि. इह उदओ. २ उछउ.

[जि.] जिम जिम धर्म तूटइ। वली जिम जिम **दुट्ठाण** दुष्टाशयहूइं इह दुःषमाकालि **उदओ** अति प्रौढिमा हुइ तिम तिम सम्यग्दृष्टि जीवहूइं सम्यक्त्व उल्लसइ वाधइ ॥ ४२ ॥

[मे.] ईणि दुःखमाकालि जिम जिम धर्म त्रूटइ ओछउं थाइ तिम तिम पापी जीव दुष्टनइं उदय महत्त्व हुइ। अनइ सम्यग्दृष्टि जीवनइं सम्यक्त्व गाढउं उल्लसइ दृढ थाइ ॥ ४२ ॥

[सो.] हवडांनइ कालि धर्मना धणीनइं जं उदय नही। ते कारण कहइ छइ।

[जि.] सम्यग्दृष्टि जीवहूइ सम्यक्त्व वाधतइं हूंतइ अति उदय न दीसइ।

[मे.] हिवडांनइ कालि धर्मवंतइं उदयु नहीं ते कहइ।

जयजंतुजणणितुल्ले अइउदओ जं न जिणमए होइ।
तं किट्ठकालसंभवजिआण अइपावमाहप्पं ॥ ४३ ॥

[सो]. जयजंतु॰ जगना जीव रहइं जननी माता समान छइं ए जिनमत सर्व जीवहूइं सुखदायक हितकारक भणी। एहवा जिनमतमाहि जं जीव रहइं अतिउदय नही, ऋद्धि मान महत्त्व ठाकुराई नही। **तं किट्ठ॰** ते क्लिष्टकाल विरूउ दुःखमाकाल हुंड अवसर्पिणी भस्मक ग्रहनइं उदय करी सहित एवहि कालि ऊपना जे भारेकम्मी[1] जीव तेहना पाछिल्या भवनां अतिपापनउं माहात्म महिमा जाणवउं[2]। जे धर्म लहइं छइं ते भव्य जीव आगलि केतलइं कालि मोक्ष जाणहार[3] इसिउं जाणिवउं ॥ ४३ ॥

---

१ भारीकम्मी. २ जाणिवउ. ३ जाणहार भणी.

[जि.] जय० जगज्जंतु त्रिभुवनना जीव तेहहूइं जननी माता तेह समान जिनमत। तेहमाहे अतिउदय **जं न होइ** जउ न हुइ ते क्लिष्टकालसंभव दुःषमाकालोत्पन्न जीवहूइं पापनउं माहात्म्य जाणिवउं ॥ ४३ ॥

[मे.] जगत्रयनां जंतुनइं जननी माता समान सुखदायक एवहा जे जिनमत जिनशासननइं जे उदयु नहीं हुतउ ते क्लिष्टकालिइं ऊपना जे जीव तीयां जीवना अतिपापनउं माहात्म्य ॥ ४३ ॥

[सो.] केवलु[1] जीव बाह्यवृत्तिं डाहउ[2] देखीइ। पुण विपरीतबुद्धि हुइ। तेहू पापजिनु उदय। इसिउं जाणिवउं।

[जि.] अथ क्लिष्टकालसंभवजीवमाहात्म्य प्रकासइ।

धम्मम्मि जस्स माया मिच्छत्तगहो उस्सुत्ति नो संका।
कुगुरु वि करइ सुगुरु विउसो वि स पावपुण्ण त्ति ॥४४॥

[सो.] जेह रहइं धर्म करतां माया आवइ। मनि अनेरूं हुइ, देखाडइ अनेरउं। **मिच्छत्तगहो** अनइ मिथ्यात्व किमहइं मूंकइ नही। **उस्सुत्ति नो संका**। उत्सूत्र बोलतां करतां मनि शंका पापनउ भय नही। **कुगुरु०** कुगुरु भ्रष्टाचार तेहइ सुगुरु भणी मानइ थापइ। **विउसो वि०** ते लोकमाहि विदुष डाहु भणी प्रसिद्ध हुइ तउ ते पापपूर्ण पापिइं भरिउ जाणिवउ। अथवा जे कुगुरु भणी मानइं ते पाप पुण्य करी मानइं। आगलि तेह रहइं निश्चइं रूडूं नथी। हवडां पाछिल्या भवनइं अज्ञान कष्टनइं प्रमाणि डाहपण चतुराइ आवी छइ ॥ ४४ ॥

---

१ केतलु. २ डाहाउ.

[जि.] धर्मकार्य ऊपरि जेहहूइं माया कपट हुइ अनइ जेहहूइं मिथ्यात्वनउ ग्रह कदाग्रह हुइ, जे वली कुगुरु भ्रष्ट गुरु ईसु गुरु करइ ते पुरुष पाप पुण्य जिम पुण्य करी मानइ ॥ ४४ ॥

[मे.] धर्मकार्यनइ विषइ जेहनइं माया अनइ मिथ्यात्वनउ जेहनइ कदाग्रहु, उत्सूत्र बोलतउ जे शंका नाणइं अनइ कुगुरु रहइं सुगुरु करी मानइ ते विदुष डाहउ हूंतउ पाप पुण्य करी मानइ ॥ ४४ ॥

[सो.] धर्मकर्त्तव्य वीतरागनी आज्ञाइं जि कीजतउं रूडउं । ए वात कहइं ।

[जि.] अथ जिनेन्द्रनी आज्ञाइं कीधउं धर्मकार्य सफल हुइ । इसुं कहइ ।

किच्चं पि धम्मकिच्चं पूआपमुहं जिणिंदआणाए ।
भूअमणुग्गहरहिअं आणाभंगाओ दुहदायं[1] ॥ ४५ ॥

[सो.] **किच्चं पि०** करिवा योग्य जे धर्मना कर्त्तव्य देवपूजा प्रासाद दानादिक[2] तेहइ वीतरागनी आज्ञाइ जि करतां सफल थाइं । अन्यायनी लक्ष्मीइं करी कहइ रहइं[3] गाढउ ऊचाट संताप करी जिहां पंचेन्द्रिय जीवना वध हुइं एह्वा मोटा आरंभ करी स्पर्धा कीर्त्तिनइं अभिलाखइं जे धर्मकर्त्तव्य कीजइं ते आज्ञारहित कहीइं । एह जि वात कहइ छइ । **भूअमणुग्गह०** भूत जीव तेहनउ अनुग्रह अनुकंपा जे धर्मइ करतां नही । निर्द्धंधसपणउंइ[4] जि हुइ । ते वीतरागनी आज्ञाना[5] भंग भणी दुःखदाई जि थाइ । जिम मिथ्यात्वीनां एवडां धर्मकर्त्तव्य जीवदयारहित दुःखदायीआंइ जि थाइं ॥ ४५ ॥

---

१ दुहादाइं. जि. दुहदाइं. २ यात्रादिक. ३ रइं. ४ °पणउं जि. ५ आन्याना.

[जि.] जिनेंद्रनी आज्ञाई जि करी **पूआपमुहं** पूजाप्रमुख धर्मकार्यई **किच्चं** करिवउं। अनेरउं किसुंउं कहिवउं। जइ जिनपूजादिक धर्मकार्य वीतरागनी आज्ञाइं करइ तउ सफल। अन्यथा निष्फल इति भावः। **भूयमणुग्गहरहिअं आणाभंगाउ दुहदायं।** जिनाज्ञा-भंगइतउ जीवानुकंपारहित हूंतउं धर्मकार्य कीधउंई सामुहुं दुःखदायक हुइ ॥ ४५ ॥

[मे.] कर्त्तव्य धर्मनां करणीय वांदणां पडिक्कमणां पूजाप्रमुख वीतरागनी आज्ञाइं जि करतां सफल थाइं। भूत प्राणी तेहनउ अनुग्रह अनुकंपा तिणि करी रहित ईणिहि जि कारणि आज्ञानउ भंग। अनइ तेह आज्ञाभंग लगी धर्मनां कर्त्तव्य दुःखदायक हुइं ॥ ४५ ॥

[सो.] एक जीव घणाइं धर्मकर्त्तव्य करइं। पुण कांई मिथ्यात्व न छांडइ। एह ऊपरि कहइ छइ।

[जि.] अथ मिथ्यात्वी लोकहूइं हितवचन बोलइ।

कट्ठं करंति अप्पं दमंति दव्वं चयंति धम्मत्थं[1] ।
इक्कं न चयंति[2] मिच्छत्तविसलवं जेण बुड्डुंति ॥ ४६ ॥

[सो.] कट्ठं करंति० एक जीव छट्ठट्ठम मासक्षपणादिक अनेक तपनां कष्ट करइं। **अप्पं दमंति** आपणपउं दमइं। शील पालइं। अनेक खावापीवाना नियम पालइं। **दव्वं चयंति०** धर्मनइ कारण[3] लक्ष्मी सइ सहस लाष कोडिप्रमाण वेचइ। **इक्कं न चयइ०** पुण एक मिथ्यात्वरूपिआ विसनउ[4] लव न मूंकइ। कांई कांई मिथ्यात्व करइं जि। **जेण बुड्डुंति** जीणइं मिथ्यात्वि[5] करी संसारसमुद्रमाहि बूडाइं[6] ॥ ४६ ॥

---

१ जि. धम्मत्थी. २ मे. चयहिं. ३ कारणि. ४ विसनु. ५ मिथ्यात्व. ६ बूडइं.

[जि.] कष्ट करइ। आपणपउं दमइं। धर्मार्थी लोक द्रव्य गृह सर्वस्वसार **चयंति** त्यजइं। एतलउं पूर्वोक्त करइं। पुण एक उत्सूत्रविषलव न त्यजइं, जिणि उत्सूत्रविषलवि करी जीव संसारसमुद्रि बूडइं। तिणि कारणि उत्सूत्र बोलिवउं नही ॥ ४६ ॥

[मे.] कष्ट करइं। आपणपउं दमइं। इंद्रिय वशि करइं। धर्मनइ काजि शत सहस्र धन वेचइं। पणि एक उत्सूत्रनउ लवलेश न मूंकइं, जेह लगी संसारसमुद्रमाहि बूडइं ॥ ४६ ॥

[सो.] धर्मवंति सुगुरुनी संगति करिवी। ए वात कहइ छइ।

[जि.] अथ सुसंसर्गि धर्मोपराग वाधइ इसुं कहइ।

[मे.] पुण्यवंते सुगुरुनी संगति करिवी।

सुद्धविहिधम्मराओ वड्ढइ सुद्धाण संगमे सुअणा[1]।
सो विअ असुद्धसंगे निउणाण वि गलइ अणुदिअहं ॥४७॥

[सो.] सुद्धविहि॰ सूधी विधि खरु आचारु खरउ धर्म तेह ऊपरि अनुराग बांधइ। **सुद्धाण सं॰** जु सूधा खरा[2] चारित्रिया गुरु अथवा खरा श्रावकनी संगति करइ। हे सुजन! **सो विअ॰** ते खरी विधि खरा धर्मनउ अनुराग असुद्ध[3] भ्रष्टाचारु गुरु भ्रष्ट श्रावकनी संगति करइ ते **निउणाण वि** डाहाइ रहइं गलइ जाइ। निरंतर[4] उछउ थाइ। यत उक्तं श्री**उपदेशमालायां**—

आलावो संवासो वीसंभो संथवो पसंगो अ।
हीणायारेहिं समं सव्वजिणिंदेहिं पडिकुट्ठो ॥

---

१ जि. मे. सुयणु. २ 'खरा चारित्रिया गुरु अथवा' एटलुं नथी.
३ असुद्ध जु. ४ नियंतर.

अन्नुन्नजंपिएहिं हसिउद्धुसिएहिं खिप्पमाणो अ ।
पासत्थमज्झयारे बला वि जई वाउली होइ ॥ (गा. २२३-२४)

[जि.] हे सयण स्वजन ! **सुद्धाण संगमे** शुद्ध गुरुनइ संजोगि सुद्ध विधि निर्मलाचार धर्मानुराग वाधइ । **सो विअ** ही जु शुद्धविधिधर्मानुराग अशुद्ध भ्रष्टचारित्रियानइ प्रसंगि **निउणाण वि** निपुण डाहांईनउ अनुदिन प्रतिदिन **गलइ** विणसइ । मूर्षनउ धर्मानुराग कुसंसर्गि विणसइ । तेहनउं किसुं ॥ ४७ ॥

[मे.] सूधी वीतरागनी भाषी विधि तेहनइ विषइ अनुराग वाधइ । सुद्ध खरा चारित्रिया तेहनइ संगमि । हे स्वजन ! ते पुण असूधा उत्सूत्रना बोलणहार तेहनइ संगिइं निपुण डाहाइनइ विषइ धम्मनी मति गलइ । अनुदिवस निरंतर ॥ ४७ ॥

[सो.] जिहां भ्रष्टाचारनुं बल हुइ तिहां धर्मवंतिइ न वसिवउं । ए वात बिहु गाहे कहइ छइ ।

[जि.] मिथ्यात्वीमाहे श्रावकि न वसिवउं । इसुं कहइ ।

[मे.] जिहां कुचारित्रिया वसइं रहइं तिहां धर्मवंते वसिवउं नहीं । ए संबंध बिहुं गाहे कहइ ।

जो सेवइ सुद्धगुरू असुद्धलोआण सो महासत्तू ।
तम्हा ताण सयासे बलरहिओ मा वसिज्जासु ॥ ४८ ॥

[सो.] जे सुद्ध गुरु सुविहितचारित्रिया तेहनी सेवा करइं ते **असुद्धलोआण०** असुद्ध मिथ्यात्वी भ्रष्टाचार रहइं जे आश्रित लोक छइं तेह रहइं ते महावइरी जेह भणी ते तेहरइं[1] उच्छेदिवा जि[2] वांछइ । **तम्हा ताण०** तेह भणी मिथ्यात्वी भ्रष्टाचाराश्रित लोक कन्हइ

१ रहइं. २ 'जि' नथी.

श्रावकि बलरहित हुंतइं न वसिवउं । जु कांई ठाकुर महूंता प्रधाननउं बल हुइ तउ वसिवउं ॥ ४८ ॥

[जि.] जे पुरुष सुद्ध गुरु सेवइ ते शुद्ध गुरु सेवणहार श्रावक **असुद्धलोआण** मिथ्यात्वाश्रितहूइं **महासत्तू** महावइरी । **तम्हा** तिणि कारणि **ताण सगासे** तेहां असुद्ध लोकनइ समीपि **बलरहिओ** नीबल हूंतइ श्रावकि न विसवउं । किंतु साहम्मीमाहे वसिवउं ॥ ४८ ॥

[मे.] जे सूधा गुरुनइं सेवइं ते अशुद्ध लोक मिथ्यात्वी भ्रष्टाचारीनइं ते महावयरी जेह भणी तेहनइं उच्छेदिवा वांछइ। **तम्हा** तेह भणी भ्रष्टाचारी मिथ्यादृष्टि आश्रित लोक कन्हइ श्रावकि बलरहित हूंतइ वसिवउं नहीं ॥ ४८ ॥

[जि.] एह जि अर्थु प्रकारान्तरि कहइ ।

समयविऊ असमत्था सुसमत्था जत्थ जिणमए अविऊ । तत्थ न वट्टइ धम्मो पराहवं[1] लहइ गुणरागी ॥ ४९ ॥

[सो.] **समयविऊ** सिद्धांतना जाण धर्मवंत जिहां असमर्थ हुइं । **सुसमत्था०** अनइ जिहां जिनमतना अजाण मिथ्यात्वी भ्रष्टाचारी अतिसमर्थ हुइं । **तत्थ न वट्टइ०** तिहां धर्म न वर्त्तइ । चालइ नहीं । तिहां **पराहवं०** गुणनउ अनुरागी धर्मी[2] जीव पगि पगि पराभवइ[3] जि लहइ । अपमान जि प्रामइ ॥ ४९ ॥

[जि.] जिणि स्थानकि **समयविऊ** सिद्धांतना जाण जैन असमर्थ हुइं अनइ वली **जिणमए अविऊ** सिद्धांतना अजाण मिथ्यात्वी लोक जिहां **सुसमत्था** अतिसमर्थ सबल वसइं तिहां

---

१ मे. पराभवं. २ धर्मार्थी. ३ पराभव.

वसता श्रावकनउ धर्म न वाधइं। किंतु सामुहउं धर्मानुरागी श्रावक पराभव लहइं ॥ ४९ ॥

[मे.] समय सिद्धांत तेहना जाण जिहां असमर्थ हुइं अनइ जिनमतना अजाण जिहां गाढा समर्थ हुइं तिहां धर्म वाधइ नहीं। तिहां गुणानुरागी धर्मवंत पगि पगि पराभव लहइ। हलूपण पामइं ॥ ४९ ॥

[सो.] कुमार्गी पापी समर्थ हुंतउ जं धर्मना काज माहि न मिलइ तउ रूडउं। ए[1] वात कहइ छइ।

[जि.] मिथ्यात्वी लोक धर्मवंत न हुइ तउ भलउं। तेहनउं कारण कहइ।

जं न करइ अइभावं कुमग्गसेवी[2] समत्थओ धम्मे।
ता लट्ठं अह कुज्जा ता पीडइ सुद्धधम्मत्थी ॥ ५० ॥

[सो.] जं न करइ॰ जं अमार्गसेवी कुमार्गी मिथ्यात्वी खुंट खरड[3] राजादिकि मानिउ समर्थ हूंतउ धर्मनइ विषइ अतिभाव न करइं, धर्मना काजमाहि न मिलइं **ता लट्ठं** तु रूडउं। जु धर्मनां काजमाहि मिलइ, माहिल्या[4] मर्म जाणइ तउ **ता पीडइ॰** शुद्ध धर्मार्थी रहइं चाडी[5] भाडीइं करी पीडइ। अथवा जं ते मिथ्यात्वी समर्थ हुंतउ आपणा धर्म मिथ्यात्व[6] म्लेच्छादिकना मत उपरि अतिभाव न करइ, बरड बटींगइ जि जउ हुइ तउ भलउ। जउ ते आपणा मत ऊपरि घणउ भाव करइ तउ आपणा मतनइं कदाग्रहइं बीजाइहूइं

---

१ 'ए...छइ' नथी. २ जि. उमग्गसेवी, मे. अमग्गसेवी. ३ खरड चाड. ४ माहिला. ५ चाडीवचाडीइं. ६ मिथ्यात्वी.

आपणा मत मनाविवा भणी शुद्ध धर्मार्थी रहइं पीडइ । आपणउ धर्म करावइ बलात्कारिइं ॥ ५० ॥

[जि] उन्मार्गसेवी मिथ्यात्वी समर्थ सबल हूंतउ धर्म ऊपरि अतिभाव गाढी वासना ज न करइं **ता लट्ठं** ते भलउं। **अह** अथवा मिथ्यात्वी धर्म ऊपरि आदर करइ **ता** तउ पछइ **सुद्धधम्मत्थी** निर्मल धर्मकरणहारहूइं पीडइ दूहवइ ॥ ५० ॥

[मे.] जे कुमार्गनउ सेवणहार समर्थइ हूंतउ धर्मनइ विषइ अतिभाव न करइ धर्मना काममाहि मिलइ नही **ता लट्ठं** तउ रूडउं । अथ जउ किमइ करइ तउ आपणा मत मनाविवा भणी सुद्ध धर्मार्थीनइं चाडीहनी करी पीडइ । आपणउ धर्म बलात्कारि करावइ ॥ ५० ॥

[सो.] जइ सर्व श्रावकहूइं[1] एकपणु हुइं तउ धर्मनइं[2] पराभव करी न सकइं । ए वात कहइ छइ ।

[जि.] श्रावकहूइं वसिवानउ प्रकार कही साहम्मीमाहे समेला होइवउं । इसुं कहइ छइ ।

जइ सव्वसावयाणं एगत्तं हुंत मिच्छवायम्मि ।
धम्मट्ठियाण सुंदर ता कह णु[3] पराहवं कुज्जा ॥ ५१ ॥

[सो.] जइ सव्व० जइ सर्व पक्षना श्रावक रहइं मिथ्यात्वना वादनइ विषइ एकमत हुइ । सविहूंनउ मनु एक सरिखउ मिथ्यात्व निर्लोठवा अथवा जिनमत स्थापवा ऊपरि हुइ तउ **धम्मट्ठियाण०** धर्मार्थी लोक रहइ हे सुन्दर ! **ता कह०** तउ मिथ्यात्वी पराभव अपमान किम करत ? न करत । पुण कालनइ

---

१ रहइं. २ धर्म रहइं. ३ जि. कहण.

विशेषिइं माहोमाहि जि जूजूआं मन । तीणइं करी मिथ्यात्वी पराभव करइं ॥ ५१ ॥

[जि.] जइ किमइ सर्व श्रावकहूइं एकमत एकधर्मीपणउं **हुंत** होयते **ना** तउ हे सुन्दर ! मिथ्यात्ववादमाहे धर्मार्थी धर्मवंत श्रावकहूइं **कहूण** कउण एक पराभव अपमान **कुज्जा** करत ? अपि तु श्रावकहूइं कोइ पराभव न करत । किं तु सहू कोई मानत ॥ ५१ ॥

[मे.] जउ किमइ सर्व पक्षना श्रावक मिथ्यात्वी साथि विवादि ऊपनइ हूंतइ एकइं मति हुइं तउ हे सुंदर ! धर्मार्थी धर्मस्थित तेहनइ, कहउ न, कउण पराभव करत ? अपि तु कोई न करत ॥ ५१ ॥

[सो.] जे पुरुष महर्द्धिक धर्मनु आधार हुइं तेहनी प्रशंसा करइं छइं ।

[जि.] अथ श्रावकांहे मोटा श्रावकहूइं गरूयडि देखालइ ।

तं जयइ[1] पुरिसरयणं सुगुणड्ढं हेमगिरिवरमहग्घं ।
जस्सासयम्मि सेवइ सुविहिओ सुद्धजिणधम्मं ॥५२॥

[सो.] ते पुरुषरूपिउं रत्न जयवंत वर्त्तउ । **सुगुणड्ढं** उत्तमगुणे करि आढ्य पूरिउं । **हेमगिरि०** सोनानउ[2] पर्वत मेरु तेहनी परि महार्घ[3] ते पुरुष सर्वोत्तम कहिवाइ । **जस्सासयम्मि** जेहनइ आश्रइ जेहनइ वलि[4] सांनिध्यइं करी **सुविहिओ** सुविधिरत साचा धर्मनउ आराधक सूधउ निष्कलंक जिनधर्म सेवइ आराधइ । जेहनइ बलि धर्म चालइ, जे पुरुष धर्मवंतनइं आधार दिइ ते पुरुष गाढ[5] उत्तम कहीइ ॥ ५२ ॥

---

१ जि. मे. जयउ. २ सोनानु. ३ महर्घ्य. ४ बलि. ५ गाढु.

[जि.] ते पुरुषरत्न जयवंतु हुउ । किसउ छइ पुरुषरत्न ? **सुगुणड्ढं** सु भला परोपकारादिक गुण तेह करी आढ्य समृद्ध भरिउ पूरिउ । वली किसु छइ ? हेमगिरिवर मेरु पर्वत तिह सरीषउ महर्घ्य पूज्य मानीतउ । मोटाई करी मेरुपर्वत सरीषउ । ते पुरुषरत्न कउण ? **जस्सासयम्मि** जेह पुरुषरत्ननइ आश्रयि आधारि सुविहिरत सन्मार्गसेवणहार सुश्रावक **सुद्धजिणधम्मं** निर्मलउ जिनधर्म सेवइ ॥ ५२ ॥

[मे.] ते पुरुषरत्न जयवंतउ हुउ, जे सोभन भला गुण तिणि करी आढ्य सहित । वली ते पुरुष केवहउ ? मेरुपर्वत तेह्नी परि महर्घ्य । जेह्नइ आश्रइ सांनिध्य लगी सुविधि भली विधि तेह्नइ विषइ तत्पर हूंतउ सूधउ जिनधर्म सेवइ आराधइ ॥ ५२ ॥

[सो.] वली एह जि वात कहइ छइ ।

[जि.] वली संघि पुरुषिहूइं मोटाई प्रकासइ ।

सुरतरुचिंतामणिणो अग्घं न लहंति तस्स पुरिसस्स ।
जो सुविहियजणाणं धम्माधारं सया देइ ॥ ५३ ॥

[सो.] कल्पद्रुम चिंतामणि लोकमाहि मनोवांछित देनहार[1] भणी अति उत्तम कहीइं । पुण तेह पुरुषनउ ते अर्घ मूल न लहइ । ते पुरुष तेहइ पइं[2] गाढउ[3] उत्तम । **जो सुविहि०** जे पुरुष सुविधिरत खरी विधि खरी सामाचारीना आराधण्हार[4] लोक रहइं धर्माधार सदैव दिइं । कल्पद्रुम चिंतामणि एकइ[5] जि भविं इह लोकनु उपकार मात्र करइं । आ पुरुष धर्मनु उपकार करतउ

१ दिन्हार. २ पाहइं. ३ गाढ. ४ आराधन्हार, ५ एक.

स्वर्गमोक्षादिकनां सुख दिइं। तेह भणी कल्पद्रुम चिंतामणि सरीषु किम कहिवाइ ? ॥ ५३ ॥

[जि.] तेह पुरुषहूइं सुरतरु कल्पवृक्ष चिंतामणि रत्न अर्घ पूजा न लहई। तेह पुरुष सरीषा न हुइं। किं तु कल्पवृक्ष चिंतामणि पाहइं अधिक दातारपणातउ ते पुरुष मोटउ ते किसु ? जे पुरुषरत्न सुविधिरत जनहूइं सन्मार्गतत्पर लोकहूइं धर्मनु अवष्टंभ दिइं ॥ ५३ ॥

[मे.] कल्पवृक्ष चिंतामणि प्रमुख पदार्थ धर्माधार पुरुष आगलि मूल कांई न लहइं। समवडि न पामइं। जे सुविधि भली विधि तेहनइं रत जन लोक तेहनइं सदा धर्मनउ आधार दिइं ॥ ५३ ॥

[सो.] को कहिसिइ 'ते[1] पुरुषनइं वर्णविवइं[2] सिउं काज छइ ?' ए वात ऊपरि कहई[3]।

[जि.] तिणि कारणि तेहां सत्पुरुषनां नामग्रहण करिवउं। पवित्र होइवा भणी। इसुं कहइ।

लज्जंति जाणिमो हं सप्पुरिसा निअयनामगहणेणं।
पुण तेसिं कित्तणाओ अम्हाण गलंति कम्माइं ॥ ५४ ॥

[सो.] लज्जंति० ए वात जाणउं[4]। जं[5] सत्पुरुष आपणा नामनइं लेवइं, कोई तेहनउं नाम लेई वषाणइ तु लाजइं जि। नीचुं साम्हुं जोइं। **पुण तेसिं०** पुण तऊ तेहनुं कीर्त्तन गुण बोलउं[6] छउं[7]। ते कारण ए तीणइं करी अम्हारां कर्म गलइं पाप फीटइं। कर्मनिर्जरा हुइ। आपणाइ जि लाभ भणि कीजइं छइं। इस्यु भाव ॥ ५४ ॥

---

१ तेह. २ वर्णवइं. ३ कहइ छइ. ४ जाणउं छउं. ५ जे. ६ बोलइं. ७ छइं.

[**जि.**] हउं इसुं जाणउं । सत्पुरुष धर्माधारनउ दातार पुरुष निजक नामग्रहण करी लाजइं । जइ लाजइं तउ लाजउ । **पुण तेसिं कित्तणाओ** पुण तेह सत्पुरुषनां नामकीर्त्तनइतउ बोलिवातउ अम्हारां कुकर्म गलइं फीटइं । सत्कर्म उदय पामइं ॥ ५४ ॥

[**मे.**] हउं इसउं जाणउं जे सत्पुरुष आपणा नामग्रहणि लीजतइ लाजइं । पणि तेहनउं कीर्त्तन वषाण करतां अम्हारां कर्म गलइं । एह भणी सत्पुरुषनउं नामु लीजइ ॥ ५४ ॥

[**सो.**] धर्मइ करतां जि[1] धर्म न हुइ । ए वात कहइ छइ ।

[**जि.**] जिनाज्ञा पाषइ धर्म कीधउ निःफल । इसुं कहइ ।

आणारहिअं कोहाइसंजुअं अप्पसंसणत्थं च ।
धम्मं सेवंताणं न य कित्ती नेव[2] धम्मं च ॥ ५५ ॥

[**सो.**] जे धर्म आराधइं पुण वीतरागनी आज्ञारहित निह्नवादिकनी परि । अनइ क्रोधादिकिइं करी संयुत धर्म करइं । यावज्जीव वरिस चउमास ऊपहिरा क्रोध मान माया लोभ धरइं । परइ धर्मक्रिया करइं । तथा **अप्पसंसणत्थं च ।** को आपणी प्रशंसा भणी धर्म करइ । जिम 'लोक मू रहइं वषाणइ । हुं लोकमाहि रूडउ भावउं' इसी बुद्धिइं धर्म करइ । **धम्मं०** ईणइ प्रकारइ धर्म करतांइं एहूइं[3] **न य कित्ती०** इह लोकि कीर्त्तिइ नही । परलोकि धर्मऊ नही । कर्मक्षय न हुइं । काज कांई सरइ नहीं ॥ ५५ ॥

[**जि.**] जिनाज्ञारहित, क्रोध मान माया लोभप्रमुखसंजुक्त आत्मप्रशंसानइ अर्थि धर्म सेवता धर्म करता पुरुषहूइं **न य कित्ती०** लोकमाहे वर्णनाइ नही । अंतरंगमाहे धर्म नही ॥ ५५ ॥

---

१ जिम. २ जि. मे. नेय. ३ एहवइं.

[मे.] आज्ञाइं करी रहित, क्रोधादिसंयुक्त, आपणी प्रसंसानइ अर्थि धर्म सेवता हूंता कीर्त्ति पणि न हुइ । धर्म पणि न हुइं ॥ ५५ ॥

[सो.] वली उत्सूत्रभाषी ऊपरि बि गाह कहइ छइ ।

[जि.] अथ उत्सूत्रभाषी पुरुषनउं स्वरूप कहइ ।

[मे.] वली उत्सूत्रभाषी ऊपरि बि गाह कहइ ।

इअरजणसंसणाए घिट्ठा[1] उस्सुत्तभासिए न भयं ।
ही ही ताण नराणं दुहाइं जइ मुणइ जिणनाहो ॥ ५६ ॥

[सो.] **इअरजण०** इतरजन सामान्य अजाण लोक तेहनी प्रशंसा करइं । 'ए भला' इम वषाणइं । तीणइं करी धीरष्ट हुंता अभिमानि चड्या उत्सूत्र बोलतां मनमाहि भय न आणइ । भावइ तिस्यां उत्सूत्र प्ररूपइं । **ही ही०** अहाहा ! तेह पुरुष रहइं परलोकि दुर्गति ग्यां हुंतां जे दुःख हुसिइं ते दुःखनुं[2] स्वरूप जिननाथ श्रीसर्वज्ञ जि जाणइ । अनेरउ[3] को न जाणइ । ति दुःख जिह्वाए केतलीए न बोलाइं ॥ ५६ ॥

[जि.] इतर जन सामान्य लोक तेहनी प्रसंसाइं करी **हिट्ठा** साहंकार आपणपउं मोटा मानइं जे अनइं जेहहूइं **उस्सुत्तभासिए** उत्सूत्रसिद्धांते न कूडउं तेहनउं भाषण बोलिवउं तेह हूतउ भय नही । कूडउं बोलतां जेहहूइं पापनउ भय नहीं । **ही ही** खेदे । तेहे सगर्व तणां उत्सूत्रभाषक नर तणां **दुहाइं** हउणहार दुःख जइ किमइ मुणइ जाणइ तउ **जिणनाहो** श्रीसर्वज्ञदेव जाणइ । दुःखहूइं प्रचुरपणातउ अनेरउ छद्मस्थ जाणी न सकइं । जे सगर्व हूंतु उत्सूत्र बोलइ तेहहूइं अनंतां दुःख हुइ । जिम मरीचिहूइं उत्सूत्र भाषणतउ घणां हूयां ॥ ५६ ॥

---

१ जि. मे. हिट्ठा. २ दुःखनउं. ३ अनेरु.

[मे.] इतर जन सामान्य लोक तेहनी प्रसंसा सांभली हृष्ट हर्षित हूंता अहंकारि चड्या उत्सूत्र बोलता भय नाणइं । भावइ तिम उत्सूत्र बोलइं । **ही ही** इसइ खेदि । ते पुरुषनइ परलोकि जे दुक्ख होइस्यइ ते वीतरागइ जि जाणइ ॥ ५६ ॥

[जि.] अथ उत्सूत्रभाषणनं फल कहइ ।

उस्सुत्तभासगाणं बोहीनासो अणंतसंसारो ।
पाणच्चए वि धीरा उस्सुत्तं ता[1] न भासंति ॥ ५७ ॥

[सो.] **उस्सुत्त०** उत्सूत्रना बोलनहार[2] रहइं बोधिबीजनउ नाश हुइ । आवते भवे सम्यक्त्व लहइ[3] नहीं । अणंतउ संसार वाधइं । अनंता भवनां दुःख भोगवइ । **पाणच्चए वि०** तेह भणी प्राणत्यागिइं जीवितव्यनइ संकटि पडइ[4] जे धीर धर्मवंत ते उत्सूत्र न बोलइं ॥ ५७ ॥

[जि.] उत्सूत्रभाषक पुरुषहूइं बोधि सम्यक्त्व तेहनउ नास हुइ । तिणि कारणि बोधि पाषइ अणंतउ संसार । **ता** तिणि कारणि प्राणत्यागिई प्राणई जातइ हुंतइ धीर धर्मपर साहसिक उत्सूत्र न भाषइं न बोलइं । वरि प्राणई नीगमइं । पुण कूडउं न बोलइं । तथा चोक्तं श्रीउपदेशमालायां—

जीअं काऊण पणं **तुरुमिणि दत्तस्स कालियज्जेणं ।**
अवि य सरीरं चत्तं न य भणियमहम्मसंजुत्तं ॥ (गा. १०५)

[मे.] उत्सूत्रना बोलणहारनइं बोधिबीजनउ नाश हुइ । अनंतउ संसार हुइ । ते भणी प्राणनइ त्यागिइं धर्मवंते उत्सूत्र न बोलिवउं ॥ ५७ ॥

---

१ ते. २ बोलन्हारु. ३ लहं. ४ पडिइ.

[सो.] अविधि[१] वखाणवउ नहीं । ए वात कहइ छइ ।

[जि.] उत्सूत्रभाषणनिषेध करी असन्मार्गनी वर्णनाइ न करिवी । इम कहइ छइ ।

मुद्धाण रंजणत्थं अविहिपसंसं कयाइ[२] न करिज्जा ।
किं कुलवहुणो कत्थ वि थुणंति[३] वेसाण चरिआइं ॥५८॥

[सो.] **मुद्धाण०** मुग्ध लोला[४] तेहना रंजववा[५] आवर्जवा भणी **अविहि०** उन्मार्गमेलु कोई करतु हुइ तेहनी प्रशंसा जाणि कहीइं[६] न करिवी[७] । दृष्टांत कहइ छइ । **किं कुल०** उत्तम कुलनी वधू स्त्री महासती ते किहांइं वेश्या अधम स्त्री असती तेहनां चरित्र वखाणइ ? न वषाणइं जि । तिम[८] उत्तम उन्मार्गनी प्रशंसा न करइं जि ॥ ५८ ॥

[जि.] मुग्ध मूर्ष तेह रंजिवानइ अर्थि कारणि अविधिप्रसंसा कुमार्गाचारनी वर्णना **कयावि** किवारई सत्पुरुष **न करिज्जा** न करइं । **किं कुलवहुणो** कुलवधू कुलस्त्री **वेसाण चरियाइं** वेश्यानां चरित्र कर्त्तव्य **कत्थ वि** किहाई स्तवइं वर्णवइ ? अपि तु न स्तवइं । कुमार्गनी प्रसंसाई कीधी हूंती दोष भणी हुइ इति भावः ॥ ५८ ॥

[मे.] मुग्ध लोला लोक तेहनइ रंजिवा भणी अविधिनी प्रसंसा कहीइ न करिवी । किसउं कुलवधू किवारइं वेश्या असतीनां चरित्र वषाणइं ? अपि तु न वषाणइं । तिम उत्तम उन्मार्गनी प्रशंसा न करइं जि ॥ ५८ ॥

---

१ अवधि. २ जि. मे. कयावि. ३ जि. थुवंति. ४ भोला. ५ रंजवा. ६ कहीइहि. ७ करवी. ८ ते.

[सो.] वीतरागनी आज्ञा जि ऊपरि वात कहइ छइ ।

[जि.] किसा जीव जिनाज्ञा न भांजइ । किसा भांजइ । इसी व्यक्ति करइं ।

जिणआणाभंगभयं भवसयभीआण[1] होइ जीवाणं ।
भवभयअभीरुआणं जिणआणाभंजणं कीडा ॥ ५९ ॥

[सो.] **जिण०** जिन वीतरागनी आज्ञानु भंग तेहनु[2] भय तेह रहइं हुइ । **भवसय०** जे संसार बांधिवानइं भइं करी बीहता हुइं जीव तेह रहइ[3] हुइ । ते इसिउं जाणइं । 'वीतरागनी आज्ञा भांजीनइ राषे घणा संसारमाहि रुलुंइं[4] ।' जे **भवभय०** जे संसारना भय थिकु[5] नथी बीहता, धीरठपणुं करइं तेहरइं[6] जिन वीतरागनी आज्ञानुं जे भाजिवउं ते क्रीडामात्र । लीलाइं भाजइं । भांजता वार कांई न लागइ ॥ ५९ ॥

[जि.] **भवसयभीयाण** जन्मनां शत तेह हूंता भीत बीहता जे जीव तेह जीवहूंइं जिनाज्ञानउ भंग भय छइ । जन्ममरण दुःख हूंता जे बीहइ ते जीव जिनाज्ञा न भांजइ । अनइ वली जे जन्ममरण हूंता अभीरुक अभीहता तेहनी **कीडा** रामति **जिणआणा-भंजणं** जिनाज्ञालोपमय जि । जे दुःख हूंता न बीहइं ते जिनाज्ञा भांजइ ॥ ५९ ॥

[मे.] जिन वीतराग तेहनी आज्ञानउ भंग तेहनउ भयु केहनइं हुइ ? जे भव संसारना भय तेहनइ विषइ बीहइं । अनइ जे संसार हूंता बीहता नथी तेहनइं जिनआज्ञानउं भांजिवउं क्रीडामात्र । हेलाइं भांजइं ॥ ५९ ॥

---

१ °भय°. मे. °भय°. २ तेहनउं. ३ रइं. ४ रलुं. ५ थिकुउ. ६ तेह रहइं.

[सो.] हिव कहइ छइ । मूर्खनउ[1] सिउ दोष ? जे जाण छइ तेह अहंकारि चव्या वीतरागनी आण विराधता देखइं नही । ए वात कहइ छइ ।

[जि.] जिणिइं जिनाज्ञा भंजाइ ते कर्मपरवशता जीवनी कहइ ।

को असुआणं दोसो जं सुअसहिआण चेअणा नट्ठा ।
धिद्धी कम्माण जओ जिणो वि लद्धो अलद्ध[2] त्ति ॥ ६० ॥

[सो.] को असुआणं० अश्रुत अपढ मूर्ख तेहनउ कउण दोस ? **जं सुअ०** जेह भणी श्रुतसहित पाठना[3] धणी तेह[4] रहइं चेतना नाठी । जाणताइ करता ते वीतरागनी आज्ञारहित उत्सूत्र प्ररूपइं । **धिद्धी०** पापियां[5] कर्म जि रहइं धिग पडु जेहे कर्मे इम जाणइ रोलवीइं । **जिणो वि०** जीणइ करी वीतराग देव लाधु[6] अणलाधु थाइ । उत्सूत्र बोलतां परमेश्वर ओलषिउइ[7] अणओलषिउ[8] थाइ ॥ ६० ॥

[जि.] असुआणं० अश्रुत सिद्धांतना अजाण तेहनउ किसु दोष ? अपि तु न कोई । कांइं ? **जं** जंउ श्रुतसहितनी ज्ञानवंतनी चेतना नाठी, जिम वाइं हाथीयाई उडइं जइ तउ पूणी ऊडिवानउं किसुं दूषण ? जिहां पंडितई विरांसीइं तिहां मूर्षनउ किसु दोष ? जेह कर्म लगी श्रुतना जाणई भोलवीइं तेह कर्महूइं धिक्कार पडउ । किम ? जउ **जिणो वि** श्रीवीतराग देव लाधुई अणलाधउ करइ । इति इसा कारणतउ कर्म नंद्य ॥ ६० ॥

[मे.] अश्रुत अपढ तेहनउ कउण दोस ? जउ किमइ श्रुत-

---

१ 'मूर्खनउ......कहइ छइ' एटलो पाठ बीजी प्रतमांथी पडी गयेलो छे.
२ मे. अलद्धो. ३ पाढना. ४ तेहइ. ५ अथवा पापियां. ६ लाधुइ. ७ उलषिउइ. ८ अणउलिषिउ.

सिद्धांत तेहनी चेतना नाठी। अथवा धिग्धिःकारक कर्मइजिनइ हु। जेह भणी जिन वीतराग लाधउइ अणलाधउ। कांइ ? उत्सूत्र बोलतां वीतराग अणओलखिउ हूउ ॥ ६० ॥

[सो.] केतलाइ मूर्ख पंडितंमन्य[1] हूंता सूधा धर्मना करणहार रहइ हसइं। ए वात कहइ छइ।

[जि.] अथ जिनधर्म हास्यस्थानक नही। इसुं कहइ।

[मे.] केतला सूधा धर्मना करणहारनइं हसइं। ते कहइ।

इअराण वि उवहासं तमजुत्तं भाय कुलपसूआणं।
एस पुण कोवि अग्गी जं हासं सुद्धधम्मम्मि ॥ ६१ ॥

[सो.] **इअराण॰** इतर अधर्म मूर्ख तेहनुं[2] जं हासुं[3] कीजइ, हे भ्रात बांधव! कुलीन जे[4] पुरुष छइ तेहनइ अयुक्तउं। कुलीन रहइं तेहइ करिवा[5] नावइं। **एस पुण॰** ए पुण मोटउ आगि गाढउ विरूउ। **जं हासं॰** जं शुद्ध निष्कलंक धर्मना आराधक रहइं हसीइ ॥ ६१ ॥

[जि.] हे भाय हे भ्रातः! **इअराण वि** मूर्खइनउं उपहास्य जे हुइ ते उपहास्य कुलप्रसूतहूइं अयुक्तउं। एतावता अकुलोत्पन्ननउं हासउं मूर्खई न करइं। एषः पुनः कोऽपि अग्निः। आ कोई वली आगि जउ शुद्धइ निर्मलइ धर्मि हासउं ॥ ६१ ॥

[मे.] इतर पामर लोक तेहनूइ हासउं कुलना प्रसूत तेहनइं हे बांधव! युक्तउं नहीं। ए कोई मोटउ आगि जे सूधा जिनधर्मनउं हासउं कीजइ ॥ ६१ ॥

---

१ °मन्यइ. २ तीहनुं ३ हासं. ४ जेह. ५ कहिवा.

[सो.] गाढा मिथ्यात्वी पापीइ[1] रहइ उत्तम हित करिवउं चींतवइं[2]। ए वात कहइ छइ। बिहु गाहे करी।

[जि.] अथ सत्पुरुष दुष्टईहूइं हित करइं। इसुं जाणावइ।

दोसो जिणिंदवयणे संतोसो जाण मिच्छपावम्मि[3]।
ताणं पि सुद्धहियया परमहिअं दाउमिच्छंति ॥ ६२ ॥

[सो.] दोसो॰ जेह रहइ जिनेन्द्रना वचन ऊपरि वीतरागना धर्म ऊपरि दोष[4] अनइ मिथ्यात्वि पाप ऊपरि संतोष छइ, मन तिहां बइठूं छइ। **ताणं पि॰** जेहनां हियां सूधां निष्कषाय निर्मल छइं ते तेहइ[5] रहइं धर्महित देवा वांछइं। धर्मनु लाभ करिवु[6] चीतवइ। जाणइं किम्हइ ए[7] बापडा धर्म मिलइं तू रूडउं ॥ ६२ ॥

[जि.] जाण जेहहूइं जिनेन्द्रनां वचन ऊपरि द्वेष हुइ, वली जेहहूइं मिथ्यात्ववाद ऊपरि संतोष हुइ, एतावता जिनवचन जे न मानइं, किं तु मिथ्यात्व मानइं तेहईहूइं शुद्धहृदय निर्मलचित्त सत्पुरुष परम हित देवा वांछइ ॥ ६२ ॥

[मे.] जेहनइं जिनेन्द्रनां वचन ऊपरि द्वेष हुइ, जेहनइं मिथ्यात्त्व ऊपरि संतोष हुइ, तीयांइंनइं सुद्धहृदय निर्मल चित्तना धणी परम हित देवा वांछइ ॥ ६२ ॥

[जि.] अथ पूर्वोक्त अर्थ युक्तउ करी स्थापइं।

अहवा सरलसहावा[8] सुअणा सव्वाथ हुंति अविअप्पा।
छड्डंतविसभराण[9] वि कुणंति करुणं दुजीहाणं ॥ ६३ ॥

---

१ पापी. २ चीतइ. ३ मिच्छवायम्मि. ४ द्वेष. ५ तेहरइं. ६ करिवउ. ७ एहइ. ८ मे. °सुहावा. ९ जि. मे. छड्डंति°.

[सो.] अहवा० अथवा जे सुजन हुइं ते सविहुं ऊपरि सरलस्वभाव हूंता किहांइ विकल्प नाणइ। रूडा[1] नइ विरूआइ सविहुं ऊपरि हित चीतवइ। **छड्डंत०** जे द्विजिह्व साप विषना भर समूह छांडइं गरलइ जि[2] मूंकइं ते[3] ऊपरि उत्तम दयाइ[4] जि करइं। जे चाड दुर्जन कुवचन बोलइं ते ऊपरि उत्तम 'ए बापडउ किमइ पुण्य प्रामिसिइ?' इसी दया जि करइं ॥ ६३ ॥

[जि.] अथवा सरलस्वभाव स्वजन सगा सर्वत्र अविकल्प विकल्परहित हुइं। जिम लोक आपणां लोचन ऊपरि विकल्प भेद आंतरउं कांई न करइं। तथा ते वली सर्परूप द्विजिह्वहूइं करुणा दया करइं। जिम श्रीपार्श्वनाथि सर्प ऊपरि दया कीधी ॥ ६३ ॥

[मे.] अथवा सरलस्वभाव जे स्वजन ते सघले किहांई विकल्प नाणइं। समभाव आणइं। विषना भर गरल छांडइं छइं जे द्विजिह्व सर्प तीहइं ऊपरि करुणा आणइं। जे चाड दुर्जन कुबोल बोलइं तेहइ ऊपरि उत्तम चींतवइं जि 'ए बापुडउ किमही पुण्य पामिस्यइ?' इसी जे दया करइं ॥ ६३ ॥

[सो.] सम्यक्त्व गाढं दुर्लभ छइ। ए वात कहइ छइ।

[सो.] अथ विरला केई एकहूइं सम्यक्त्व छइ। न सघलाई-हूइं। इसुं कहइ।

[मे.] सम्यक्त्व गाढउं दुर्लभ छइ। ए वात कहइ।

गिहवावारविमुक्के[5] बहुमुणिलोए वि नत्थि सम्मत्तं।
आलंबणनिरयाणं[6] सड्ढाणं भाय किं भणिमो ॥ ६४ ॥

---

१ रूडाइ. २ 'जि' नथी. ३ तेहइ. ४ दया. ५ जि. मे. गिहि°. ६ जि. °निलयाणं.

[सो.] **गिह०** घर कुटुंबना व्यापार जेहे छांड्या छइं ते घणा मुनिलोक महात्माइ माहि सम्यक्त्व नथी। जेहनइ काजकाम कांई नथी तेहनां मन रोगि कष्टि[1] आवि मिथ्यात्व करिवा लहबइं। **आलंबण०** जे श्रावक गृहस्थ जेहनइ अनेक छोरू बेटा बेटी विवाह वृद्धि व्यवसाय काजकामनां आलंबन छइं तेहनइ मिथ्यात्वनइ विषइ लहबहिवानूं अहोभ्रात[2]! किसिउं कहीइ? ॥ ६४ ॥

[जि.] गृहस्थव्यापार गृहप्रारंभादिक तिणि करी विमुक्त रहित एवहा बहु प्रचुर मुनिलोक तेहइमाहे सम्यक्त्व नथी। **हे भाय** हे भ्रातः! आलंबननिरत श्रावकहूइं किसुं भणां? जिहां सर्वसंगविनिर्मुक्त महात्माईहूइं सम्यक्त्व न हुइं तिहां श्रावकहूइं किहां हूतूं? इति भावः ॥ ६४ ॥

[मे.] जेहे घरना व्यापार मूक्या छइं एवहा घणा जे मुनिलोक तेहनइं सम्यक्त्व नथी। ए भ्रात! रोगिं कष्टिं पीड्या हूंता आलंबनना निलय जे श्रावक ते जउ सम्यक्त्व थका लहबहइं तिहां सिउं कहिवउं? ॥ ६४ ॥

[सो.] उत्सूत्र बोलतउ जीव संसारमाहि पडइ। ए वात कहइ छइ।

[जि.] अथ जीव उद्दिसी कि उपदेस बोलइ।

न सयं न परं कोवा जइ जिअ उस्सुत्तभासणं विहिअं।
ता बुड्डुसि निब्भंतं निरत्थयं तवफडाडोवं ॥ ६५ ॥

[सो.] **न सयं०** आपणपइं अथवा अनेरइं कुणहिं[3] कांई न थाइ। **कोवा०** कोप लगइ अहंकारि चडिउ जउ रे जीव! उत्सूत्र

---

१ कष्टि दुःखि. २ भ्रात बांधवइ. ३ कुणहइं.

श्रीजिनवचन[1] विरुद्ध बोलिसि[2] **ता** तउ निब्भंतं निश्चिइ[3] संसार-समुद्रमाहि बूडिसि[4] । कुणहिं रखाइसि[5] नहीं । जउ विरासइं अजाणिवा लगइ कांई उत्सूत्र बोलइ अनइ पछइ जाण्या पूठिइ[6] मिच्छा मि दुक्कड दिइ, आलोइ तु छूटइं । इसिउ भाव । **निरत्थयं०** उत्सूत्र बोलता तप क्रिया नियम सामाचारीनु स्फटाटोप आडंबर निरर्थक जाणिवउ । तीणइ करी संसारमाहि बूडता न रहीइं ॥ ६५ ॥

[जि.] कोई आपणउई नही अथवा पर अनेरउ कोई नथी । रे जीव ! जइ तइं उत्सूत्रभाषण कीधउं **ता** तउ पछइ निर्भ्रांत निःसंदेह बूडिसि । तपनउ स्फुटाटोप आडंबर निरर्थक । तूं जाणइ छइ 'तपनइ आडंबरि नही बूडउं' ए फोकट जाणि । तिणि कारणि उत्सूत्र म बोले ॥ ६५ ॥

[मे.] न आपणपइं न परपाहंति अथवा कोप लगी अहंकारवशि रे जीव ! जउ उत्सूत्रनउ भाषण कीधउं तउ तउं भ्रांतिरहित संसार-समुद्रमाहि बूडिसि । उत्सूत्र बोलतां तप नियम क्रिया सामाचारी स्फटाटोप आडंबर निरर्थक फोक जाणिवउ ॥ ६५ ॥

[सो.] साचा धर्मना धणीनइ हिइ बइसइ नही बीजउ धर्म । ए वात कहइ छइ ।

[जि.] अथ जिनेन्द्रनउं वचन हियामाहि धरिवउं । इसुं कहइ ।

जह[7] जह जिणंदवयणं[8] सम्मं परिणमइ सुद्धहिअआणं ।
तह तह लोअपवाहे धम्मो[9] पडिहाइ नडचरिअं ॥ ६६ ॥

---

१ श्रीसिद्धांत जिनवचन. २ बोलसिइ. ३ निश्चइ. ४ बूडिसिइं. ५ रखासइ. ६ 'पूठिइं...न रहीइं' एटलो पाठ सो.नी पहेली प्रतमांथी पडी गयेलो छे. ते बीजीमांथी लीधो छे. ७ गाथा ६६ अने ६७ तथा ते उपरनो बालावबोध पण सो.नी पहेली प्रतमांथी लहियानी चूकथी पडी गयेलो जणाय छे. तेथी ते भाग बीजी प्रतमांथी लीधो छे. ८ जि. जिणिंद°. ९ मे. धम्मं.

[सो.] जह० जिम जिम जिनेन्द्रवचन श्रीसर्वज्ञनु धर्म साचउ चोषा हीयाना धणी मनि परिणमइ **तह०** तिम तिम लोकरा प्रवाहिनु धर्म गुण विचार पाषइ 'आपणा देव, आपणा गुरु' इत्यादि कदाग्रह-रूप नटावाइजिना चरित्र सरीषुं प्रतिभासइ। बाह्य मंडाण जि छइ। लोकरंजना मात्र जि छइ। अभ्यंतर धर्म कांई नथी। यत उक्तं श्री**उपदेशमालायां**—

पढइ नडो वेरग्गं निव्विज्जिज्जा य बहुजणो जेण।
पढिऊण तं तह सढो जालेण जलं समोअरइ ॥ (गा. ४७४)

[जि.] जिम जिम सुद्धहृदयने हृदयि जिनेन्द्रनउं वचन सम्यक् प्रकारि परिणमइ वसइ तिम तिम निर्मलहृदय तणउं लोकप्रवाहि धर्म मिथ्यात्त्वधर्म नटचरित्र सरीषउं **पडिहाइ** प्रतिभइ शोभइ। जिम नटवानुं चरित्र फोकट तिम लोकप्रवाहि धर्म फोकट इसुं मानइ ॥ ६६॥

[मे.] जिम जिम जिनेन्द्रनां वचन सम्यग् प्रकारि परिणमइं कहिनइं सुद्ध हृदयना धणीनइं तिम तिम लोकनउ प्रवाह नटावाना चरित्र सरीषउ प्रतिभासइं। कांइ ? 'ए सहू बाह्य मंडाण। लोकरंजना मात्र, पणि आभ्यंतरि नहीं' ॥ ६६ ॥

[सो.] वली एह जि वात कहइ छइ।

[जि.] अथ जिनधर्मप्रमाण बोलइ।

[मे] वली एह जि वात कहइ।

जाण जिणिंदो निवसइ सम्मं हिययम्मि सुद्धनाणेणं।
ताण तिणं व विरायइ समिच्छधम्मो जणो सयलो ॥६७॥

[सो.] जाण० जेहनइ हीअइ साचइं जाणवइं करी सम्यग् दृढ श्रीजिनेन्द्र वसइ, वीतरागनु धर्म जेहनइ मति साचउ बइठउ हुइ

ताण० तेह रहइं मिथ्यात्वधर्म सहित लोक सघलउ तृणा सरिषउ असार प्रतिभासइ। जाणइ ए कांई नही ॥ ६७ ॥

[जि.] जाण जेहना हियामाहे निर्मलइ ज्ञानि करी सम्यक् प्रकारि श्रीजिनेन्द्र वसइ **ताण** तेहांहूइं समिथ्यात्वि धर्मि करी सहित मिथ्यात्वी लोक सघलई **तिणं व** तृणवत् तृण सरीषउ निःसार विराजति शोभइ ॥ ६७ ॥

[मे.] जेहनइ हीयइ साचइ जाणिवइ करी सूधउ वीतरागनउ धर्म वसइ तेह मनुष्यनइ मिथ्यात्त्वधर्मसंयुक्त लोक सघलइ तृणा सरीषउ असार प्रतिभासइ। जाणइ जि ए कांई नहीं ॥ ६७ ॥

[सो.] लोकनइ प्रवाहिइं[1] केतलाइं जाणइ[2] क्षुभइं। ए वात कहइ छइ।

[जि.] अथ सम्यक्त्व पाषइ श्रावकपणउं निरर्थक। इसुं बोलइ।

लोअप्रवाहसमीरणउद्दंडपयंडचंडलहरीए।
दढसम्मत्तमहाबलरहिआ गुरुआ वि हल्लंति ॥ ६८ ॥

[सो.] लोअपवाह० लोकनउ जे प्रवाह तेहरूपीआ समीरण जे वायु[3] तेहनी प्रचंड गाढी लहरि करी **दढ०** दृढ निश्चल सम्यक्त्व रूपीआ आराधननउं[4] जे छइ महाबल तीणइं करी रहित गुरुआइ **हल्लंति** डोलइं। घणा लोक कांई मिथ्यात्त्व बोलता[5] करता[6] देषी मोटाइनां मन लहबहइं ॥ ६८ ॥

[जि.] दृढ सम्यक्त्वरूप महाबल तिणि करी रहित पुरुष गुरुया वडाइ हूता **हल्लंति** डोलइं। किसइ करी? लोकप्रवाहरूपिउ

---

१ प्रवाहइं २ जाण. ३ वायुनी. ४ आधारनउं. ५ बोलइ. ६ कहता.

समीरण वायु तेहनी **उद्दंड** प्रचंड रौद्र **लहरी** कल्लोल तिणि करी। जिम वाउनी रौद्र लहरि करी मूल विणु नीबल वृक्ष डोलइ। तिणि कारणि नश्चल सम्यक्त्व धरिवउं ॥ ६८ ॥

[मे.] लोकप्रवाहरूपीउ **समीरण** वाय तेहनी **उद्दंड** प्रचंड गाढीं लहरिं करी दृढ सम्यक्त्वना रूप महाबल तिणि करी रहित गरुयाइंना मन हालइं डोलइं। मोटांइनां मन लहबहइं ॥ ६८ ॥

[सो.] धर्मनी अवज्ञाना करणहार रहइं जे दुःख हुइं ते स्मरतां हिउं धूजइ। ए वात कहइ छइ।

[जि.] जिनमतनी थोडीइ अवहेलना न करिवी। इसुं कहइ छइ।

जिणमयअवहीलाए जं दुक्खं पाउणंति अन्नाणी।
नाणीण तं[1] सरित्ता भएण हिअअं थरत्थरइ ॥ ६९ ॥

[सो.] जिण० जिनधर्मनी हीलाइं[2] निंदाइं[3] करी अज्ञानी अजाण जीव नरक तिर्यंच गतिमाहि ग्यां हुंता जे दुःख प्रामइ ते दुःख ज्ञानी जाणहूंइं सिद्धांतनइं बलिइं जाणी संभारतां भइं करी हीअउं थरथर कांपइ ॥ ६९ ॥

[जि.] श्रीजिनमतनी लगारएक अवहेलाइं करी अज्ञानी मूर्ष जे दुःख **पाउणंति** पामइं ते अज्ञानीनउं दुःख **संभरित्ता** संभारीनइं **भएण** भय करी **नाणीण** ज्ञानवंतनउं हृदय **थरत्थरइ** कांपइ ॥ ६९ ॥

[मे.] जिनमतनी अवहीलना निंदा लगी अज्ञानी जीव अजाण जीव जे दुःख पामइं ते ज्ञानी जाण सिद्धांतनइ बलि निंदा सांभरतां थकां भइ करी हीयउं थरहरइ कांपइ ॥ ६९ ॥

---

१ संभरित्ता, जि. संभरित्ता. २ हीला. ३ निंदा.

[सो.] वली श्रीसम्यक्त्व लहतां[1] गाढउं दुर्लभ हुइ । ए वात कहइ छइ ।

[जि.] अथ आपणा जीव देसहूइं उपदेस दिइ छइ ।

रे जीव अनाणीणं[2] मिच्छदिट्ठीण नियसि किं दोसा[3] ।
अप्पा वि किं न याणसि नज्जइ[4] कट्ठेण सम्मत्तं ॥ ७० ॥

[सो.] रे जीव ! अज्ञानी मूर्ख मिथ्यात्त्वी तेहना दोष स्या भणी देखइं ? आपणपूं जि किसिउं न जाणइं ? **नज्जइ०** सम्यक्त्व गाढइं कष्टिइं जाणइं लहइं । **नेमिचंद्र भंडारी** कहइ छइ । रे जीव! तइं एवडइं कष्टिइं सम्यक्त्व लाधउं । मिथ्यात्त्वी बापुडा किम लहइं ? सम्यक्त्व लहतां गाढउं दोहिलउं छइ । इस्यउ भाव ।

[जि.] रे जीव ! हे आत्मन् ! **अनाणीणं** मूर्ष मिथ्यादृष्टिना **दोसा** दोष **किं नियसि** किसुं जोयइ ? **अप्पा वि** आपहणी किं **न याणसि** न जाणइं ? जउ कष्टिइं सम्यक्त्व **नज्जइ** जाणीइ । एतावता रे जीव ! मिथ्यात्त्वीना किसुं दूषण जोइ ? आपहणी तूं जाणइ छि ? जउ सम्यक्त्व जाणता गाढउं दुहेलउं ॥ ७० ॥

[मे.] नेमिचंद्र भंडारी कहइ । रे आत्मन् ! अज्ञानी मिथ्यादृष्टि तेहना दूषण सिइ काजि जोइ छइ ? **अप्पा०** आपणपइं तू किसुं न जाणइं ? जे तइं महाकष्टि करी समिक्त्व जाणिउं छइं । तउ मिथ्यात्त्वी बापुडा किम लहिस्यइं ? ॥ ७० ॥

[सो.] केतलाइ[5] मिथ्यात्त्व करताइ जिनधर्म वांछइ । तेह आश्चर्य[6] कहि छइ ।

---

१ लहातां. २ अन्नाणीणं. ३ मे. दोसे. ४ निज्जइ. ५ केतला. ६ आश्री.

[जि.] जे मिथ्यात्त्वइं करइं सम्यक्त्व वांछइ । तेह उद्दिसी कहइ ।

मिच्छत्तमायरंत वि जे[1] इह वंछंति सुद्धजिणधम्मं ।
ते घत्था वि जरेणं भुत्तुं[2] इच्छंति खीराई[3] ॥ ७१ ॥

[सो.] मिच्छत्त० मिथ्यात्त्व कर्त्तव्य करताइ हुंता जे जीव सुद्ध[4] धर्म वांछइं । जाणइं ‘ अम्हे सूधउ धर्म करूं । ’ **ते घत्था वि०** ते जाणे ज्वरि ग्रस्याइ हुंता खीर खांड खावा वांछइ । ज्वर सरिषूं मिथ्यात्त्व खीर खंडे सरिखउ जिनधर्म । जिम ज्वरि छतइ खीर खंडादिक खाधां हुंतां गुण न करइ, साम्हु अवगुण करइ तिम मिथ्यात्त्विइ छतइ जिनधर्म गुणकारिउ न हुइं । सामहा विराधक थाइं ॥ ७१ ॥

[जि.] ये श्रावक मिथ्यात्त्व आचरतई हूंतउ शुद्ध जिनधर्म **इह** संसारमाहे वांछइ ते **घत्था वि जरेणं** ते श्रावक ज्वरिइं ग्रस्या हुंता **खीराई** क्षीर खांड घृत **भुत्तुं** जीमिवा भणी वांछइ । जिम ज्वरिया पुरुषहूइं घृतादिकनउं जीमवउं विषप्राय हुइ तिम मिथ्यात्त्व ग्रस्या हूंता सम्यक्त्व धरइं तउ सामुहउ अतिचार दोष पामइं । तिणि कारणि सर्वथा मिथ्यात्त्व मेल्ही सम्यक्त्व पालिवउं ॥ ७१ ॥

[मे.] मिथ्यात्त्व आचरतां हूंतां केईएक जीव सूधउ जिनधर्म वांछइ । ते जाणे ज्वरि ग्रस्या हूंता खीर खांड घी प्रमुख भोजन जिमिवउं वांछइं ॥ ७१ ॥

[सो.] केतलाइ मिथ्यात्त्व करतांइं कहइं ‘ अम्हे अमुका गुरुना श्रावक । ’ तेह आश्री कहइ छइ ।

[जि.] अथ कुगुरु आश्री कहइ ।

---

१ मे. के, २ जि. मे. भुत्तं. ३ मे. खीराइं. ४ सुद्धउ.

जह[1] केइ[2] सुकुलवहुणो सीलं मयलिंति[3] लिंति[4] कुलनामं।
मिच्छत्तमायरंत[5] वि वहंति तह सुगुरुकेरत्तं ॥ ७२ ॥

[सो.] जिम कोएक उत्तम कुलवधू हुइ। सील[6] आपणउं मइलुं[7] करइ विराधइ अनइ नाम कुलनउं लिइं। आपणइ कलंकिइं करी कुलहूइं कलंक आपइं,[8] 'अम्हे अमुका कुलनी।' **मिच्छत्त०** तिम केतलाइ मिथ्यात्व करता[9] हुंता कहइ, 'अम्हे अमुका सद्गुरुना श्रावक शिष्य।' ते आपणइं दोषिइं गुरु रहइं दोष आणइं। इसिउ भाव ॥ ७२ ॥

[जि.] जह केवि जिम केई **सुकुलवहुणो** सुकुलि ऊपनी वधू स्त्री आपणउं सील मइलउं करइ सील भांजइं अनइ अनेरइ माणसि पूछीतां हूंती आपणा कुलनउं नाम लिइं। 'अम्हे मोटा कुलनी' इसुं कहइ। **तह** तिणि दृष्टांति करी केईएक मिथ्यात्व समाचारताई हूंता **सुगुरुकेरत्तं** सुगुरुना केडाइतपणउं वहइं। 'अम्हे अमुका सुगुरु अनई केडई' इसुं कहता आपणा सुगुरु पूर्वज लावइं ॥ ७२ ॥

[मे.] जिम केईएक भला कुलनी वधू सील आपणउं मइलउं करइं अनइ नाम कुलनउं लिइं, 'अम्हे अमुकानी कुलवधू' तिम जीव मिथ्यात्व आचरतउ हूंतउ कहइ, 'अम्हे अमुका सुगुरुना श्रावक।' आपणइ दोषिं गुरुनइं दोष आणइं ॥ ७२ ॥

[सो.] वली एह जि वात कहइ छइ।

[जि.] अथ कुत्सित श्रावक उद्दिसी बोलइ।

१ मे. जइ. २ जि. मे. केवि. ३ जि. मे. मइलंति. ४ जि. लंति. ५ मे. मिच्छित्त°. ६ सीली. ७ मइलउं. ८ आणइ. ९ करताइ.

उस्सुत्तमायरंत वि ठवंति अप्पं सुसावगत्तम्मि ।
ते रुद्दरोरघत्थ वि तुलंति सरिसं धणड्ढेहिं[1] ॥ ७३ ॥

[**सो.**] **उस्सुत्त०** उत्सूत्र श्रीसर्वज्ञवचन विरुद्ध कर्त्तव्य आचरताइं हुंता आपणपउ सुश्रावकमाहि थापइं । 'अम्हेऊ श्रावक' इम कहइं । ते किसिउं करइं ? **ते रुद्द०** तें रौद्र रौर[2] दालिद्रि ग्रस्याइ हुंता गाढा दालिद्रीइ हुंता आपणपउ धनाढ्य महालक्ष्मीवंत[3] सरीषउ मानइं ॥ ७३ ॥

[**जि.**] केईएक उत्सूत्र सिद्धांत विरुद्ध वचन आचरता करताई हूंता धनाढ्य **अप्पं** आपणपउं **सुसावगत्तम्मि** सुश्रावकआपणामाहे **ठवंति** स्थापइं । ते लोक **रुद्दरोरघत्थ वि** रौद्र दारिद्र्यइं ग्रस्याई हूंता धनाढ्य लक्ष्मीवंत तेह सरीषउं आपणपउं गणइं ॥ ७३ ॥

[**मे.**] उत्सूत्र आचरताइ हूंता जीव आपणपउं श्रावकमाहि थापइं । कहइं 'अम्हे पणि श्रावक ।' ते राद्र **रोर** दालिद्रिइं ग्रस्या हूंता आपणपउं धनाढ्य श्रीवंत साथिं तोलइं ॥ ७३ ॥

[**सो.**] लोकमार्ग अनइ धर्ममार्ग रहइं एवडउ विहरउ छइ । तेउ ते मूर्ख न जाणइं । ए वात कहइ छइ ।

[**जि.**] अथ जाण अनइ अजाणनउं आंतरउं प्रकटइ ।

किवि कुलक्कमम्मि रत्ता किवि रत्ता सुद्धजिणवरमयम्मि ।
इअ अंतरम्मि पिच्छह मूढा नायं न जाणंति[4] ॥ ७४ ॥

[**सो.**] **किवि०** केतलाइ आपणइ कुलक्रमि जि राता कुलाचारनइ प्रवाहि पड्या छइं । केतलाइं सूधउ खरउ जिनधर्म तिहां राता

---

१ मे. धणिड्ढेहिं. २ रोर. ३ लक्ष्मीवंत. ४ याणंति. जि. मे. याणंति.

छइ। कुलक्रम[1] कांई नथी करता। **इअ०** ए बिहुंनइं आंतरुं ए एवडउं छइ। एकि कुलक्रम करताइ नरक तिर्यंचमाहि जाइं छइं। बीजा जिनधर्म आराधतां देवलोकि अथवा मोक्ष[2] जि जाइं। एवडइ आंतरइ छतइ ते **मूढा** मूर्ख युक्ति न्याय न जाणइं। कुलक्रमजिनु कदाग्रह लेई रहइं। सूधउ धर्म न करइं ॥ ७४ ॥

[जि.] किवि केईएक अजाण कुलक्रमि राता छइं। केईएक जाण जिणवरनइ मति राता। **इअ** ए आंतरउं **पिच्छह** जोयउ। जाण-अजाणनउ ए विहरउ देषउ। मूर्ष **नायं न याणंति** न्याय न जाणइं। जे जिनमति राचइं ते युक्तायुक्तविचार जाणी जाण कहावइ अनइ मूढ न्यायरीति न जाणइ। कुलक्रमि रंजीइं। साचउं-कूडउं न जाणइं ॥ ७४ ॥

[मे.] केतलाइ जीव कुलक्रमि कुलाचारि राता छइं। केतलाइ जीव सूधा जिनवरना मतनइ विषइ राता छइं। जाणइं छइं 'सूधा धर्म लगइ मुक्ति पामीस्यइ। पाछइ कुलक्रमि संसारमाहि भमीसिइ।' एवडइ अंतरि छतइ, जोउ, मूर्ख नाणिउं जे न जाणइं। कुलक्रमनउ कदाग्रहु न मूंकइं ॥ ७४ ॥

[जि.] अथ अजाणनी वात बिहुं गाथाइं करी कहइ।

संगो वि जाण अहिओ तेसिं धम्माइं जे पकुव्वंति।
मुत्तूण[3] चोरसंगं करंति[4] ते चोरिअं पावा ॥ ७५ ॥

[सो.] जीहं मिथ्यात्त्वी दर्शनीनी संगतिइ अहितकारिणी करिवा[5] नावइं। पुण तेहनउ[6] उपदेसिउ जे धर्म ते करइं। **मुत्तूण०**

---

१ 'कुलक्रम...जाइं छइं' एटलो पाठ सो.नी बीजी प्रतमांथी पडी गयेलो छे.
२ मोक्षि. ३ जि. मोत्तूण. ४ जि. करेंति, मे. करिंति. ५ कारिवा. ६ तेहनु.

ते चोर अन्यायी पापीनउ संसर्ग मेल्हीनइ आपणपइं जि चोरी करइ। पापीया जे मिथ्यात्त्वीनू संसर्ग न करइ, पुण[1] मिथ्यात्त्व करइ ते जाणे चोरनी संगति न करइं, पुण आपणपइं जि चोरी करइं छइं ॥ ७५ ॥

[जि.] अजाण जेहांनउ संगई अहित विरूयाकारण हुइ **तेसिं** तेहनां अहितकारकनां उपदिस्यां जे पुरुष धर्म करइं ते पुरुष **पावा** पापिष्ट हूंता चोरनउ संसर्ग मेल्ही आपहणी चोरी करइ ॥ ७५ ॥

[मे.] जेहनउ संसर्गइ अहितकारीउ हुइ अनइ तेहना भाष्या धर्म जे करइं ते केवहा जाणिवा ? चोरनउ संसर्ग मूंकीनइ आपणइ डीलि पापि चोरी करइं। ते एवहा जाणिवा ॥ ७५ ॥

जत्थ पसुमहिसलक्खा पव्वे होमंति[2] पावनवमीए।
पूअंति तंपि सड्ढा हा हीला वीयरायस्स ॥ ७६ ॥

[सो.] जीणइं पर्वि आसो चैत्रनी पापमय महानउमिइं पशु बोकडा भइंसाना लक्ष होमइं मिथ्यात्त्वी राजादिक। **पूअंति०** केतलाइ श्रावकइ हुई ते पर्व पूजइं मानइं। गोत्रजपूजनादिक करइं। ते पर्वना करावणहार ब्राह्मणादिक रहइं पुण पूजइं। दानादिक दिइं। **हा हीला०** अहो ! केवडी ए हीला अवज्ञा आशातना वीतरागहूइं। एक जीवदयामूल वीतरागनू[3] धर्म आराधीइ अनइ परइं महाहिंसामय पर्व मानीइं। ए[4] आज्ञालोप भणी अवज्ञाइ[5] कही ॥ ७६ ॥

[जि.] जत्थ जिणि पर्वि पापनवमीनइ दिवसि सामान्य देहाडीनइ दिनि पशु छाला महिसु भइंसा तेहना लक्ष **हम्मंति** होमीइं विणासीइं। तिणि दिहाडइ श्रावक जइ पूजइ तउ श्रीवीतरागनी **ही**

---

१ 'पुण मिथ्यात्त्व...न करइं' एटलो पाठ **सो.नी** बीजी प्रतमांथी पडी गयेलो छे. २ जि. मे. हम्मंति. ३ वीतरागनउ. ४ 'ए' नथी. ५ अवज्ञा.

खेदे **हीला**। जे श्रावक श्रीवीतरागदेवनइं मानइं अनइं मिथ्यात्त्व पुण साचवइं ते श्रावक श्रीवीतरागनी अवहेला करइं। तिणि कारणि ते श्रावक केई अजाण जाणिवा ॥ ७६ ॥

[मे.] जिहां आसोजी चैत्री पापनवमीइं पशु छाला महिस भइंसा तेहना लक्ष लाष हणीइं अनइं तीणइं दिहाडइ श्रावक हुइनइ गोत्रजनी पूजा करइ तउ **हा** इसइ खेदि तीए वीतरागनी हीला कीधी। परमेश्वर अवहेल्या ॥ ७६ ॥

जो गिहकुडुंबसामी[1] संतो मिच्छत्तरोवणं[2] कुणइ।
तेण सयलो वि वंसो पक्खित्तो भवसमुद्दम्मि ॥ ७७ ॥

[सो.] जे कुटुंबनायक[3] मूलगउ हुई कांई मिथ्यात्त्वनउ बोल घरि रोपइं थापइ। पाछिलाइ संतानीआ सघला तेहना थाप्या भणी मूकी न सकइं। **तेण** तीणइं आपणउ सघलुइ केडिलु वंस संसार-समुद्रमाहि घातिउ पाड्या[4] भणी ॥ ७७ ॥

[जि.] जे गृहकुटुंबनउ स्वामी धणी **संतो** हूंतउ मिथ्यात्त्व-रोपण करइ। **तेण** तिणि गृहकुटुंबस्वामीइं **सयलो वि** सघलउइ वंस भव संसार तेहरूपिउ समुद्र तेहमाहे **पक्खित्तो** प्रक्षिपउ घालिउ ॥७७॥

[मे.] जे पुरुष गृहस्थ कुटुंबनउ स्वामी होईनइ आपणा संतानीयानइं मिथ्यात्त्वनउं आरोपण करइं तीणइं सघलुइ वंसु संसार-समुद्रमाहि प्रक्षेपिउ घातिउ ॥ ७७ ॥

कुंडचउत्थी नवमी बारसी पिंडदाणपमुहाइं।
मिच्छत्तभावगाइं[5] कुणंति तेसिं न सम्मत्तं ॥ ७८ ॥

---

१ जि. °कुटुंब°. २ मे. मिच्छित्त°. ३ कुडंब°. ४ पड्या. ५ मिच्छित्त°.

[सो.] कुंडचउत्थी॰ विणायगचउत्थि महानउमि वत्सबारसि बीजाइं पर्व सीअलसत्तमि द्रोअट्ठमि शिवरत्ति नागपंचमि काजलीत्रीज आमलीइग्यारसि अविलोअपांचमि[1] अमांस षष्टीजागरण नवसती पितर-पिंडदान नवोदकि पींपल-जलदांन अमावस जमाई-भोजनप्रमुख **मिच्छत्त॰** अनेक एहवा[2] मिथ्यात्त्वपोषक पर्व करइ करावइ। **तेसिं** तेहहूइं इसिउं जाणिवउं। सम्यक्त्व नथी ॥ ७८ ॥

[जि.] जे श्रावक कुंडचतुर्थी महानवमी अनइ बारसि तेहना पिंडदानप्रमुख मिथ्यात्त्वधर्मना भावक पोषक मिथ्यात्त्व करइं **तेसिं** तेहां श्रावकहूइं सम्यक्त्व नहीं। लगारइ मिथ्यात्त्वनउ लवलेश करइ सु अजाण इति भाव ॥ ७८ ॥

[मे.] कुंडचउथि कहतां विणाइगचतुर्थी महणिमनीं नवमी वत्सबारसि सीयलसप्तमी द्रोअष्टमी शिवरात्रि नागपंचमी काजलीत्रीज आमलीइग्यारसि अविलोआपंचमी अमास षष्टीजागरण प्रमुखे पिंडदान-प्रमुख जे मिथ्यात्त्वनइ भावक उपजावणहार जे करइ तेहनइ सम्यक्त्व नही ॥ ७८ ॥

[सो.] केतलाइ उत्तम आपणउं कुटुंब मिथ्यात्त्वतउ काढइ। ए वात कहइ छइ।

[मे.] अथ गाथानी वात कहइ।

जह अइकुलम्मि[3] खुत्तं सगडं कड्ढंति केवि धुरधवला[4]।
तह मिच्छाओ कुडंबं अह विरला केवि कड्ढंति ॥ ७९ ॥

[सो.] जिम कादमना गाढा कलमाहि गाडउं खूतउं हुइ ते

---

१ अविलोवा पंचमि. २ एहा. ३ अइकालंमि, मे. अइकलंमि. ४ धुरि॰.

केतलाइ धोरी धवल मूलगा वृषभ तेह जि काढइं। बीजे वृषभे न काढइं। **तह॰** तिम मिथ्यात्त्वरूपिआ कादममाहि कलिउं आपण[1] कुटुंब **विरला॰** के एक समर्थ उत्तम उपाइं करी काढइं। मिथ्यात्त्व छंडावी साचइ धर्मि लगाडइं[2] ॥ ७९ ॥

[जि.] जिम केईएक धवला धोरी मूलगा सबलबल अतिकर्दमना कलणमाहे **खुत्तं** खूतउं हूंतउं **सगड** गाडउं काढइं **तह** तिम इह संसारमाहि विरला केईएक पुरुष **मिच्छाओ** मिथ्यात्त्व हूंतउं कुटुंब-परिवार काढइं। साचइ जिनधर्म लगाडइं ॥ ७९ ॥

[मे.] जिम अतिकलण कादममाहि खूतउं गाडउं केईएक धोरी वृषभ हुइं तेही जि काढी सकइं, सामान्य वृषभ काढी न सकइं तिम मिथ्यात्त्वरूपीया कलणमाहे कुटुंब षूतउं थकउं इहां विरला कोईएक काढइ ॥ ७९ ॥

[सो.] केतलाएक वीतराग सर्वज्ञ सर्वज्ञदेवने लक्षणे[3] सहितइ न ओलखइ[4]। ए वात कहइ छइ।

[जि.] अथ श्रीसर्वज्ञदेवनी अप्राप्तिकारण कहइ।

जह वद्दलेण सूरं महियलपयडं पि नेव पिच्छंति।
मिच्छत्तस्स[5] य उदए तहेव न निअंति जिणदेवं ॥ ८० ॥

[सो.] जिम वादलि आडइ छतइ पृथ्वीमंडलमाहि प्रकट[6] सूर्य न देखीइ तिम मिथ्यात्त्वरूपिइ[7] वादलि आडइ छतइ जिनदेव श्रीसर्वज्ञदेव विश्वमाहि प्रकट प्रमाणइ छतु **न निअंति** न देषइं ॥ ८० ॥

[जि.] **जह** जिम वादलिइ करी **महियलपयडं पि** जगत्रयहूइं प्रत्यक्षइं हूंतउ **सूर** सूर्य **नेय पिच्छंति** न देषइं **तहेव**

---

१ आपणुं. २ लागइं. ३ लक्षण ए. ४ उलषइं. ५ मिच्छित्तस्स. ६ प्रकटइ. ७ मिथ्यात्त्वनइ उदया मिथ्यात्त्वरूपिइ.

तिम जि मिथ्यात्त्वनइ उदइ जिनदेव श्रीसर्वज्ञदेव **न नियंति** न पश्यन्ति न देखइं। सकललोकप्रत्यक्ष सूर्य सरीषउ सर्वज्ञदेव। अनइ वादलसरीषउं मिथ्यात्त्व छइ। तिणि कारणि मिथ्यात्त्वव्यापिउ जीव श्रीसर्वज्ञदेव सकल आराध्यपणइं न देखइं ॥ ८० ॥

[**मे.**] जिम वादलइ करी सूर्य पृथ्वीमंडलमाहि प्रगट जाणीतउ हूंतउ पणि दीसइ नहीं तिम मिथ्यात्त्वरूपीइ वादलि आडइ हूंतइ जिन वीतरागदेव न देषइं ॥ ८० ॥

[**सो.**] मिथ्यात्त्वीनउ जन्म वृथा। ए वात कहइ छइ।

[**जि**] अथ मिथ्यात्त्वीना जन्मनी निरर्थकता कहइ।

किं सो वि जणणिजाओ जाओ जणणीइ[1] किं गओ वुड्ढिं[2]।
जइ मिच्छरओ जाओ गुणेसु तह मच्छरं वहइ ॥ ८१ ॥

[**सो.**] **किं सो०** ते पुरुष माइ कां जाइउ? अथवा जु जाइउ तउ वृद्धिइं कां गिउ? **जइ०** जउ मिथ्यात्त्वरत कूडा देवगुरु धर्मनइ विषइ आस्थावंत हुउ। अनइ गुणवंत साचा धर्मना आराधक तेह ऊपरि वली मच्छर वहइ। एतलइं तेहनउ[3] जन्म निरर्थक। मुहिआं[4] पृथ्वी रहइं भारइ जि करण्हार। तेहनी वृद्धिविस्तार सहूइ अकज इसिउ भाव ॥ ८१ ॥

[**जि.**] ते पुरुष कांइं **जणणिजाओ** माताइं जणिउ? जउ माताइं जन्मिउ **किं गओ विड्ढिं** तउ वृद्धिइं कां गउ? मोटउ कां हूउ? पहिलउं जन्मीतउई नही। जइ किवारइं जणिउ तउ वधारिउ कांई? इति भाव। कांइ? जइ मिथ्यात्त्वरत **जाओ** हूउ

---

१ जि. जणणीय. २ जि. मे. विड्ढिं. ३ तेहजिनउ. ४ मंहिआ.

तह तिम जि गुणवंत ऊपरि मात्सर्य सद्वेषभाव वहइ। जइ जन्मिउ न हुत, जइ मोटउ न थाउ तउ आगलि जातउ मिथ्यात्त्वी न हुत। अनइं वली गुणवंत ऊपरि मात्सर्य न वहत। तिणि कारणि विद्वेषी भणीं मिथ्यात्त्वीना जन्मनउं काई नही ॥ ८१ ॥

[**मे.**] ति पुरुष जननी माताइं कांइं जायउ? अनइ जउ जायउ तउ वृद्धिइं कांइ गयउ? जइ मिथ्यात्त्वनइ विषइ रत आस्थावंत हूउ तिम गुणवंत धर्मवंत ऊपरि मत्सरु वहइ। एतलइ तेहनउ जन्म फोक ॥ ८१ ॥

[**सो.**] जिम जिम मिथ्यात्त्वि वाहिउ जाषल सेषलनी पूजा करइ तिम तिम ते घणउ[१] घणेरडउ व्यापीइं। अनइ दृढ धर्म जे हुइ तेह रहइं कांई करी न सकइं। ए वात कहइ छइ।

[**जि.**] अथ नीचानउं स्वरूप कहइ छइ।

वेसाण बंदियाण य माहणडुंबाण जक्खसिक्खाणं।
भत्ता भक्खट्ठाणं विरयाणं जंति दूरेणं ॥ ८२ ॥

[**सो.**] **वेसा०** वेश्या नगरनायिका[२] बंदी भट्ट ब्राह्मण कुलगुरुप्रमुख डुंब गायन जाषलसेषल गोत्रज पितरप्रमुख देहरडा एतलां ऊपरि जे भक्ता हुइं तेहहूइं द्रव्य पूरइ। पूजा जिमण लापसी[३] बली-बाकुलादिक करइ। ते लोक वेश्या[४] भट्टादिक रहइ भक्ष्यस्थानक सदैव थाइ। वलि वलि वरसि वरसि पर्वि[५] पर्वि सदैव वांछइं। बलात्कारिइं लिइं, दापउं थापइ, लक्ष्मी नीगमइ। **विरयाणं०** अनइ जे विरत हुइं,

---

१ 'घणउ' नथी. २ °नाइका. ३ पालसी. ४ तीह वेश्या. ५ 'पर्वि पर्वि' नथी.

जे ब्रह्मचारी विषयनिवृत्त[1] हुइ, जे[2] आपणी कीर्त्ति न वांछइ, जे दृढ सम्यक्त्वना धणी हुइं, जे दुःखिइ आवइ[3] कातर न हुइं, एह्वा दृढ धर्मना धणीहूइं ए वेश्यादिक सघलाइ दूरि जाइं । आपणु लाग कांई देखइं नहीं । एह भणी तेहहूइं उचाटइं पुण काई न करइं । साम्हा प्रसन्न थाइं ॥ ८२ ॥

[जि.] वेश्या तणा, बंदी भाट तणा, माहण ब्राह्मण तणा, डुंब तणा, यक्षभूतादिक तणा, **भत्ता** भक्तिकरणहारइ जि पुरुष **भक्खट्ठाणं** भक्ष्यस्थानक । एतलइ जे वेश्यादिकहूइं भक्ति करइं तेह जि भक्तिकरणहारहूइं देणहारहूइं वेश्यादिक षाइं । **विरयाणं** विरत हूंता अणमानता पुरुष हूंता दूर वेगला जाइं नासइं । **विरयाण**मित्यत्र पंचम्यर्थे षष्टी प्राकृतत्वात् ॥ ८२ ॥

[मे.] वेश्या बंदी भाट ब्राह्मण डूंब यक्ष सेष थाकता गोत्रज पितर प्रमुख ऊपरि जे भक्ता हुइं, बलि बाकुलि लापसीइं करी भक्ति करइं एतला भक्तिना करणहारजिनइ खाइं । वरसि वरसि ते वांछा करइ । अनइ ईया हूतां जे विरता छइ ते हूंता वेश्यादिक दूरि जाइं । तेहनइ कांई पाडूउं करी न सकइं ॥ ८२ ॥

[सो.] अकुलीन धर्म करइं ते आश्चर्य । ए वात कहइ छइ ।

[जि.] अथ केई एकलधर्मी जीवनउं स्वरूप प्ररूपइ ।

सुद्धे मग्गे जाया सुहेण गच्छंति सुद्धमग्गम्मि ।
जे पुण अमग्गजाया मग्गे गच्छंति तं चुज्जं ॥ ८३ ॥

[सो.] **सुद्धे०** जे शुद्धि मार्गि उत्तम सुश्रावकनइ कुलि जाया

---

१ °निवृति. २ 'जे आपणी.....धणी हुइं' एटलो पाठ **सो.** नी बीजी प्रतमांथी पडी गयो छे. ३ आविइ.

ते सूधा मार्ग खरा धर्मनइ विषइ सुखिइं चालइं। तेहनइं धर्मनु मार्ग कुलक्रमिइ जि आगइ चालिउ आवइ छइ। एह भणी तेहहूइं धर्म करतां कांई दोहिलुं नही। **जे पुण०** पणि जे अमार्गि जाया विरूइ[1] अधर्म[2] कुलि ऊपना तेहइ केतला जे मार्गि चालइ धर्म करइं तेहनइ कुलक्रमागत धर्म न हुइं। ते जं धर्म्म करइं **तं चुज्जं** ते आश्चर्य ॥ ८३ ॥

[जि.] सुद्धइ निर्मलइ मार्गि जात ऊपना द्विजात जे हुइं ते सुखिइं समाधिइ भली परिइं शुद्धइ निःपाप मार्गि **गच्छंति** चालइ ते आश्चर्य नही। भला अनइ भलइ मार्गि हींडइ। जिम रोहणाचलि रत्ननउं आश्चर्य नही। जिम लंकाइं सोना होवानउं आश्चर्य नही। पुण जे अमार्गजात त्रिजातइं हुइं ते मार्गि मार्गि जइ चालइं तउ ते आश्चर्य। जिम उकरडी माहे रत्न ऊपनउं हूंतउं आश्चर्य भणी हुइ ॥ ८३ ॥

[मे.] जे सूधइ मार्गि श्रावकनइ कुलि ऊपना सुखिइं समाधिं सूधा मार्ग खरा धर्मनइ विषइ चालइं। पणि जे अमार्गि अधम-कुलि जाया अनइ जे धर्ममार्गि चालइ ते आश्चर्य कउतिग ॥ ८३ ॥

[सो.] धर्म करतां कांई लगारइ विघ्न ऊपजइ। अजाण लोक ते लेई धर्म रहइं लगाडइं। ए वात कहइ छइ।

[जि.] अथ पापिष्ट मिथ्यात्त्वीनउं स्वरूप कहइ छइ।

मिच्छत्तसेवगाणं विग्घसयाइं पि[3] बिंति नो पावा।
विग्घलवम्मि वि पडिए दढधम्माणं पणचंति ॥ ८४ ॥

[सो.] मिथ्यात्त्वना करन्हारनइं[4] अनेराइं संसारनां काज-व्यवसाय विवाहादिक करतां विघ्न अंतराय दुःख उपसर्गनां सइं पडइं।

१ विरुअइ. २ अधर्मि. ३ पिवंति, मे. पि बंति. ४ करण्हारनइं.

तेउ पापी लोक ते बोलइं नही। **विग्घलवम्मि॰** अनइ जे दृढ धर्म खरा धर्मनां कर्त्तव्य करइ छइं तेहहूइं केती वारइं विघ्नलवलेश मात्र थोडूंअइ अंतराय दुःख पडइ तउ मूर्ख लोक नाचइं, 'एहहूइं धर्म करतां आम हूउं।' इसिउं न जाणइं, 'निश्चिइ धर्म करतां रूडूं जि हुइ।' धर्मइं[1] विघ्न विलइ जाइं जिम आगि पाणी करी[2] उल्हाइ जि। पुण मापु जाणिवउं। जु थोडउ अंगारमात्र आगि हुइ तु चलूइ मात्रि पाणीइं ओल्हाइं[3]। पणि दवानल ज्वलतउ हुइ तउ थोडइं पाणी कांई नही। जु मेघ वरिसइ घणउं पाणी पडइ तउ[4] ओल्हाइ[5]। तिम थोडउं पाछिला भवनुं पापकर्म थोडिइ धर्मिइ विलइ जाइ। पुण कर्म घणउ हुइ अनइ धर्म थोडउ हुइ तु किम तीणइं धर्मिइं घणउं कर्म विलइ जाइ? पुण एक निश्चय जि जाणिवुं। जं धर्मि करी पाप विलइ जाइ जि। जिम सूर्य थिकउ[6] अंधारां नासइ जि। जं धर्म करतांइं विघ्न नथी टलतां ते थोडा धर्मनुं कारण। एक मूर्ख अजाणपणइं 'धर्मनइं दोषिइं' इसिउं कहइं, 'अम्हारइ कुलि ए धर्म सहइ नही।' अनइ पापीहूइं घणाइं दुःख पडइं पणि बोलइं नहीं॥ ८४॥

[**जि.**] **पावा** पापिष्ट पुरुष मिथ्यात्त्वसेवकहांहूइं विघ्न उपद्रव तेहनां शतई पड्यां **नो बिंति** न बोलइं। पुण दृढ धर्म निश्चल धर्मवंतहूइं विघ्नइ लवलेशिइ पडिइ हूंतइ **पणच्चंति** प्रनृत्यंति॥ ८४॥

[**मे.**] मिथ्यात्त्वना सेवणहारनइ विघ्ननां सइं ऊपजइं पणि ते पापीइ मन नाणइ जि 'अम्हनइ मिथ्यात्त्व सेवतां विघ्न ऊपनां।' अनइ जे दृढधर्म खरउ धर्म करइ तेहनइ विघ्ननउ लवु मात्र ऊपनइं पापी लोक पचारइं॥ ८४॥

---

१ धर्म्मिइं. २ कर. ३ उल्हाइ. ४ तउ जि. ५ उल्हाइ. ६ थकउ.

[सो.] धर्म सहित दुःखऊ रूडउं। मिथ्यात्त्वसहित सुखइ विरूउं। ए वात कहइ छइ।

[जि.] अथ सम्यक्त्वधारकनी दृष्टाई त्रिहुं गाथा करी बोलइ।

सम्मत्तसंजुआणं विग्घं पि हु होइ उच्छवसरिच्छं[1]।
परमुच्छवं[2] पि मिच्छत्तसंजुअं अइमहाविग्घं ॥ ८५ ॥

[सो.] **सम्मत्त०** जे सम्यक्तिवइं[3] करी सहित छइं, खरउ धर्म आराधइं छइं तेहहूइं केती वारइं विघ्न दुःख पडइं ते दुःख उत्सव सरीषुं हुइ। तें तीणइं दुःखिइं करी पाछिला भवनां पापकर्म क्षपीनइ खरा धर्मनइ प्रसादिइं आगलि मनुष्यनां देवलोकनां सुख प्रामइं। तेह भणी उत्सव समान। **परमुच्छवं पि०** मिथ्यात्त्वि करी जे सहित छइं तेहरइं[4] केतीवारइं परम उत्सव हुइ। राज्य ऋद्धि लक्ष्मी भोगसुख प्रामइं। तेहइ अतिमहाविघ्न जाणिवुं[5]। तेह[6] ऋद्धिनइं प्रमाणि ते मिथ्यात्त्व आरंभ पाप करी आगलि नरकतिर्यंचादिक दुर्गतिइं जाइं। संसारमाहि रुलइं। तेह भणी तेहनु उत्सव महाविघ्न समान कहीइ ॥ ८५ ॥

[जि.] सम्यक्त्वसंयुक्त पुरुषहूइं विघ्नई **हु** निश्चइ उत्सव-सदृश महोत्सव सरीषउं हुइ। **परमुच्छवम्मि** प्रकृष्ट महोत्सवमाहे मिथ्यात्त्वसंयुक्त हूंतउ **अइमहाविग्घं** अतिमहाविघ्न हुइ। एतलइ सम्यक्त्वधारकहूइं सम्यक्त्वइ जु तत्त्व। माया काई नही ॥ ८५ ॥

[मे.] सम्यक्तिवइं करी जे सहित तेहनइ किवारइं विघ्न ऊपजइ तउ उत्सव करी मानइं। कांइं कहइ ? 'भवांतरि कर्म क्षय गयां वली नही आवइ।' तेह भणी उत्सव समान मानइं। वली जे

---

१ मे. उत्सव°. २ जि. परमुच्छवम्मि, मे. परमुत्सवं. ३ सम्यक्त्वइं. ४ तेहरहइं. ५ जाणिवउं. ६ 'तेह' नथी.

मिथ्यात्त्वि करी सहित छइं तेहनइं परम उत्सवइ अतिविघ्न करी मानिवा। कांइं ? तीहा उत्सवे मिथ्यात्त्वनां कारण घणां हुइं। अनइ ते मिथ्यात्त्वनइ प्रमाणि नरगि जाइं। तेह भणी उत्सव विघ्न समान गिणीइं ॥ ८७ ॥

[सो.] जेहहूइं धर्मनी दृढाई हुइ तेहहूइं देवइ प्रणाम करइं। ए वात कहइ छइ।

इंदो वि ताण पणमइ हीलंतो निययरिद्धिवित्थारं।
मरणंते वि हु पत्ते सम्मत्तं जे न छड्डुंति ॥ ८६ ॥

[सो.] इंद्र तेहहूइं प्रणाम करइ। **हीलंतो०** आपणी देवनी राज्यऋद्धिना[1] विस्तार निंदतउ हूंतउ[2]। जाणइ ए ऋद्धि[3] कांई नहीं। ईणी[4] ऋद्धिइं मोटपण कांई नही। **मरणंते वि०** मरणांतिइ पहुतइ जे गाढइ संकटि पडिइ[5] आपणउं सम्यक्त्व न छांडइ, मिथ्यात्त्व न करइं तेहहूइं इंद्रादिक देवइ नमस्करइं ॥ ८६ ॥

[जि.] निययरिद्धिवित्थारं आपणी लक्ष्मीनउ विस्तार हीलतउ निंदतउ हूंतउ इंद्र तेहां सम्यक्त्वधारक पुरुषहूइं प्रणमइ। तेहां केहांहूइं ? मरणांतई पामिइ हूंतइ जे सम्यक्त्व **हु** निश्चइं न छांडइं। **ताणे**त्यत्र द्वितीयार्थे प्राकृतत्वात् ॥ ८६ ॥

[मे.] इंद्रइ तींहां पुरुषांनइं प्रणामु करइ, आपणी रिद्धिनउ विस्तार अवहेलतउ हूंतउ। पणि ते जीव केवहा छइं ? जे मरणांति सम्यक्त्व छांडइं नहीं ॥ ८६ ॥

[सो.] वली एह जि वात कहइ छइ।

---

१ °रिद्धिना. २ 'हूंतउ' नथी. ३ रिद्धि. ४ ईणइ. ५ पडइ.

छड्डुंति निययजीअं तणं[1] व मुक्खत्थिणो न[2] उण सम्मं।
लब्भइ पुणो वि जीअं सम्मत्तं हारिअं कुत्तो[3] ॥ ८७ ॥

[सो.] **छड्डुंति०** जे जीव मोक्षार्थी आसन्नसिद्धिक हुइं ते तृणनी परि आपणउं जीवतव्य छांडइं। दुःखि पडइ मरण आंगमइं, पुण सम्यक्त्व न छांडइं। मिथ्यात्त्व न करइं। **लब्भइ०** इसिउं जाणइं[4]। ए जीवितव्य अनंते भवे वली वली लाभइं, पुण **सम्मत्तं०** ए सम्यक्त्व जु हारिउं नीगमिउं तु वली किहां लाभइ? अनंते भवे दुर्लभ थाइ ॥ ८७ ॥

[जि.] मोक्षार्थी पुरुष **निययजीअं** निजक जीवित आपणउं जीवितव्य तृणवत् तृणनी परि छांडइं, पुण सम्यक्त्व न छांडइ। किसा भणी? पुनरपि वलीइ जीवितव्य लाभइ, पुण सम्यक्त्व हारिउं नीगमिउं हूंतउं **कत्तो** किहां हूंतउं लाभइ? अपि तु न लाभइं। सम्यक्त्व महादुःप्राप मोक्षदायक छइ। तिणि कारणि सम्यक्त्वनी दृढाई धरइ ॥ ८७ ॥

[मे.] मोक्षार्थी जीव तृणनी परिइं आपणउं जीवितव्य छांडइ। कष्टि पडिइं मरण आंगी गमइं, पणि सम्यक्त्व न छांडइं। कांइं? वली जीवितव्य लाभइ, पणि सम्यक्त्व हारिउं वली किहां पांमीइ? ॥ ८७ ॥

[सो.] ए सम्यक्त्वइ जि धन कहीइ। बीजुं बाह्य धन ते कांई धन नही। ए वात कहइ छइ।

[जि.] अथ सम्यक्त्वहूइं महाबहुमूल्यपणउं कहइ।

१ जि. मे. तिणं. २ जि. नि. ३ जि. मे. कत्तो. ४ जाणिइं.

गयविहवा[1] वि सविहवा[2] सहिआ सम्मत्तरयणराएणं।
सम्मत्तरयणरहिआ संते वि धणे दरिद्द त्ति[3] ॥ ८८ ॥

[सो.] गयविहवा० गतविभव लक्ष्मीरहित दालिद्रीइ[4] छता तेह **सविहवा** सद्रव्य सलक्ष्मीवंत[5] जाणिवा, जे श्रीसम्यक्त्वरूपिइं रत्नराजि महारत्नि अमूल्यक रत्नि करी सहित हुइं, खरउं सम्यक्त्व पालइं। **सम्मत्त०** जे सम्यक्त्वरूपिइं रत्नि करी रहित छइं, जेहनइ हीयइ सम्यक्त्व नथी, मिथ्यात्वीइ जि छइं **संते वि०** तें लक्ष्मी[6] घणीइ छती दालिद्री[7] जि[8] जाणिवा[9]। दालिद्रीइ जु सम्यक्त्व पालइ तउ आवतइ भवि इंद्रादिक[10] महर्द्धिक देवादिकपदवी प्रामइं। अनइ चक्रवर्त्यादिक महर्द्धिक जु मिथ्यात्वी हुइ तु आवतइ भवि नरकतिर्यचादिक हीनगतिइं ग्यउ हूंतउ दुःखीउ थाइ, महादालिद्री[11] थाइ। इसिउ भाव। एह ज भणी इम कहिउं श्री**हेमाचार्ये**—

जिनधर्मविनिर्मुक्तो मा भूवं चक्रवर्त्यपि।
स्याच्चेटोऽपि दरिद्रोऽपि जिनधर्माधिवासितः ॥

[जि.] गतविभवइ निर्द्रव्यई हूंता सविभव सद्रव्य हुइं, जे सम्यक्त्वरत्नराज तिणि करी सहित हुइ। एतावता जे पुरुष सम्यक्त्वरूपिउं रत्नराज चिन्तामणि धरइं ते पुरुष निर्द्रव्यई सद्रव्य हुइं अनइं जे सम्यक्त्व रत्न तिणि करी रहित हुइं ते पुरुष **संते वि धणे** छतई धनि दरिद्री कहीइं। तिणि कारणि सम्यक्त्व मोटउं रत्न ॥ ८८ ॥

[मे.] ते पुरुष निर्द्धनइ थका धनवंत जाणिवा जे सम्यक्त्वरूपीइ रत्नराजिइ सहित हुइं। अनइ जे सम्यक्त्वरत्न तिणि करी

१ गइविहवा. २ जि. सुविहवा. ३ दरिदु त्ति. ४ दारिद्रीइ. ५ समृद्ध लक्ष्मीवंत. ६ लीक्ष्मी. ७ दालिद्री. ८ 'जि' नथी. ९ जाणिवी. १० 'इन्द्रादिक महर्द्धिक...आवतइ भवि' एटलो पाठ बीजी प्रतमांथी पडी गयेलो छे. ११ महादारिद्री.

रहित धनि करी सहितइ हूंता ति दालिद्रीइं जि जाणिवा। कांइं? मिथ्यात्त्वनइ प्रमाणि संसारमाहि रुलिस्यइं ॥ ८८ ॥

[सो.] जिनधर्मना जाण लक्ष्मीइ पाहि धर्म अधिकउ देखइं। ए वात कहइ छइ।

[जि.] अथ श्रीवीतरागनी पूजा साची वर्णवइ।

जिणपूअणपत्थावे जइ को[1] सड्ढाण देइ धणकोडिं।
मुत्तूण तं असारं सारं विरयंति जिणपूअं ॥ ८९ ॥

[सो.] **जिणपूअण॰** गाढा धर्मना जाण श्रावकहूइं चउमास पजूसणादिक पर्वि आविइ जिन वीतरागनी पूजा स्नात्र पडिकमण पोसहादिकनइ प्रस्तावि अवसरि जइ को धन द्रव्यनी कोडि दिइ, इम कहइ 'ए मूकीनइ अमकइ थानकिं आवि, अमुकउं व्यवसायादिक काज करी तूहूइं लक्ष्मीनी कोडिनउ लाभ हुस्यइ।' **मुत्तूण॰** तउ ते जाण श्रावक ते द्रव्य असार जाणता मूंकीनइ सार जिनपूजाइ जि करइं। जिनधर्मइ जि आराधइं। इसिउं जाणइं 'ईणं द्रव्यइं एकइ भव सुखिया थइसिइं। अथवा नहीं थईइ[2]। पुण वीतरागनी पूजाइ जिनधर्म आराधतां निश्चइं आगलि अनंत सुख लाभिसिइं जि' ॥ ८९ ॥

[जि.] जइ कोईएक जिनपूजननइ प्रस्तावि श्रीवीतरागदेव-पूजानी वेलाइं श्रावकहूइं धननी कोटि दिइं, **तं असारं** निःसार ते धननी कोडि मेल्ही सार प्रधान अनंती धननी कोटि देणहारि जिनपूजा विरचइं करइं ॥ ८९ ॥

[मे.] जिन वीतरागनी पूजानइ अधिकारि जे कोइ श्रावकनइं धननी कोडि दिइ अनेक लाभ दिषाडइ, पणि ते श्रावक असार धन

---

१ जि. मे. कुवि. २ थईए.

मूंकीनइ सार प्रधान एकइ जि जिननी पूजा करइ। कांइं ? धन लगी एकइ जि भवनां सुख हुइं। अनइ जिनपूजा लगी अनंतां सुख पांमीइं। ए भावु जाणिवउ ॥ ८९ ॥

[सो.] वीतरागनी पूजा[1] साचइं भाविइं[2] जि[3] कीजती गुणहेतु[4] हुइ। ईम्हइं न हुइं। ए वात कहइ छइ।

[जि.] अथ जिनपूजानउ गुण कहइ।

तित्थयराणं पूआ सम्मत्तगुणाण कारणं भणिआ।
सा वि य मिच्छत्तयरी जिणसमए देसिअ अपूआ ॥ ९० ॥

[सो.] **तित्थयराणं०** तीर्थंकरदेवनी पूजा साचा परमेश्वरना गुण जाणी--परमतत्त्व भणी देषतउ, इहलोक-परलोकनां फल अण-वांछतउ,[5] कर्मक्षयजिनी बुद्धिइं एकाग्रचित्तिइं करइ तउ सम्यक्त्वनउं करण[6] थाइं। सम्यक्त्व निर्मल करइ अनइ अनंत सुखहेतु हुइ। **सा वि य०** अनइ तेह जि वीतरागनी पूजा, 'परमेश्वर ! तुं मुझहूइं साजउ करिजे। अथवा ऋद्धि पुत्रादिक[7] संतानादिक देजे। एतलाएक द्रव्यनी पूजा तुझहूइं करिसु।' जं[8] जिणवर इम मानी ईंछी करइ। जे[9] पूजा जिनशासनि मिथ्यात्त्वनी करणहार कहीइ ते देवगत मिथ्यात्त्व कहीइ ॥ ९० ॥

[जि.] तीर्थंकरनी पूजा सम्यक्त्वना गुणनउ कारणरूप भणी जिम जिम जिनपूजा कीजइ तिम तिम सम्यक्त्वना गुण ऊपजावइ। **सा वि य** ते जिनपूजाइ **जिणसमए** श्रीजिनशासनि मिथ्यात्त्वसहित हूंती अपूजा **देसिअ** कही। जइ जिनपूजा मिथ्यात्त्वसहित करइ तउ

---

१ पूजाइ. २ भावि. ३ 'जि' नथी. ४ गुणहेत. ५ अणवांछितउ. ६ कारण. ७ पुत्तसंतानादिक. ८ 'जं जिणवर' नथी. ९ ते.

कीधीइ अणकीधी, जेह भणी सम्यक्त्वगुण न ऊपजावइ । मिथ्यात्त्व-सहितपणातउ जिहां जिहां मिथ्यात्त्व तिहां तिहां सम्यक्त्व नही, जिम संगमादेवमाहे । अनइ जिहां जिहां सम्यक्त्व तिहां तिहां मिथ्यात्त्व नही; जिम श्रेणिकमहाराजमाहे । तिणि कारणि मिथ्यात्त्व मेल्ही जिनपूजा करिवी, जिम सम्यक्त्वगुण ऊपजावइ ॥ ९० ॥

[मे.] तीर्थंकरनी पूजा सम्यक्त्वना गुणनइ कारणि भणी । वली तेहइजि पूजा जिनसमय-अनुपदिष्ट अदेशित अविधिं कीधी मिथ्यात्त्वनइ कारणि हुइ ॥ ९० ॥

[सो.] परमेश्वरनी आज्ञाइ जि तत्त्व । ए वात कहइ छइ ।

[जि.] अथ जिनतत्त्वनउ जाणणहारनी वात कहइ ।

जं जं जिणआणाए तं चिय मन्नइ[1] न मन्नए सेसं ।
जाणइ[2] लोअपवाहे न हु तत्तं सो य तत्तविऊ ॥ ९१ ॥

[सो.] जं जं जिण० जे उत्तम, जे जे बोल वीतरागनी आज्ञाइं करी सहित हुइं तेह जि मानइं । **न मन्नए०** थाकतउं बीजउं कांइं न मानइ । **जाणइ लोअ०** इसिउं जाणइ, 'लोकप्रवाहमाहि कांई नथी ।' यतो लोकेऽप्युक्तं—

गतानुगतिको लोको न लोकः पारमार्थिकः ।
पश्य ब्राह्मणमूर्खेण हारितं ताम्रभाजनम् ॥

एहनु[3] अर्थ । एक मूर्ख ब्राह्मण नदीइं पुण्यहेतु स्नान करिवा लागउ ।

---

१ जि. मन्नेइ. २ गाथानो आ उत्तरार्ध जि. मां नथी. लहियानी भूलथी पडी गयेलो छे. ३ 'एहनु अर्थ 'थी मांडी ' ढिग कीधा ' सुधीनो पाठ बीजी प्रतमां नीचे प्रमाणे प्रकारान्तरे छे—एक मूर्ख ब्राह्मण नदीहइ गुणहेतु स्नान करिवा गिउ । त्रिभाणउं धूलिनउ ढग अहिनाण करी नदीनइ तटि सातिउं । नदीमाहि स्नान करिवा

पूठिइं बीजा लोकना सहस्र लाख आवता हूता तीणइं धूलि ढिग करतउ दीठउ । तीण लोके चींतविउं 'धूलिनउ ढग करी नाहीइं तउ घणउं पुन्य हुइ ।' सविहु लोके धूलिना ढिग कीधा । ते मूर्ख ब्राह्मण नदीमाहि नाही आपणइ अहिनाणि त्रिभाणु जोवा लागउ । देखइ तउ ढिगला सहस्र लाख हूआ । त्रिभाणूं लाभइ नही । इसिउ भाव । जे इम जाणइ **सो य तत्तविऊ** तत्त्वनु[१] जाण कहीइ ॥ ९१ ॥

[जि.] शेष[२] थाकतउ जिनाज्ञारहित धर्म न मानइ । वली लोकप्रवाहि तत्त्व नथी इसुं जे जाणइ **सो य तत्तविऊ** ते श्रावक तत्त्ववित् तत्त्वनउ जाण ॥ ९१ ॥

[मे.] जे जे वचन वीतरागनी आज्ञाइं सहित हुइं तेहइ जि मानइं, सेष थाकतउं काई न मानइं । इसउं जाण जि लोकप्रवाहमाहि तत्त्व कांई नथी इम जाणइ ते तत्त्वनउ जाण ॥ ९१ ॥

[सो.] वली एह जि वात कहइ छइ ।

[जि.] अथ जिनाज्ञास्वरूप कहइ ।

जिणआणाए धम्मो आणारहिआण फुड अहम्मु त्ति ।
इअ मुणिऊण[३] तत्तं जिणआणाए कुणह धम्मं ॥ ९२ ॥

[सो.] जिणआणाए० वीतरागनी आज्ञाइं जि[४] चालतां

लागउं । पूठिइं बीजा लोकना सहस्र लाष आवता हूंता तीणइ धूलिनउ ढिग करतउ दीठउ । तीणइं लोकिइं चींतविउं । धूलिनउ ढिग करी नाहीइ तउ घणउ पुण्य हुइ । सवे लोके धूलिना ढिग कीधा ।

१ ते तत्त्वनु. २ जि.नी प्रतमां जेम गाथानो उत्तरार्ध नथी तेम ते उपरना बालावबोधनी पण एक पंक्ति पडी गयेली छे. एटले गाथाना पूर्वार्धनो पूरो अनुवाद मळतो नथी. ३ मणिऊण, जि. मे. मुणिऊण य. ४ 'जि' नथी.

धर्म हुइ। आज्ञारहितपणइं स्फुट[1] प्रकटपणइं[2] अधर्म हुइं। **इअ मुणिऊण०** इसिउं तत्त्व जाणीनइ वीतरागनी आज्ञाइं जि हे भव्य जीव[3]! धर्म करउ ॥ ९२ ॥

[जि.] श्रीजिनाज्ञाइं जिनधर्म छइ। आज्ञारहितहूइं स्फुट प्रकट अधर्म पापइ जि हुइ। **इअ** इसुं तत्त्व रहस्य मुणीनइं जाणीनइ अहो भविक लोको! जिननी आज्ञाइं धर्म करउ ॥ १२ ॥

[मे.] जिननी आज्ञा पालतां धर्म हुइ। आज्ञारहित धर्म करतां स्फुट प्रकट अधर्मइ जि हुइ। इसउं जाणीनइ तत्त्व एहइ जि जे जिननी आज्ञाइं धर्म करउ ॥ ९२ ॥

[सो.] जे गुरुनइ जोगि[4] छतइ धर्म न सांभलइं ते अधर्मी कहीइ। ए वात कहइ छइ।

[जि.] तत्त्वना जाणनी वात कही धेठा पुरुषनी वात कहइ छइ।

साहीणे गुरुजोगे जे न हु निसुणंति सुद्धधम्मत्थं।
ते दुट्ठधिट्ठचित्ता अइसुहडा भवभयविहूणा ॥ ९३ ॥

[सो.] साहीणे० सद्गुरुयोग कहइएकहूइं स्वाधीन स्ववश्य आपणइं भाग्यइं करी लाधउ छइ। तीणइं छतइं **जे न हु०** जे न सुणइं न सांभलइं खरा धर्मनउ विचार, सद्गुरु कन्हइ खरउ धर्म पूछी परीछी लिइं नही **ते दुट्ठ०** ते दुट्ठ धीरट्ठ[5] चित्त हूंता[6] गाढा सुभट संसारनइं भइं करी रहित ते धीरठपणइं इम बोलइं—

न मे दिट्ठे परे लोए चक्खुदिट्ठा इमा रई।
हत्थागया इमे कामा कालिआ जे अणागया ॥

---

१ स्फट. २ प्रगटपणइ. ३ जीवइ. ४ योगि. ५ धीट्ठ. ६ हूंतां.

को जाणइ परे लोए अत्थि वा नत्थि वा पुणो ।
जणेण सद्धिं होक्खामि इय बाले पगब्भई ॥
(उत्तराध्ययन सूत्र, अध्य. ५)

सत्तमियाओ अन्ना अट्ठमिया नत्थि नरयपुढवि त्ति इत्यादि बोलतां मरी दुर्गतिइं जाइं । यत उक्तं श्री**उपदेशमालायां**—

जस्स गुरुम्मि परिभवो साहूसु अणायरो खमा तुच्छा ।
धम्मे य अणहिलासो अहिलासो दुग्गईए उ ॥ (गा. २६३)

[जि.] सुगुरुनइ जोगि स्वाधीन स्ववशि हूंतइ जे पुरुष शुद्धउ निर्मल धर्मनउ अर्थ **हु** निश्चइं न **निसुणंति** सांभलइं नही ते पुरुष धेठा जाणिवा । किसा छइं ? दुष्ट सदोष निर्दय धृष्ट निर्लज्ज चित्त मन जेहनां हुइ ते दुष्टधृष्टचित्त कहीइ । वली किसा छइं ? संसारनउ भय तिणि करी रहित हूंता अतिसुभट छइं । ते परमार्थवृत्तिइं अभागिया ॥ ९३ ॥

[मे.] गुरुनइ योगि स्वाधीन मिलिइ हूंतइ जे इहां संसारमाहि सूधउ धर्मनउ अर्थ न सांभलइं ते जीव दुष्टचित्त हूंता अति गाढा सुभट जे संसार हूंता न बीहइ ॥ ९३ ॥

[सो.] केतलाइ उत्तम गुरुनउ जोग[1] प्रामी मोक्ष लहइ[2], सघलांइ काज साधइं । ए वात कहइ छइ ।

[जि.] अथ गुणवंतनउं स्वरूप बोलइ ।

सुद्धकुलधम्मजा अवि गुणिणो न रमंति लिंति जिणदिक्खं ।
तत्तो वि य परमतत्तं तओ वि उवयारओ मुक्खं ॥ ९४ ॥

[सो.] सुद्ध० केतलाइ सुद्ध खरउ धर्म जिहां वापरइ एह्वइ कुलि ऊपनाइ हूंता गुरुनइ योगि विनय विवेक वैराग्यादिक गुणवंत

---

१ योग, २ लगइ,

थाइं । **न रमंति०** संसारना विषयसुखनइ विषइ न राचइं । **लिंति०** जिन वीतरागनी दीक्षा लिइं । ते दीक्षामाहि परम तत्त्व पांच महाव्रत पांच समिति त्रिणि गुप्तिरूप आराधइं । ते आराधी स्व-परलोक नासइं हुइं । धर्मनउ उपकार करइं । उपकारक[1] केवलज्ञान प्रामी मोक्ष लहइं । यत उक्तं श्री**उपदेशमाला**सिद्धान्ते—

आसन्नकालभवसिद्धियस्स जीवस्स लक्खणं इणमो ।
विसयसुहेसु न रज्जइ सव्वत्थामेसु उज्जमइ ॥ (गा. २९०)

[जि.] सुद्ध निर्मल मोटा जे कुल धर्मलक्ष्मीवंत कुल तिहां जात उप्पन्नाई हूंता गुणवंत न रमइं । संसारना भोग न भोगवइ । किंतु जिनोक्त दीक्षाव्रत लिइं । तेह जिनदीक्षानउं किसुं प्रमाण ? **तत्तो वि य परमतत्तं ।** तेह जिनदीक्षा हूंतउ परम तत्त्वज्ञान ऊपजइ । **तओ वि** तेह परमतत्त्व हूंतउ **उवयार** लोकहूइं उपगार हुइ । अथवा आपणपाहूइं उपगार हुइ । भलां धर्मानुष्ठान करइं । अनेरा पाहइं कारावइं । **मुक्खं** तेह उपगार हूंतउ मोक्ष हुइ । मोक्षि अनिर्वचनीय अप्रतिपातिया शाश्वतां सुख छइं । तेह भणी गुणवंत दीक्षा लिइं ॥ ९४ ॥

[मे.] जीणइ कुलि वीतरागनउ धर्म वापरइ तीणइ कुलि ऊपना हूंता विनयविवेकादिक गुणसहितइ हूंता संसारना सुखनइ विषइ न राचइं । अनइ जिनदीक्षा लिइं । तिवार पछइं परम तत्त्व ओलखइं । ते आराधता हूंता क्रमिहिं मोक्ष पामइं ॥ ९४ ॥

[जि.] अथ नारकी कहइ ।

वन्नेमि नारयाओ जेसिं दुक्खाइं संभरंताणं ।
भव्वाण जणइ हरिहररिद्धि[2]समिद्धी वि उद्धोसं ॥ ९५ ॥

---

१ उपकारी. २ °रिद्ध°.

[**सो.**] **वन्नेमि०** ते नारकीइ वर्णवउं, जे नारकीनां दुःख सिद्धांतनइं बलिइं जाणीनइ स्मरतां हुंतां **भव्वाण** भव्य जीवहूंइं **हरिहर** विष्णु ईश्वरादिकना सरीषीइ ऋद्धिनउ विस्तार **उद्धोसं** ऊकांटउ करइ। जाणइं एह रिद्धि लगइ जीव पाप ऊपार्जी नरगि[1] जाइं। एह्वां दुःख प्रामइं। इम चीतवतां भय लगइ सयर धूजइं। संसारना सुख उपरि वैराग्य ऊपजइ ॥ ९५ ॥

[**जि.**] नारकीइ वर्णवउं हउं, जेहां नारकीना दुःख संभारता स्मरता हूंता **भव्वाण** भव्य जीवहूंइं हरि विष्णु हर ईश्वर तेहनी ऋद्धि समृद्धि लक्ष्मीनउ विस्तार **उद्धोसं** उद्धर्षण रोमांच **जणइ** करइ। एतलइं एवहां कांई नारकीहूंइं दुःख छइं, जे दुःख संभारताई ज हूंतां अति भय लगी कंप ऊपजावइं। कंप लगी रोमांच ऊपजइ। अनइ जि को संसारनां दुःख हूंतउ बीहइं ति ए न करइं। तिणि कारणि अम्हे नारकीनां दुःख संभारता हूंतां पाप न करां। तिह भणी नारकी वर्णवां। जिम चोरनां बंधमरणादिक दुःख देखी साधु माणस लगारई चोरी अन्याय न करइं ॥ ९५ ॥

[**मे.**] ते नारकीइ वर्णवीइं, जे नारकीनां दुक्ख संभारतां हूंतां भव्य जीवहूंइं हरिहरादिक देवतानी ऋद्धिनउ विस्तार **उद्धोस** कहतां रोमांच ऊकांटउ करइ। जाणइ एह रिद्धि लगी नरगि दुःख पांमीस्यइं ॥ ९५ ॥

[**सो.**] केतलाइ **उपदेशमालानु**[2] अर्थ मानइ, पुण करइं नहीं। तेह आश्री कहइ छइ।

[**जि.**] अथ बिहुं गाथाइं श्री**उपदेशमाला** वर्णवइं।

---

१ नरकि. २ श्रीउपदेशमालनउ.

सिरिधम्मदासगणिणा रइयं उपदेसमालसिद्धंतं[1] **।**
सव्वे वि समणसड्ढा मन्नंति पढंति पाढंति ॥ ९६ ॥
तं चेव केवि[2] **अहमा छलिया अहिमाणमोहभूएणं**[3] **।**
किरियाए हीलंता ही ही दुक्खाइं न गणंति ॥ ९७ ॥

[सो.] सिरिधम्मदास० श्री**धर्मदासगणि**आचार्य श्री**महावीर** विजईया छतां श्री**उपदेशमाला**सिद्धांत[4] रचिउ कीधउ, अनेक महात्मा श्रावक आश्री उपदेश विचाररूप । **सव्वे वि०** ते अर्थे[5] सविहु गच्छना महात्मा श्रावक मानइं पढइ पढावइं ॥ ९६ ॥

तं चेव० पुण तेह जि माहि केतलाइ अधम अभिमान अहंकार अनइ मोह अज्ञान तेहरूपिइं भूति छल्या, अहंकार अजाणिवाना वाह्या तेह जि श्री**उपदेशमाला**हूइं क्रिया करी हीलइं । अवज्ञाइं[6] करइं । **ही ही०** आहा ! ते बापडा आगलि आपणपाहूइं दुःख आवतां गणता नथी । ते मूर्ख इसिउं नथी जाणता जे ईणं सिद्धांतनी अवज्ञाइं करी अनंत संसारमाहि रुलिस्युं । अनंता दुःख प्रामिस्यउं ॥ ९७ ॥

[जि.] श्री**धर्मदासगणि** नामाचार्यइं रचउ कीधउ श्री**उपदेशमाला**सिद्धांत **सव्वे वि** सघलाई श्रमण महात्मा **सड्ढ** श्रावक मानइं पढइं पढावइं ॥ ९६ ॥

केईएक अधम पुरुष अतिमान मोह रूपिया भूत प्रेत तेहे छल्या हूंता **ही ही** खेदे आपणपाहूइं दुःखई न गणइं न चींतवइं । किसा छइ अधम ? **तं चेव** श्री**उपदेशमाला**सिद्धांत अवगणइं ते अधम भूते छल्या पुरुष सरीषा जाणिवा । जिम भूतव्यापिउ लोक माथउं पेट

१ जि. उवएसमाल°, मे. उवएसमालसम्मत्तं. २ जि. किवि. ३ जि. °भूएहिं. ४ °माल°. ५ अहींथी मांडी ९७मी गाथाना बालावबोधमां 'अहंकार अनइ मोह' सुधीनो पाठ सो.नी बीजी प्रतमांथी पडी गयेलो छे. ६ अवज्ञा.

आहणतउ मरणपीडादिक दुःख न चींतवइ तिम सिद्धांतनिंदक पुरुष अहंकारि हूंतउ दुःखीउ थाइ ॥ ९७ ॥

[मे.] श्री**धर्मदासगणिइं** श्री**महावीर** जीवताइ जि श्री**उपदेशमाला**प्रकरण सिद्धांत जाईउ रचिउ **सव्वे वि** सघलाइ महात्मा श्रावक मानइं पढइं पढावइं ॥ ९६ ॥

तेह जि **उपदेशमाला** केईएक अधम अभिमान अनइ मोह रूपीइ भूति छल्या हूंता क्रियांइं करी अवहेलता हूंता **ही ही** इसिइ खेदि आगामियां नरकनां दुःख गणइं नहीं । ते मूर्ख जाणता नथी जि संसारमाहि रुलीस्यइ ॥ ९७ ॥

[सो.] वीतरागनी आज्ञाभंगि मोटउं पाप । ए वात कहइ छइ ।

[जि.] अथ जिनेन्द्रनउ आज्ञाप्रताप वर्णवइ ।

इयराणं[1] ठकुराणं[2] आणाभंगेण होइ मरणदुहं ।
किं पुण तिलोयपहुणो जिणिंददेवाहिदेवस्स[3] ॥ ९८ ॥

[सो.] इयराणं० इतर सामान्य ठाकुराईनी[4] आज्ञाभंगि तेहना आदेशनइ लोपि मरणदुःख प्रामीइ । ते रीसाविउ ठाकुरु[5] मारइ । **किं पुण०** त्रैलोक्यनउ प्रभु ठाकुर जे जिनेन्द्रदेवाधिदेव सविहूंनउ नायक तेहनी आज्ञानइ लोपि एक मरणदुःखनउं सिउं कहीइ ? अनंतां मरणदुःख प्रामइ ॥ ९८ ॥

[जि.] इतर पाधरा ठाकुरनी आज्ञा भांजिवइ मरणादिक दुःख हुइं, तउ पछइ त्रिलोकप्रभु त्रिलोकनायक श्रीजिनेन्द्रदेव तेहनी आज्ञा भांजिवइ करी महादुःख हुइं तेहनउं सिउं कहिवउं ? ॥ ९८ ॥

---

१ जि. मे. इयराण. २ जि. मे. ठकुराण. ३ जिणंद°, मे. जिणंद°. ४ ठाकुरनी. ५ ठाकुर.

[मे.] इतर पाधरा ही ठाकुरनी आज्ञानइ भंगि मरणादिक दुःख ऊपजइं । पछइ त्रैलोक्यनउ प्रभ जिनवरेन्द्र देवाधिदेव तेह्नी आज्ञानइ भंगि जे दुक्ख उपजइं ते किम कही सकीइं ? ॥ ९८ ॥

[सो.] वली एह् जि वात कहइ छइ ।

[जि.] अथ जिनवचननउ गुण कहइ ।

जगगुरुजिणस्स[1] वयणं सयलाण जियाण होइ हियकरणं[2] ।
ता तस्स विराहणया कह धम्मो कह[3] णु जीवदया ॥९९॥

[सो.] जगगुरु० जगत्त्रयनउ गुरु श्रीजिनेन्द्र वीतराग तेह्नउं वचन सर्व जगना जीवहूइं हितकारिउं छइ । **ता तस्स०** तउ तेह्नी विराधना जउ करइ, तेह्नउं वचन न मांनइं, अप्रमाण करइं तउ **कह धम्मो** तेहहूइं धर्म किहां छइ ? **कह णु जीवदया** अनइ तेहहूइं जीवदया किहां छइ ? तेह भणी वीतरागनइं वचनइं जीव ओलखाइ[4], जीवदयानु प्रकार पुण जाणीइ । वीतरागनां वचनइ जि उपरि आस्था[5] नही तउ किम जीव अनइ जीवदया जाणीइ ? ॥ ९९ ॥

[जि.] जगत्त्रयनउ गुरु जे जिन श्रीवीतरागदेव तेह्नउं **वयण** वचन **सयलाण जियाण** सघलाई जीवहूइं हितकारक हुइ । **ता** तिणि कारणि **तस्स** तेह जिनवचन तणी विराधनाइं आशातनाइं करी **कह** किमु धर्म हुइ ? अपि तु न हुइ । **णु** प्रश्ने । **कह** किमु जीवदयाइ हुइ ? जीवदया पुण न हुइं । तिणि जि कारणि जिनवचननी विराधना न करिवी । किं तु पालना करिवी, जिम जीवहूइं रूडउं हित हुइ ॥ ९९ ॥

---

१ जगुगुरु°. २ हिइकरणं. ३ मे. कहुण. ४ उलखाइ. ५ जु आस्था.

[मे.] जगगुरु जिनेश्वर तेहनउं वचन सघलाइ जीवनइ सुखकारक हुइ। तउ ते परमेश्वरना वचननी विराधनाइं कीधीइं किहां धर्म, किहां जीवदया ? ॥ ९९ ॥

[सो.] केतलाइ शुद्धा[1] चारित्रियानी अवज्ञानइं काजिइं जमलउ बाह्य क्रियाडंबर मांडइं। ते वात कहइ छइ।

[जि.] अथ सिद्धांत हूंतु विरुद्ध अधिक क्रियाडंबर जे धरइं ते उद्दिसी कहइ।

किरियाइफडाडोवं[2] अहियं साहंति[3] आगमविहूणं।
मुद्धाण रंजणत्थं सुद्धाणं हीलणट्ठाए ॥ १०० ॥

[सो.] **किरियाइ॰** केतलाइ[4] बाह्य तप क्रियादिकनउ फटाटोप आडंबर[5] चारित्रियाइ पाहइ अधिकउ कहइ दिषाडइं, आगम सिद्धांतनी आज्ञारहित आपणी बुद्धिइं कल्पीनइ **मुद्धाण॰** मुग्ध भोला लोकने[6] रंजविवानइ काजिइं। **सुद्धाणं॰** शुद्धचारित्रियां तेहहूइं अपमाननइं काजिइं, तेहे ठउडवा[7] इम करइं। पुण जाण हुइं ते तेन्हे न वाहीइं ॥ १०० ॥

[जि.] **आगमविहूणं** सिद्धांत जे नथी कहिउं तेह क्रियादिकनउ स्फुटाटोप प्रकट आडंबर अधिक साधइं करइं। किसा भणी ? मुग्ध लोला सिद्धांतरहस्यना अजाण तिहहूइं रंजिवा भणी अनइं वली सुद्ध सदाचारी पुरुष तेहूइं हीलनार्थि अवहेलनानिमित्ति। एतावता सिद्धांत पाषइ क्रिया तपनउ आडंबर घणउ करइं। तेहहूइं मुग्धरंजन मात्र फल छइ। सामुहउं सदाचारीनी अवहेलाइं करी पाप हुइं। ए

---

१ शुद्ध. २ जि. मे. °फुडाडोवं. ३ सायंति. ४ केतला. ५ 'आडंबर' नथी. ६ लोक ते. ७ ठउजावा.

कष्टई करइं अनइ आगलि पापइ जु उपार्जइं। एहां एह जु ऊषाणउ साचउ हुइ—एगं च मालपडणं अन्नं लउडेण सिरि घाओ ॥ १०० ॥

[मे.] क्रियानउ फटाटोप बाह्य तपनउं करिवउं चारित्रिया पांहति अधिकउं देषाडइ। आगमविहीन सिद्धांतनी आज्ञाइं रहित आपणी बुद्धिइं मुग्ध भोला लोकनइं रंजिवानइ काजि अनइ सुद्ध चारित्रिया तेहना अपमाननइ काजि, हीलानइ हेति ॥ १०० ॥

[सो.] जे धर्मनउ उपदेश दिइ ते गाढउ हितूउ। ए वात कहइ छइ।

[जि.] अथ जिनधर्मनउ देणहार पुरुषनउं स्वरूप कहइ।

जो देइ सुद्धधम्मं सो परमप्पा जयम्मि न हु अन्नो।
किं कप्पदुमसरिसो इयरतरू होइ कइया वि ॥ १०१ ॥

[सो.] जो देइ० संसारना काजकाम व्यवसाय वाणिज्यनइ विषइ प्रेरणा सहूइको मा बाप सगा सणीजा करइ। पुण जे सूधउ खरउ धर्म उपदेशिइ[1] देखाडइ ते परमात्मा जगमाहि परमहितूउ[2] कहीइ। अनेरउ न कहीइ। **किं कप्पदुम०** जिम बीजा धव खइर पलासादिक घणाइ वृक्ष हुइ, पुण मनोवांछित पूरण्हार कल्पद्रुम सरीसउ एक[3] वृक्ष न हुइ। तिम कल्पद्रुम सरीखउ धर्म दिण्हार[4]। इह[5] लोकना काजना प्रेरण्हार बीजा वृक्ष सरीषा जाणिवा ॥ १०१ ॥

[जि.] जे सुद्धउ साचउ धर्म दिइ सीखवइ ते पुरुष परमात्मा गाढउ मोटउ **जयम्मि** जगत्माहे। तेह सरीखउ **न हु अन्नो** अनेरउ मोटउ कोई नही। किसुं? कल्पद्रुम सरीषउ अपर वृक्ष

---

१ उपदिसइं. २ हितूइ. ३ एकइ. ४ देण्हार. ५ इ.

कइया वि कदापि किवारई हुइ ? अपि तु न हुइ। कल्पद्रुम सरीषउ शुद्ध धर्मदायक जाणिवउ ॥ १०१ ॥

[मे.] सम्यक्त्वमूल बार व्रतनउ सूधउ धर्मनउ उपदेश जको दिइ तेहइ जि परमात्मा। जगत्त्रयमाहि परमपुरुष अनेरउ कोई नहीं। किसउं ? कल्पवृक्ष सरीषउ इतर बीजउ को वृक्ष हुइ कहीइ ? अपि तु नहीं ॥ १०१ ॥

[सो.] जे गुणवंतना गुण अनइं दोषवंतना दोष न ओलखइं[1] ते आश्री कहइ छइ।

[जि.] अथ पंडित अनइ मूर्षहूइं गाढउं आंतरउं कहइ।

जे अमुणिअगुणदोसा ते[2] कह विबुहाण हुंति मज्झत्था।
अह ते वि हु मज्झत्था ता विसअमिआण तुल्लत्तं ॥१०२॥

[सो.] **जे अमुणिअ०** जे गुणवंतहूइं गुणवंत भणी ओलखइं[3] अनइ दोषवंतहूइं दोषवंत भणी न जाणइं। गुणवंत अनइ दोषवंतइ बिहइं सरीषाइ जि देखइ। इम कहइ 'अम्हारइ सघलाइ[4] देव, सघलाइ गुरु सरीखाइ जि। अम्हारइ रागद्वेष नही। अम्हे मध्यस्थ।' ते जाणइ नही[5] मध्यस्थ भणी किम बइसइ ? ते गाढा अजाणइ जि कहीइं। जेह भणी तेहहूइं बि दोष लागइ, जेह भणी गुणवंतना गुण छताइ[6] अछता करइं। दोषवंतमाहि[7] अछता गुण आरोपइ छइ[8]। ए बि दोष तेहहूइं लागइं। **अह ते०** जउ तेह मध्यस्थ कहवराइं **ता वि०** तउ विख अनइ अमृत तथा रत्न अनइ काच, आंबउ अनइ लीब, साप अनइ फूलमाल, अंधारउं अनइ अजूआलूं

---

१ उलषइ. २ तेह विबुहाण. ३ उलषइं. ४ सघला. ५ नहीइ. ६ छता. ७ दोषवंतना. ८ 'छइ' नथी.

एहइ[1] तोल[2] तेहहूइं सरीषइ[3] जि थिया। एहइ माहि रूडउं विरूउं कहतां मध्यस्थपणउं जासिइ। तेह भणी इसिउं जाणिवउं ए अजाणिवुं जि कहीइ, पुण मध्यस्थपणउं न कहीइं[4]। इसिउ भाव ॥ १०२ ॥

[जि.] जे पुरुष अमुनित अज्ञात गुण अनइ दोष छइं ते अमुनितगुणदोष पुरुष मूर्ष मध्यस्थ हुइं, पंडितमाहे गणाइं **ता** तउ पछइ विस अनइं अमृतहूइं तुल्यत्वं सरीषा हुई। एतलइ विस सरीषउ मिथ्यात्त्वी मूर्ष अनइ अमृत सरीषउ तत्त्वज्ञ पंडित जाणिवउ। इणि कारणि ए बिहुंहूइं घणउ आंतरउ ॥ १०२ ॥

[मे.] जीए गुण नइ दोष नहीं जाण्या ते किम बुध पंडितमाहि मुख्यपणउं लहइं? अथवा तेहइ गुणदोषना अजाण जु मध्यस्थ विद्वांसमाहि मुख्यपणउं लहइ तउ विष नइ अमृत बिहुंनइं तुल्यपणउं हूउं ॥ १०२ ॥

[सो.] धर्मइ जि आपणउ, बीजउ कांई नही। ए वात कहइ छइ।

[जि.] अथ सम्यक्त्व विवरइ।

मूलं जिणिंददेवो[5] तव्वयणं गुरुजणं महासयणं।
सेसं पावट्ठाणं परमप्पाणं[6] च वज्जेमि ॥ १०३ ॥

[सो.] **मूलं०** पहिलउं जिनेंद्र वीतरागदेव जीणं धर्म देषाडिउ। अनइ[7] परमेश्वरनउं वचन सिद्धांत। त्रीजउं[8] ते सिद्धांतना प्रकासण्हार श्रीगुरुजन पूज्य आचार्य[9] साधु श्रावक। ए त्रिणिइ महा-स्वजन गाढा सगा। **सेसं०** बीजउं सहू धर्मरहित। आपणउं पुत्र-

१ एह जि. २ बोल. ३ सरीषा. ४ कहइ. ५ जिणंद°. मे. जिणंद°. ६ जि. परमप्पयणं. ७ अनइ बीजउं ते. ८ त्रीजुं. ९ आचार्य उपाध्याय.

कलत्रमित्रादिक पर अनेराइ लोक मिथ्यात्त्वी भणी पापस्थानक[1] भणी वर्जू त्यजुं। तेह ऊपरि मोह न करउं ॥ १०३ ॥

[जि.] **मूलं** पहिलउ जिनेन्द्रदेव। बीजउं **तव्वयणं** तेह जिनेन्द्रनउं वचन, जिनप्रणीत धर्म। त्रीजउ गुरुजन सुसाधु गुरु। ए त्रिन्हइ महास्वजन मोटा सगा। **सेसं पावट्ठाणं** शेष थाकतउं स्वजन पापस्थानक पापनउं कारण हूंतउं पारकउं अनइ आपणउं वर्जउं ॥ १०३ ॥

[मे.] मूलि तां पहिलउं जिनेन्द्रदेव। पछइ तेहनउं वचन। वली गुरुजन सुसाधु गुरु। ए त्रिन्हइ महामोटा सगा। सेष थाकता पर अनेरा मिथ्यात्त्वी अनइ ज्ञानदर्शनचारित्ररहित आपणपउं त्यजउं ॥ १०३ ॥

[सो.] वली गुरुनउं स्वरूपु[2] कहइ छइ।

[जि.] अथ प्रकारान्तरि गुरुपरीक्षा बोलइं, बिहुं गाथाइं करी।

अम्हाण रायरोसो[3] कस्सुवरिं नत्थि[4] इत्थ गुरुविसए।
जिणआणरया गुरुणो धम्मत्थं सेस वोसिरिमो ॥ १०४ ॥

[सो.] **अम्हाण०** कवि कहइ छइ। ईहां गुरुनइं विषइ अम्हहूंइं रागरोस[5] कहिं[6] ऊपरि नथी[7]। 'आ गुरु रूडउ, आ गुरु विरूउ' इम कांई रागद्वेष नथी। **जिण०** जे गुरु जिन वीतरागनी खरी आज्ञा पालइं छइं, खरउं[8] चारित्र आराधइ छइं ते गुरु धर्मनइं काजिइं कर्मक्षय निमित्त सेवुं। तेहइ इहलोकनइ कारणि न सेवउं। **सेस०** सेष बीजा गुरु सघलाइ वोसिरावउं छांडुं[9] ॥ १०४ ॥

१ पापस्थान. २ स्वरूप. ३ जि. मे. रायरोसं. ४ नत्थि अत्थ. जि. इत्थ नत्थि. ५ रागदोस. ६ कहइ. ७ नत्थी. ८ खरूं. ९ छांडुं.

[जि.] **इत्थ** संसारमाहे गुरुनइ विषइ **कस्सुवरिं** कही ऊपरि **अम्हाण** अम्हहूइं राग अनइ रोषई नथी । एक गुरु ऊपरि राग द्वेष इसुं नही । किं तु अम्हे धर्मनइ अर्थि जिनाज्ञारत जिनाज्ञाप्रतिपालकई ज गुरु सेवां । सेष थाकता अनेरा जिनाज्ञा थोडी पाळइ ते गुरु वोसिरां मेल्हां ॥ १०४ ॥

[मे.] कवि कहइ । अम्हनइ कुणही गुरु ऊपरि रागरोस नथी इहां गुरुनइ विषइ । जे जिननी आज्ञानइ विषइ तत्पर तेहइ जि धर्मनइ काजि गुरु । सेष थाकता वोसिरउं छांडउं ॥ १०४ ॥

[सो.] वली एह जि वात कहइ छइ ।

[जि.] मेल्हिवानउं कारण कहइ ।

नो अप्पणा पराया गुरुणो कइया वि हुंति सड्ढाणं ।
जिणवयणरयणमंडणमंडिय[1] सव्वे वि ते सुगुरु ॥ १०५ ॥

[सो.] **नो अप्पणा०** श्रावकनइ 'आ आपणा गुरु, आ पिराया[2] गुरु' ए वात कहीइं नथी[3] । ए वात अजाण मिथ्यात्वीनी 'आ माहरउ गुरु ।' जेह भणी मातंग म्लेच्छ ठठार चमार वेश्यादिकइनइ एकेकउ गुरु[4] छइ । ते अजाणपणइं[5] 'माहरउ ए गुरु' इम कहइं, पणि मोक्षार्थी श्रावक इम न कहइं । तेहनइ **जिणवयण०** जिनवचन सिद्धांत तेहरूपिउं रत्नमंडन रत्नमय आभरण तीणं करी जे मंडित छइं[6], जें[7] वीतरागनी आज्ञा सिद्धांत साचउ जाणइं मानइं प्रकासइं, आपणी शक्ति अणगोपवता करइं आराधइं ते सघलाइ सुगुरु कहीइ । ते गुरु भणी आराधिवा ॥ १०५ ॥

---

१ जि. जिणवयणमंडण°. २ पराया. ३ नत्थी. ४ कुलगुरु. ५ अजाणइं. ६ छइं जि. ७ जि.

[जि.] शुद्ध श्रावकहूइं कदापिहिं आपणा अनइ पारका गुरु न हुइं। किं तु श्रावकहूइं ते सघलाई सुगुरु हुइं। ते कुण? जिनवचन-रूपियां रत्न तेहनउ मंडन अलंकार तेहे करी मंडित अलंकर्या। एतलइ जे महात्मा जिनवचन मानइं ते सुगुरु ॥ १०५ ॥

[मे.] धर्मार्थी श्रावकनइ 'गुरु आपणा-पारका' ए वात कहिवा नावइं। कांइं? जे जिनवचनरूप रत्न तेहे करी मंडित सूधउं प्ररूपइं, सूधउं चारित्र पालइं ते सघलाइ सुगुरु करी मानिवा ॥ १०५ ॥

[सो.] जेहनी संगतिइ धर्म लाभइं तेह[1] सुगुरुइ[2] जि जाणिवु। ए वात कहइ छइ।

[जि.] अथ सज्जन वर्णवइ।

बलि किज्जामो सज्जणजणस्स सुविसुद्धपुन्नजुत्तस्स।
जस्स[3] लहु संगमेण वि सुधम्मबुद्धि समुल्लसइ ॥ १०६ ॥

[सो.] **बलि०** अम्हे ते सज्जन जन उत्तम लोकहूइं बलि कीजउं, ऊतारणउं कीजउं। **सुविसुद्ध०** जे सुविसुद्ध निर्मल पुण्यिइं करी युक्त सहित छइं। **जस्स०** जेहनइं संगमि संयोगिइं करी **लहु** तत्काल **सुधम्म०** खरा धर्मनी बुद्धि उलसइ ऊपजइ। जेह थिकउ साचा धर्मनी बुद्धि आवइ तेहनइ[4] ज गुरु कहीइ। इसिउ भाव। यत उक्तं श्रीसिद्धान्ते—

जे जेण सुद्धधम्मम्मि ठाविओ संजएण गिहिणा वा।
सो चेव तस्स जायइ धम्मगुरु धम्मदाणाओ ॥

[जि.] सुविसुद्ध अतिनिर्मल पुण्य तेहे करी युक्त सज्जन लोकहूइं अम्हे **बलि किज्जामो** बलिहारइ कीजां, ऊतारणइं कीजां।

---

१ तेहू. २ गुरुइ. ३ **मे.** तस्स. ४ तेहू.

जस्स जेह सज्जन जन तणइ संगमि संयोगमात्रइ जि लघु उतावली सुधर्मबुद्धि **समुल्लसंइ** प्रकट हुइ ॥ १०६ ॥

[मे.] ते सज्जन उत्तम जननइं बलिहारी कीजउं । पणि ते केवहा छइं ? निर्मल पुण्य करी युक्त छइ । जेहनइ संसर्गि लघु शीघ्र भली धर्मनी बुद्धि ऊपजइ उल्लसइ ॥ १०६ ॥

[सो.] तीणइं[1] कालि ए कविनइं मनि श्री**जिनवल्लभसूरि**इ जि खरा भणी बइठा हुंता । तेह[2] आश्री बि गाह कहइ छइ ।

[जि.] अथ बिहुं गाथाइं श्री**जिनवल्लभसूरि** वर्णवइ ।

अज्ज वि गुरुणो गुणिणो सुद्धा दीसंति तडयडा केवि[3] ।
पहु[4] जिणवल्लहसरिसो पुणो वि जिणवल्लहो चेव ॥१०७॥
वयणे वि सुगुरुजिणवल्लहस्स केसिं न उल्लसइ सम्मं ।
अह कह दिणमणितेयं उलुयाणं[5] हरइ अंधत्तं ॥ १०८ ॥

[सो.] अज्ज वि० अजी केतलाइ सुगुरु गुणवंत तपि नियमि करी कडकडता[6] देखीइं । पुण **पहु** प्रभु श्री**जिनवल्लभसूरि** सरीषउ गुरु श्री**जिनवल्लभ**इ जि हुइ । बीजउ एव्हउ[7] शुद्धप्ररूपक चारित्रीउ न हुइं ॥ १०७ ॥

वयणे० श्री**जिनवल्लभसूरि** गुरुहूइं[8] वचनि[9] केतलाइ अभागिआनइ सम्यक्त्व न ऊपजइं ? **अह०** अथवा सूर्यनउं तेज उलूक घूअडहूइं अंधण[10] किम फेडइं ? जिम सूर्यइं ऊगिइं घूअड न देखइं तिम एह्वइ[11] गुरुनइ वचनि धर्म न ओलखइ[12] । इसिउ भाव ॥ १०८ ॥

---

१ तीणं. २ तेह भणी तेह आश्री. ३ **मे.** केई. ४ जि. पर, मे. पुण. ५ अलूयाणं. ६ कडकडाता. ७ एहवउ. ८ °गुरुनइं. ९ वचनइ. १० अंधपणउं. ११ एह्वाइं. १२ उलषइ.

[जि.] अद्यापि आज लगइ **तडयडा** कडकडा शुद्ध निर्दोष गुणवंत केईएक गुरु दीसइं । पर केवल प्रभु श्री**जिनवल्लभसूरि** सरीषउ वली **जिनवल्लभसूरिइ** जि । अनेराना अभावइतउ अन्योन्योपमा छाजइ ॥ १०७ ॥

गुरु श्री**जिनवल्लभसूरि**नइ वचनइ कहीएकहूइं **सम्मं** सम्यक्त्व नइ उल्लसइ न प्रकट हुइ । अथ पछइ दिनमणितेज सूर्यनां किरण उलूक घूयड तेहनउं अंधत्व अंधपणउं किसउं हरइ ? अपि तु न हइ । सूर्यना तेज सरीषउं विश्वप्रकासक श्री**जिनवल्लभसूरि**नउं वचन अभागिया पुरुषरूपिया घूयड तेहनउं अज्ञानरूपिउं अंधपणउं न फेडइं तउ ते अभागिया घूयडना कर्मइजिनउं दूषण ॥ १०८ ॥

[मे.] अजी एवहइ तीर्थकालि द्रव्य क्षेत्र काल भावनइ मेलि गुरु गुणवंत सूधा क्रियावंत आकरा दीसइं । पणि श्री**जिनवल्लभसूरि** सरीषा वली श्री**जिनवल्लभसूरि** जि ईणइं कालि दीसइं ॥ १०७ ॥

श्री**जिनवल्लभ**सुगुरुने वचने कहिनइं सम्यक्त्व उल्लसइ नहीं ? अपि तु भव्य जीव सेवाकारक सघलाइंनइं सम्यक्त्व उल्लसइ । अथवा वली सूर्यनउं तेज घूअडनइं अंधपणउं किमइं फेडइं ? अपि तु न फेडइं । तिम जे अभव्य दुरभव्य छइं ते गुरुने वचने सम्यक्त्व न ओलखइं । इसउ भाव ॥ १०८ ॥

[सो.] संसारनउं मरणादिक स्वरूप देखीनइ केतलाइंहूइं[1] वैराग्य न ऊपजइं । ए वात कहइ छइ ।

[जि.] अथ तेह ज अभागियानउं स्वरूप कहइ ।

तिहुअणजणं मरंतं दट्ठूण निअंति जे न अप्पाणं ।
विरमंति न पावाओ धिद्धी धिट्ठत्तणं ताणं ॥ १०९ ॥

---

१ 'केतलाइं हूइं' नथी.

[सो.] तिहुअण० त्रिभुवननउ लोक एवडउ सघलउइ मरइ छइ। को रहिउ नहीं, रहिसिइ नही। एव्हउं स्वरूप देषीनइ आपणपउं न जोइ, 'अम्हहूइं मरण आवइ छइ, धर्म करउं।' **विरमंति०** पाप थिकउ विरमइं नहीं, ऊहटइ नहीं। **धिद्धी०** तेह्ना धीरष्टपणा प्रतिइं धिग् पडउ, जेह भणी लगारइ मरणमय गणता नथी ॥ १०९ ॥

[जि.] जे पुरुष त्रिभुवननउ लोक मरतउ देखी आपणपउं **न निअंति** न चींतवइं, वैराग्य न पामइं अनइं पाप हूंतउ विरमइं नही तेहां पुरुषां तणउं धेठपणउं तेहहूइं धिग् धिग् ॥ १०९ ॥

[मे.] त्रिभुवनना लोक मरता देषीनइ आपणपउं जोइं नहीं जि 'अम्हेई मरिस्यउं।' एवहउं देषी जे पाप हूंता विरमइं नहीं तेह्ना धेठपणानइं धिग् धिक्कार पडउ ॥ १०९ ॥

[सो.] वली एह जि वात कहइ छइ, बिहु गाहे।

[जि.] अथ कुत्सित स्नेहपणानउँ फल बिहुं गाथाइं कहइ।

सोएण कंदिऊणं कुट्टेऊणं सिरं च उअरं च।
अप्पं खिवंति नरए तं पि हु धिद्धी कुनेहत्तं ॥ ११० ॥
एगं पिअमरणदुहं अन्नं अप्पा वि खिप्पए नरए।
एगं च मालपडणं अन्नं लउडेण सिरि घाओ[१] ॥ १११ ॥

[सो.] को सगउं मरइ तउ अजाण जि शोकिइं[२] करी आक्रंद करइ अनइ माथउं पेट कूटइ। तीणइं करी गाढउं मोहनीय कर्म ऊपार्जीनइ आपणपउं नरगि[३] घातइं। **तं पि०** तेहइ कुस्नेह विरूआ स्नेह प्रतिइं धिग पडउ ॥ ११० ॥

---

१ जि. मे. सिरघाओ. २ शोकइं. ३ नरकि.

एगं० एक तां प्रिय अभीष्ट मूउ ते दुःख। बीजउं वली शोक करी पाप ऊपार्जी नरगि[1] जाइ। बीजउ ते दुःख। दृष्टांत कहइ छइ। एक तां ऊंचा माला थकउ पडिउ। बीजउ लडइ[2] करीइ माथइं आहणिउ। ए लोकिक दृष्टांत ॥ १११ ॥

[**जि.**] अज्ञानी लोक शोकि करी क्रंदी रोई **सिर** माथउं **उअर** पेटइ पुण कूटीनइं आपणपउं नरगि क्षिपइं घालइं। **तं पि०** ते कुत्सित स्नेहपणाहूइं धिक्कार पडउ ॥ ११० ॥

एक तउ प्रिय वाल्हउ तिहनउं मरणदुःख आगइ छइ अनइं बीजउं आपणपउं नरगि क्षिपइ घालीइ। एक तउ माल हूंतउ **पडण** पडिवउं। अनेरउं वली ऊपरि माथइ लउडानउ घाउ। इणि कारणि शोक न करिवउ, जिम नरगि न पीडाइं ॥ १११ ॥

[**मे.**] स्वजनादिकनइ मरणि शोक आक्रंद करीनइ, शिर कूटीनइ, हीउं ताडीनइ आपणपउं नरगनइ विषइ क्षिपइं। तउ तेहइ कुस्नेहनइं धिग् धिक्कार हुउ ॥ ११० ॥

एक तां प्रियतम वाल्हा तेहना मरणनउं दुक्ख। बीजउं आपणपउं नरकनइ विषइ क्षेपइ। तउ ए वात साची हुई। एक माला हूंतउं पडिवउं। वली लकुटनउ घाउ माथइ वाजइ ॥ १११ ॥

[**सो.**] साचा धर्मना धणी गुरु[3] नइ श्रावकइ दुर्लभ। ए वात कहइ छइ।

[**जि.**] 'स्नेहमूलानि दुःखानि' इसुं स्थापी सांप्रत दुःखमा कालनउं स्वरूप कहइ।

---

१ नरकि. २ लउडइं. ३ गुरुइ.

संपइ दूसमकाले धम्मत्थी सुगुरु सावया[1] दुलहा।
नामगुरु नामसड्ढा सरागदोसा बहू अत्थि ॥ ११२ ॥

[सो.] संपइ० हवडां दुःखमा कालि पांचमइ आरइ वर्त्तइंते[2] निष्केवल धर्मार्थी सुगुरु अनइं सुश्रावक दुर्लभ थिया, जे आपणउं पिरायुं कांई न जोअइं[3]। एकलउ धर्म जि जोइं एहवा अति थोडा। **नामगुरु०** नामिइं करी गुरु। नामिइं करी श्रावक। **सराग०** जेहहूइं[4] आपणा विरूआ[5] ऊपरि राग, बीजा गुणवंतइ ऊपरि द्वेष, **बहू अत्थि** एह्वा घणा[6] छइं ॥ ११२ ॥

[जि.] संप्रति हिवडां दुःषमाकालि धर्मार्थी धर्मना करणहार सुगुरु श्रावक दुर्लभ छइं। तिणि कारणि **सरागदोसा** रागद्वेषसहित हूंता **नामगुरु** नामधारक घणाइ छइं। ते दुःषमा कालनउं प्रमाण ॥ ११२ ॥

[मे.] सांप्रत दुःखमा कालि धर्मार्थी सुगुरु नइ श्रावक दोहिला पांमीइं। पणि नामिं गुरु, नामिं श्रावक रागद्वेषसहित घणाइ दीसइं ॥ ११२ ॥

[सो.] धर्म छइ भाग्याधीन। ए वात कहइ छइ।

[जि.] अथ धन्य अनइ अधन्यनउं स्वरूप कहइ।

कहिअं पि सुद्धधम्मं काहि[7] वि धन्नाण जणइ आणंदं।
मिच्छत्तमोहिआणं[8] होइ रई मिच्छधम्मेसु ॥ ११३ ॥

[सो.] कहिअं पि० केतलाइ धन्य उत्तम जीवहूइं खरउ धर्म कहिउ सांभलिउ हर्ष करइं। धर्म करतां देखी कहिवुं किसिउं ?

---

१ जि. मे. सावगा. २ वर्त्ततइं. ३ जोईउं. ४ 'जेहहूइं' नथी. ५ विरूयाइ. ६ घणाइ. ७ मे. काह. ८ मे. मिच्छित्त°.

मिच्छत्त॰ ये निबिड मिथ्यात्त्वि करी मोह्या वाह्या छइं तेहहूइं साचउ धर्म सांभलिउ दीठउ[1] हर्ष न करइं । तेहहूइं मननी रति मिथ्यात्त्वधर्मइ जि ऊपरि हुइ । ते आपणा आपणा कर्मनउ विशेष । ते अभव्य दूरभव्य तीहनुं कारण[2] ॥ ११३ ॥

[जि.] केईएक धन्यहूइं **सुद्धु** निर्मल धर्म कथितमात्र हूंतउ आणंद **जणइ** ऊपजावइ । अनइं अधन्यहूइं मिथ्यात्त्वइं मोहित हूंता मिथ्यात्त्वधर्मनइ विषइ रति संतोष हुइ ॥ ११३ ॥

[मे.] कहिउंइ हूंतउ सूधउ धर्म केतलाइं भाग्यवंतनइं आणंद ऊपजावइ अनइ मिथ्यात्त्वमोहित जीवनइं मिथ्यात्त्वधर्मनइ विषइ रति हुइ ॥ ११३ ॥

[सो.] केतलाइ जीव धर्मनी बुद्धिइं पाप करइं छइं । ते आश्री कहइ छइ ।

[जि.] अथ जिनधर्मीनउं स्वरूप बिहुं गाथाइं करी कहइ ।

इक्कं पि महादुक्खं जिणसमयविऊण सुद्धहिययाणं ।
जं मूढा पावाइं धम्मं भणिऊण सेवंति ॥ ११४ ॥

[सो.] इक्कं पि॰ जिनवचनना जाण निर्मल मनना धणी तेहनइ मनि एह जि एक महादुःख, **जं मूढा॰** जं मूढ मूर्ख बापडा मिथ्यात्त्वी धर्म भणी[3] धर्मनी बुद्धिइं पाप सेवइं । यागादिक करइं । पापइ पुण्य भणी मानइं । एव्हउं असमंजस देखी जिनधर्मना जाणनइं[4] मनि असमाधि ऊपजइं ॥ ११४ ॥

[जि] निर्मलहृदय अनइ जिनसिद्धांतना जाण तेहांहूइं एकू ज मोटउं **दुक्खं** जे **मूढा** मिथ्यात्त्वी धर्म भणी धर्मबुद्धिइं पापहिंसादिक

---

१ दीठउइ. २ करण. ३ 'धर्म भणी' नथी. ४ जाणइनइ.

सेवइं । एतलउं जि एकु दयालूपणइं दुःख । बीजउं लगारई दुःख नही । जितेंद्रपणातउ ॥ ११४ ॥

[मे.] जिनसमयना वेत्ता सूधा हीयाना धणीनइं ए मोटउं दुःख । ए किसिउं ? जे मूर्ख लोक पापनइ धर्म करीनइ सेवइं । मुखि कहइ 'अम्हे धर्म करउं छउं' अनइ करइं पाप ॥ ११४ ॥

[सो.] सम्यक्त्वना पालण्हार थोडाइ जि हुइं । ए वात कहइ छइ ।

थोवा महाणुभावा जे जिणवयणे रमंति संविग्गा ।
तत्तो भवभयभीया सम्मं सत्तीइ पालंति ॥ ११५ ॥

[सो.] थोवा० ते महानुभाव गुरुया भाग्यवंत थोडा, जे जिनवचननइं[1] विषइ संवेग वैराग्यवंता हूंता रमइं । रात्रिदिवस[2] श्रीसिद्धांतनी आस्था मनि आणइं । **तत्तो०** तेहइ पालइ जे संसार-माहि पडिवानइ भयं[3] बीहतां हुंता सम्यग् साचउं जिनवचन आपणी शक्तिनइं मानिइं खरूं क्रियां करी पालइं । एह्वा ते अति थोडा ॥ ११५ ॥

[जि.] जे जिनधर्मी थोडा महानुभाव गरिष्ट हूंता श्रीजिनवचन-नइ विषइ संविग्न सावधान थिका रमइं, स्नेह करइं । तिणि कारणि जिनवचनकारक पुरुष संसारना भय हूंता बीहता सक्तिइं करी सम्यक्त्व पालइं ॥ ११५ ॥

[मे.] ते महानुभाव थोडिला, जे जिननां वचन तेहनइ विषइ संवेगी थका रमइं । तिवार पछा ते भव संसारना भय थका बीहता सम्यक्त्व यथाशक्तिं करी पालइं ॥ ११५ ॥

---

१ जिनवचन श्रीसर्वज्ञना वचननइ. २ रात्रि दीस. ३ भई.

[सो.] सम्यक्त्व पाषइ श्रीधर्म खरउ न हुइ । ए वात कहइ छइ ।

सव्वंगं[1] पि हु सगडं जह न चलइ इक्कबडयलारहियं[2] ।
तह धम्मफडाडोवं न चलइ[3] सम्मत्तपरिहीणं ॥ ११६ ॥

[सो.] **सव्वं०** जिम **सगड** गाडउं धुरी धूंसर समइल प्रमुख सर्व आंगे[4] करी सहित हुइ, पुण एक बडइल न हुइं तु न चालइं । **तह धम्म०** तिम धर्मनउ फटाटोप[5] मंडाण घणूंइ करइ, तप नियम क्रिया दान सील कष्टानुष्टानादिक करइं । पुण सम्यक्त्व नथी तउ कांई चालइ नही । अल्प फल थाइ । अज्ञान कष्टइ जि[6] थाइं । जिम **तामलि** रिषिनइं घणउ तप कष्ट कीधउं, अल्प फल हूउं ।

सट्ठिं वाससहस्सा तिसत्तखुत्तो दएण धोएणं ।
अणुचिन्नं तामलिणा अन्नाणतवुत्ति अप्पफलो ॥ (उपदेशमाला, गा. ८१)

[मे.] सघले अंगे संयुक्त हूंतउ शकट एक बडहिल रहित न चालइ । तिम धर्मनउ स्फटाटोप एक सम्यक्त्व रहित फलदायन न हुइ ॥ ११६ ॥

[सो.] जे जीव सिद्धांत न सांभलइं, हित-अहित न जाणइं ते आश्री कहइ छइ ।

[जि.] अथ तत्त्वज्ञ पुरुष मूर्ष उपरि रीस न धरइं । ति वात कहइ ।

न मुणंति धम्मतत्तं सत्थं परमत्थगुणहिअं[7] अहिअं ।
बालाण ताण उवरिं कह रोसो मुणिअतत्ताणं[8] ॥ ११७ ॥

---

१ आ गाथा तथा तेनो बालावबोध जि.मां नथी. २ मे. °बडहिला°. ३ मे. फलइ. ४ अंगे. ५ स्फटाटोप. ६ 'जि थाइं' नथी. ७ मे. परमप्प°. ८ जि. मुणिधम्माणं. मे. मुणिअधम्माणं.

[सो.] **न मुणंति०** जेह्माहि धर्मनउं तत्त्व कहिउं छइ तेन्हउं सिद्धांतशास्त्र न जाणइं अनइ जे परमार्थगुणिइं हित[1] अनइ अहित वस्तु, रूडउं-विरूउं, पुण्यपाप न जाणइं, **बालाण०** ते बापडा मूर्ख अजाणपणइं पाप करतां उपरि **मुणिअ०** ज्ञाततत्त्वहूइं रोष किम हुइ ? 'ए बापडा अजाण धर्म न जाणइं, तु सिउं जाणइं ?' इम तेहं ऊपरि करुणाइ जि आवइ । इम कहइ, 'सुचा ते जिअलोए जिणवयणं जे नरा न याणंति' इत्यादि ॥ ११७ ॥

[जि.] जे मूर्ष धर्मतत्त्व न जाणइं अनइं वली परमार्थगुणि करी हितकारीउं **सत्थ** शास्त्र, **अहिअं** अहितकारिउं न जाणइं । **ताण बालाणं** तेहां बालकां ऊपरि मूर्ष ऊपरि **मुणिअतत्ताणं** ज्ञाततत्त्व-तत्त्वना जाणहार पुरुषहूइं किसउ रोस ? अपि तु कोई रोस नही । बाल शब्दइं मूर्षइ कहाइ अनइं आंचलि धावणउ बालकई कहीइ । तेह भणी जिम बालक तत्त्वातत्त्वविचार न जाणइं, हित-अहित न जाणइं । तेह बालकां ऊपरि डाहीयार लोक रीस न करइं ॥ ११७ ॥

[मे.] जे न जाणइं धर्मनउं रहस्य अनइ शास्त्र, जे पर-आपनइं हित नइ अहित, पुण्य नइ पाप तेहनइ अधिक गुणकारक न जाणइं ते बाल मूर्ख ऊपरि धर्मना जाणनइं रोस किम करिवउ आवइ ? ॥ ११७ ॥

[सो.] जे आपणउं हित न करइ ते पर रहइं किम हितूआ हुसिइं ? ए वात कहइ छइ ।

[जि.] मूर्ष दयावंत न हुइं । ए वात स्थापइं ।

---

१ 'हित...न जाणइ' ए पाठने स्थाने बीजी प्रतमां नीचे प्रमाणे छे—'हित अनइ अहित न जाणइं । अथवा **परमप्प** इसिइ पाठि आपणपा अनइ परइहूइं गुणकारिउं हितु वस्तु अनइ अहित वस्तु, रूडउं-विरूउं पुण्यपाप न जाणइं.'

अप्पा वि जाण वइरी तेसिं कह होइ परजिए करुणा।
चोराण बंदियाण[1] य दिट्ठंतेणं मुणेअव्वं ॥ ११८ ॥

[सो.] अप्पा० जेहनइ आपणउ आत्माइ वइरी। आपणा जीवइनूं हित नथी करतां तेव्हा पाप करइं[2] छइं। जेव्हा[3] आपणउ आत्माइ गाढउ संसारमाहि रुलइ। तेहहूइं अनीरा[4] जीवनइ विषइ करुणा किम हुइ? **चोराण०** जिम चोर अथवा जे माणस बंदि धरइं तेहनइ दृष्टांतिइं जाणिवुं। जिम ते चोरी करतां, बंदि धरतां, परहूइं अनर्थ करतां आपणउं न चींतवइं। 'अम्हे धरीसिउं, मारीसिउं, अनर्थ प्रामिस्यउं' ए वात कांई विमासइं नहीं। तिम तेहइ पाप करता चीतवइं नहीं ॥ ११८ ॥

[जि.] जाण० जेहां पुरुषहूइं आपणपउ आत्मा वइरी, आपणा जीवइहूइं हित न करइं **तेसिं** तेहां पुरुषहहूइं **परजिए** पारका जीव ऊपरि किमु करुणा दया हुइ? अपि तु न हुइं। ए वात **चोराण** चोरनइ दृष्टांति, **बंदियाण य** बंदी बंदोर बांदि झाल्या लोक ते बिहुने दृष्टांति जाणिवी। जिम चोर आपणा जीवइ ऊपरि दया अणकरतउ हूंतउ पारका जीव ऊपरि दया न करइं। जइ चोर आपणाईं जीवहूइं विरूउं चींतवी लोकइहूइं परद्रव्य लेता मारइ। अनइं जे जे आपणा जीवहूइं हित न करइं ते ते पारका जीव ऊपरि दयाईं न करइं। जिम चोर। अनइं जे जे पारका जीव ऊपरि दया करइं ते ते आपणाइ जीवहूइं हित करइं। जिम सुसाधु लोक। इसुं प्रमाणिकनउं वचनईं जाणिनउं ॥ ११८ ॥

[मे.] जेहनइ आपणउ आत्मा वयरी, आपणा आत्मा ऊपरि दया न ऊपजइं तेहनइ अनेरा जीव ऊपरि करुणा दया किम हुइ?

१ बंदियाणइ. २ करय. ३ जेह्वे. ४ अनेरा.

इहां चोर नइ बंदीना दृष्टांत जाणिवा। जिम चोरु चोरीइं पइसइ अनइ मरिवाइतउ बीहइ नहीं। **बंदियाण** बंदि झालिवा पइसइ तिम जाणिवउं ॥ ११८ ॥

[सो.] जीव उत्तम, मध्यम, अधम त्रिहु प्रकारे हुइं। ए वात त्रिहु गाहे कहइ छइ।

[जि.] अथ सुश्रावकि दयावंति मोटा पापव्यापार न करिवा। इसुं कहइ।

जे रज्जधणाईणं कारणभूआ हवंति वावारा।
ते वि हु अइपावजुआ धन्ना छड्डुंति भवभीया ॥ ११९ ॥

[सो.] जे धन्य उत्तम छइं ते जेहे व्यापारे राज्य लाभइ, धन धान्य समृद्धि मान महत्त्व लाभइ **ते वि हु०** तेहइ व्यापार अति पापमय[1] जाणी छांडइ। संसारना दुःखभए बीहते दीक्षा लेई आपणां काज साधइं ॥ ११९ ॥

[जि.] जे व्यापार राज्यधनादिकहूइं कारणभूत हुइं, जेह व्यापार हूंता राज्य धन धान्य सुवर्ण रूप्य रत्नादिक ऊपार्जीइं **ते वि** तेहई व्यापार **हु** निश्चइं अतिपापसंयुक्त हुइं। तउ धन्य कृतपुण्य संसार हूंता बीहता ते व्यापार छांडइ ॥ ११९ ॥

[मे.] जे राज्यधनादिक ऊपार्जिवानइ कारणभूत व्यापार हुइ तेहइ अतिपापयुक्त व्यापार भव संसार हूंता बीहता छांडइं। तेही धन्य जाणिवा ॥ ११९ ॥

---

१ पापमइ.

[जि.] उत्कृष्ट पुरुषनी वात कही मध्यमनी वात कहइ ।

बीया[1] य सत्तरहिआ धणसयणाईहिं मोहिआ लुद्धा[2] ।
सेवंति पावकम्मं[3] वावारे उयरभरणट्ठे[4] ॥ १२० ॥

[सो.] बीया० बीजा जे मध्यम पुरुष घरबार छांडी दीक्षा लेवानइं साहसि करी रहित धन लक्ष्मी अनइ पुत्रकलत्रादिक स्वजन घरादिकनइं मोहिइं मोह्या लोभि वाह्या पेट भरवानइं कारणि पापव्यापार[5] व्यवसाय वाणिज्य क्षेत्रादिकनउ व्यापार करइं, कांई कांई गृहस्थधर्म आराधता हूंता । ए बीजा मध्यम पुरुष कहीइं ॥ १२० ॥

[जि.] बीजा मध्यम पुरुष सत्त्वरहित **धण** द्रव्य अनइ स्वजन पुत्र तेहे मोह्या **लुद्धा** लोभिया हूंता व्यापारमाहे उदरभरणार्थि पेट भरिवा भणी **पावकम्मं** पापकर्म सेवइं समाचरइं । ते मध्यम पुरुष जाणिवा ॥ १२० ॥

[मे.] बीजाइ वली सत्त्वि करी रहित धनस्वजनादिके मोहित हूंता लोभियां हूंता पापकर्म सेवइं । स्या भणी ? उदर भरिवानउ व्यापार तेहनइ अर्थि ॥ १२० ॥

[जि.] अथ अधम पुरुष कहइ ।

तईया[6] अहमाण अहमा कारणरहिआ अनाणगव्वेणं ।
जे जंपंति उसुत्तं तेसिं धिद्धी त्थु पंडित्तं[7] ॥ १२१ ॥

[सो.] तईया० त्रीजा ए[8] अधम पाहिं अधम काजकाम पाषइ आपणइं अजाणवइं गर्वि पूरिया जे **जंपंति०** उत्सूत्र बोलइ,

---

१ बिइआ, मे. बीयाइ. २ मे. लद्धा. ३ मे. पावकम्मे. ४ °भरणट्ठा. ५ पापव्यापार नइ. ६ जि. तईयाहमाण अहमा, मे. तइया अहमाणहमा. ७ मे. पंडित्ते. ८ एक.

सिद्धांत विरुद्ध भाषइं । **तेसिं०** तेह्ना पंडितपणाहूइं[1] धिग् धिग् हउ । ते आपणइं मनि डाहा थई बोलइं छइं, पुण उत्सूत्र भाषवइं आगलि आपणइ[2] घणउ संसारमाहि रुलिसिइं ॥ १२१ ॥

[जि.] तईया त्रीजा अधमाधम **कारणरहिआ** कारण विणु काज पाखइ **अनाणगव्वेणं** अज्ञानगर्व करी, कूडइ अहंकारि करी जे पुरुष उत्सूत्र सिद्धांत विरुद्ध वचन **जंपंति** बोलइं **तेसिं** तेहां अधमाधम पुरुष तणा पांडित्यहूइं धिगस्तु धिक्कार हु । ते पारकइ पीटणइ आपणा गाल तोडइं ॥ १२१ ॥

[मे.] हिव त्रीजा अधमहइ पाहति अधम कारण पाषइ अज्ञान-गर्वि गर्वित हूंता जे उत्सूत्र बोलइं तेह्ना पंडितपणानइं धिग् धिक्कार पडउ ॥ १२१ ॥

[सो.] वली[3] एह जि वात ऊपरि **मरीचि**नउं दृष्टांत कहइ छइ ।

[जि.] अथ ते अधमाधम उत्सूत्र भाषकहूइं सरीषउ दृष्टांत देखालइ ।

जं वीरजिणस्स जीओ मरिई[4] उस्सुत्तलेसदेसणओ ।
सागरकोडाकोडिं हिंडइ अइभीमभवगहणे[5] ॥ १२२ ॥

[सो.] जं वीर० श्री**महावीर**नु जीव **मरीचि**नइ भवि लगारएक उत्सूत्र **कपिल** क्षत्रियहूइं, 'ए त्रिदंडियापणाइ[6] माहि कांई धर्म छइ कि नथी ?' इम पूछतां '**काविला !** इत्थंपि इहयं पि' इसिउं उत्सूत्रमात्र उपदिसीनइ कोडाकोडि सागरोपम जं संसाररूपीआ अति

---

१ पंडतपणाहूइं. २ आपणपइ. ३ 'वली' नथी. ४ मिरिई. जि. मिरिईभवे, मे. मिरिई. ५ °भवरन्ने. ६ त्रिदंडीयाइंपणा.

बीहामणा अरण्यमाहि[1] भमइं। असंख्यातउ काल नवनवे भवांतरे रुलइ। तेह भणी उत्सूत्रप्ररूपणा विरूई। यत उक्तं श्री**वीरस्तुतौ**—

अहह सयलन्नपावेहिं वितहपन्नवणमणुमवि दुरंतं।
जं **मरिइ**भवअज्जिअदुक्कयअवसेसलेसवसा॥
सुरथुयगुणो वि तित्थंकरो वि तिहुअणअतुलमल्लो वि।
गोवाईहि वि बहुसो कयत्थिओ तिजयपहु! तं सि॥
थीगोबंभणभूणंतगा वि केवि इह **दढपहाराई**।
बहुपावा वि पसिद्धा सिद्धा किर तम्मि चेव भवे॥ १२२॥

[जि.] **जं** जिणि कारणि श्री**महावीर**देवनउ जीव **मरीचि**-नइ भवि, श्री**आदिनाथ**नउ पोत्रउ, श्री**भरत**चक्रवर्त्तिनउ बेटउ **मरीचि उस्सुत्तलेसदेसणओ** 'अम्हई कन्हइं कांई थोडउ धर्म छइ' इसुं उत्सूत्रनउ लवलेसना कहिवातउ **अइभीमभवगहणे** अतिरौद्र संसाररूपिउं गहन वन तेह माहि सागरोपमनी कोडाकोडि **हिंडइ** भमइ। ते उत्सूत्रनउं प्रमाण॥ १२२॥

[मे.] जे श्री**महावीर**देव तणउ जीव **मिरीचि** नामिइं उत्सूत्रनउ लेस एक तेहनी देसनाइं करी एक कोडाकोडि सागरोपम भीम रौद्र संसाररूप वन गहनमाहि हींडिउ भमिउ॥ १२२॥

[जि.] तेह जि उत्सूत्रभाषक भारेकर्मउ। इसुं बिहुं गाथाइं प्रकासइ।

ता जे[2] इमं पि वयणं वारंवारं सुणित्तु[3] समयम्मि।
दोसेण अवगणित्ता उस्सुत्तपयाइं सेवंति॥ १२३॥

१ °माहाइ. २ जइ, जि. मे. जइ. ३ मुणित्तु, जि. मुणित्त.

ताण कहं जिणधम्मो[1] कह नाणं कह दुहाण वेरग्गं।
कूडाभिमाणपंडियनडिया बुड्डंति नरयम्मि ॥ १२४ ॥

[**सो.**] **ता०** तु जइ एव्हं[2] **मरीचिनउं** उत्सूत्र वचननउं स्वरूप वली वली सांभली **दोसेण०** द्वेष लगइ ते अवगणीनइ[3] जे उत्सूत्रपद सेवइ, श्रीसर्वज्ञनी आज्ञा विरुद्ध बोल कहइं थापइं, जे अभिमानना वाह्या एव्हं उत्सूत्र बोलइं तेहहूइं जिनधर्म किहां[4] छइ? अनइ[5] दुःखनउ वैराग्य किहां छइ? जेह भणी संसारनउ दुःख आंगमीनइ उत्सूत्र प्ररूपइं छइं। **कुडाभिमाण०** कूडा आपणा पंडितपणाना अभिमान तीणं करी नच्या वाह्या नरगइ जि माहि बूडइं छइं ॥ १२३-२४ ॥

[**जि.**] **ता** तउ पच्छइ **जइ** किमइ **समयम्मि** सिद्धांतमाहे **इमं पि वयणं** उत्सूत्रवर्जन पूर्वोक्त वचन वार वार सुणी सांभलीनइं पछइ कूडइ दोषि करी सिद्धांतनउं वचन अवगणीनइं ते अधम उत्सूत्रपद सेवइं। तेहां उत्सूत्रपदसेवणहारहूइं **कहं** किमु जिनधर्म हुइ? अपि तु न हुइ। अनइं तेहांहूइं **नाणं** तत्त्वज्ञान किमु हुइ? वली दुःखनउं वैराग्य किमु हुइ? अनइं ते अधम कूडउ अभिमान अहंकार तिणि करी पंडित तेहे नटित नचाव्या हूंता नरकमाहे बूडइं। कूडी पंडिताई करी नरगि पडइं ॥ १२३-२४ ॥

[**मे.**] तउ **जइ** किमइ **मरीचिनउं** उत्सूत्रवचननउं स्वरूप वार वार सांभलीनइ सिद्धांतमाहे कहिउं हूंतउं ते वचन द्वेष लगी अवहेलीनइ उत्सूत्रनां पद स्थानक सेवइं, सिद्धांत विरुद्ध बोलइं, तीयांनइ जिनधर्म किहां, ज्ञान किहां? तेहनइ दुक्खनउ वैराग्य किहां?

१ मे. जिणधम्मं. २ एहुं. ३ अवगुणीनइ. ४ किहांइ. ५ बीजी प्रतमां आटलुं वधारे छे—'अनइ ज्ञाननउं जाणिवउं किहां छइं.'

जेह भणी संसारना दुक्ख आंगमी कूडइ अभिमानि, कूडी पंडिताईइं नव्या हूंता नरग माहि बूडइं ॥ १२३-२४ ॥

[सो.] कर्मबहुल जीवहूइं हितोपदेश दीधउ कांई काज नावइं । ए वात कहइ छइ ।

[जि.] एवहा निकाचितकर्मी जीवहूइं, उपदेसनी अयोग्यता कहइ ।

मा मा जंपह बहुअं जे बद्धा चिक्कणेहिं[1] कम्मेहिं ।
सव्वेसिं तेसिं जायइ हिओवएसो महादोसो ॥ १२५ ॥

[सो.] **मा मा०** घणउं कांई म बोलिस्यउ । बीजां कांई कारण म कहिस्यउ । जं केतलाइं जीवहूइं हितोपदेश कांई न लागइं । जे जीव चीकणे कर्मे करी बाधा छइ गाढा कर्मबहुल छइ, तेहं सविहुं जीवहिंइं[2] हितोपदेश दीधउइ महादोषहेतुइ जि थाइ । कांई गुणि न आवइ । यत उक्तं—

अप्रशान्तमतौ शास्त्रसद्भावप्रतिपादनम् ।
दोषायाभिनवोदीर्णे शमनीयमिव ज्वरे ॥ १२५ ॥

[जि.] अहो उपदेशना देणहारो पुरुषो ! **बहुअं** घणउं मति बोलउ । जे जीव **चिक्कण** चीकणां अवश्यभोक्तव्य कर्म तेहे बाधा व्याप्या हुइं ते सघलाई जीवहूइं हितोपदेस धर्मनउं कहिवउं महादोषरूप, मुखहूइं थूक सोस जि भणी हुइ । कांई लागइं नही । ति निकाचित कर्मनउं प्रमाण । जीवनां चतुर्विध कर्म छइं । एक स्पृष्ट कर्म । बीजउं बद्ध कर्म । त्रीजउं निधत्त कर्म । चउथउं निकाचित । जिम छोहि दीधी भीतिइं सांमुही चूनानी डली मूकी लांखीइ । अनइं त्या चूनानी सूकी

---

१ चिक्कणिहिं. २ जीवहूइं.

डली भीतिइं लागी पाछी पडइ । भीतिमाहि कांई न रहइं । तिम स्पृष्ट कर्मनउं स्वरूप जाणिवउं । लगारएक लागइ ते तत्काल विलइ जाइ ते स्पृष्ट कर्म । वली जिम सूकी छोहपंकित भीति । तेह ऊपरि नीली चूनानी डली लांखीइ । पछइ कोईएक सूकी पूठइं भीति हूंती ऊखेली लांखइ । भीतिइं सूकी भणी लगारई न रहइं । तिम बद्धकर्म जीवहूइं कर्म लागइ, केतलीएक वेला रहइ। पछडइ उपक्रमि करी फीटइ। ते बद्धकर्म। वली जिम नीली भीतिनी छोह माहे सूकउ चूनानउ खंड घालीयइ । पछइ कालांतरि दोहिलउ नीकलइ । तिम निधत्त कर्म । जीवहूइं कर्म लागइ । जीव भोगवइ । कालांतरि गाढइ उपक्रमि जे कर्म फीटइ ते कर्म निधत्त नाम जाणिवउं । अनइ जिम नीली छोहि सउं भीति चिणी हुइ अनइ भीतिनी छोहि सूकी पूठिइं वज्र एकपणउं हुइ तिम निकाचित कर्म । जीव नइं कर्म एक हूयां । जूजूयां न थाइं । जां जीवइ जीव तां ते कर्म भोगवइ । गाढ अनंते उपक्रमे कीधे न जाइं । संपूर्ण कर्म भोगवीइ ते निकाचित कर्म । तथा चोक्तं—

कृतकर्मक्षयो नास्ति कल्पकोटिशतैरपि ।
अवश्यमेव हि भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥

इत्यादि कर्मस्वरूप **कर्मग्रंथ**शास्त्रतउ जाणिवउं । एतलइं जे चीकणे कर्मे लीप्या तेहां जीवांहूइं उपदेश न लागइं । यदुक्तं श्री**उपदेश-मालायां**—

उवएससहस्सेहि वि बोहिज्जंतो न बुज्झई कोई ।
जह **बंभदत्त**राया **उदायि**निवमारओ चेव ॥ १२५ ॥ (गा. ३१)

[मे.] मा मा० घणउं घणउं घणउं म बोलउ । जे जीव चीकणे कर्मे बांध्या छइं तीयां सघलांनइ विषइ हितोपदेश महादोष समान हुइं ॥ १२५ ॥

[सो.] वली एह जि वात कहइ छइ ।

[जि.] एह जि वात प्रकारांतरि करी वली कहइ ।

हिअयम्मि जे कुसुद्धा ते किं बुज्झंति[1] धम्मवयणेहिं ।
ता ताण कए गुणिणो निरत्थयं दमहि[2] अप्पाणं ॥ १२६ ॥

[सो.] हिअयम्मि० जे जीव हिअइ कुसूधा अधर्म्म मायाविया हुइं ते धर्मने वचने किम बूझइं ? घणाइ धर्मोपदेश दिउ, पणि ते न[3] बूझइं । **ता०** तेह भणी तेहहूइ बूझववानइ कारणि जे[4] खप करइ ते आपणपउं निरर्थक दामइं[5], क्लेश करइं । तेह[6] अयोग्यहूइ खप कीधी निरर्थक थाइं । कांई गुण न करइ । यत उक्तं—

ये वैनेया विनयनिपुणैस्ते क्रियन्ते विनीता
नावैनेया विनयनिपुणैः शक्यते संविनेतुम् ।
दाहादिभ्यः समलममलं स्यात्सुवर्णं सुवर्णं
नायस्पिण्डो भवति कनकं छेददाहक्रमेण ॥ १२६ ॥

[जि.] जे पुरुष हियामाहे कुसुद्ध दुष्ट हुइं ते किम धर्मने वचने करीं प्रतिबूझइ ? सरलचित्तई ज धर्माक्षरे करी प्रतिबूझइं । **ता** तउ पछइ गुणवंत परोपकारी पुरुष **ताण कए** तेहां दुष्टांने कीधइ निरर्थक आपणपउं दमइं खेदावइं ॥ १२६ ॥

[मे.] जे मनुज हीयामाहि कुसूधा छइं ते धर्मने वचने किम प्रतिबूझइं ? ते ते जीव प्रतिबूझवानइ कारणि गुणवंत निरर्थक आपणपउं दमइं, क्लेश करइं । तिहां क्षप कीधी वृथा थाइ ॥ १२६ ॥

---

१ जि. बुज्झिति. २ दमइ. ३ 'न बूझइं......तेहहूइं' एटलो पाठ बीजी प्रतमांथी पडी गयो छे. ४ जि. ५ दमइ. ६ तेहं.

[सो.] धर्मनी आस्था[1] जीवहूइं पाप फेडइ[2] । ए वात कहइ छइ ।

[जि.] जइ दुष्ट भारेकर्मा जीवने हिययइ जिनधर्मोपदेश न लागइं तउ पछइ किसुं जिनधर्म प्रमाण ? इसी शंका फेडिवा भणी जिनधर्मनउं प्रमाण बोलइ ।

दूरे करणं दूरम्मि साहणं तह पभावणा दूरे ।
जिणधम्मसद्दहणं पि तिक्खदुक्खाइं निट्ठवइ ॥ १२७ ॥

[सो.] **दूरे॰** श्रीजिनधर्मनउं करिवउं आराधिवउं ते दूरि परहउं छइ अनइ जिनधर्मनुं **साहणं** कहिवउं, थापिवउं, अनेरानइ हिअइ आणिवउं तेहइ परहउं छउ । तथा श्रीजिनशासननी प्रभावना लोकमाहि रूडउं भवाडिवउं, बाह्य लोकइ पाहिं वखणाविवुं तेहइ परहउं छउ । तेह एके जीव तीर्थंकरपद्वी गणधरपद्वी केवलज्ञान मोक्ष लगइ ऊपाजेइ । **जिणधम्म॰** बीजउं काई म करिस्यउ । जिनधर्मनउं सद्दहण मात्र करइ, आस्थाइ जि मनि आणइ तेउ **तिक्खदुक्खाइं** तीक्ष्ण गाढां पोतनां पाप नीठवइ क्षपइ, हलूअकर्म्मउ थाइ ॥ १२७ ॥

[जि.] जिनधर्मनउं **करणं** करिवउं दूरि वेगलउं हुउ अनइं जिनधर्मनउं साधन तपश्चरणादि प्रमाणि चडावण पुण दूरि हउ । **तह** तथा जिनधर्मनी प्रभावना द्रव्य वेची जिनशासनि प्रोत्सर्पणा तेहीइ वेगली छइ । श्रीजिनधर्म साचउ रूडउ खरउ । इसुं जिनधर्मनउं श्रद्धानई तीक्ष्ण तीव्र दुक्खहूइं निराकरइ **निट्ठवइ** फेडइ ॥ १२७ ॥

---

१ आस्थाइ. २ आ 'फेडइ' शब्दथी मांडी बाकीनो बालावबोध के १२७ मी गाथा **सो.**नी बीजी प्रतमां नथी. मात्र आ गाथा उपरना बालावबोधना छेल्ला बे शब्दो 'हलूअकर्मउ थाइ' तेमां छे. अर्थात् १२७ मी गाथा अने ते उपरना बालावबोधने स्थाने **सो.**नी बीजी प्रतमां मात्र आटलुं छे—'धर्मनी आस्थाइ जीवहूइं पाप [वच्चेनो बधो पाठ पडी गयो छे] हलूअकर्मउ थाइ.'

[मे.] वीतरागना धर्मनउं करिवउं दूरि रहउ। क्रियानउं साधिवउं दूरि रहउ। तिम शासननी प्रभावना पणि दूरि रहउ। एक जे जिनधर्मनउं सद्दहिवउं ते तीक्ष्ण गाढा पोतना पाप थकी जे दुक्ख तेहनइं नींठवइं ॥ १२७॥

[सो.] धर्म साभलिवाना मनोरथ कहइ छइ।

[जि.] अथ सुश्रावकनी धर्मचिन्ता कहइ।

कइया होहि दिवसो जइया सुगुरूण पायमूलम्मि।
उस्सुत्तलेसविसलवरहिओ[1] निसुणेमि[2] जिणधम्मं ॥१२८॥

[सो.] कइया० ते दिहाडउ मझहूइं कहिइं हुसिइ, जहीइं हुं उत्तम चारित्रिया सुगुरुनइ पदमूलि उत्सूत्रलेश लगारइ उत्सूत्ररूपिउ विषलव विसनउ लेस तीणं करी रहित खरउ श्रीजिनधर्म सांभलिसु? जेह भणी जिनवचननइं सांभलिवइं जीवहूइं मोटउ गुण ऊपजइ। यत उक्तं—

नवि तं करेइ देहो न य सयणा नेव वित्तसंघाओ।
जिणवयणसवणजणिया जं संवेगाइया लोए ॥ १२८॥

[जि.] कइया कदा किवारई **दिवसो** दिहाडउ **होहि** होसिइ, **जइया** यदा जिवारइं सद्गुरुनइ पादमूलि चरणकमलि जिनधर्म निसुणिसु सांभलिसु? किसुउ हूंतउ? उत्सूत्रनउ लेस तेह रूपिउ विषलव तिणि करी रहित हूंतउ। एतलइ ते दिहाडउ किहीइं होसिइ? जिणि दिहाडइ गुरुनइ पदकमलसमीपि जिनधर्म सांभलिसु ते दिन कृतार्थ ॥ १२८॥

---

१ °रिहिउं. २ निसुणेसु, जि. निसुणेमु, मे. निसुणेसु.

[मे.] कहीइं ते दिहाडउ मुझनइं होइसिइ, जहीइं सुगुरु सुद्ध प्ररूपकनइं पादमूलि उत्सूत्रलेसरूप विषलव तिणि करी रहित हूंतउ जिनधर्म सांभलिसु ? ॥ १२८ ॥

[सो.] वली गुरु आश्री[1] कहइ छइ ।

[जि.] अथ गुरुचिन्ता आश्री कहइ छइ ।

दिट्ठा वि केवि गुरुणो हिअए न रमंति मुणिअतत्ताणं ।
केवि पुण अदिट्ठ चिय रमंति जिणवल्लहो जेम ॥ १२९ ॥

[सो.] **दिट्ठा०** केतलाइ गुरु साक्षात् दीठाइ हुंता तत्त्वना जाणनइ मनि रमइ नही । हीयइ हर्ष न करइ । **केवि०** अनइ केतलाइ पुण गुरु अणदीठाइ हुंता हीइ रमइं वसइं[2] । तेहना[3] गुण[4] सांभलीनइ हीइ हर्ष ऊपजइ । जिम श्री**जिनवल्लभसूरि** । ते **जिनवल्लभसूरि नेमिचंद्र भंडारी**था पहिला हूआ भणी अदृष्टइ हूंता **नेमिचंद्र भंडारी**नइ मनि तेहनां कीधां **पिण्डविशुद्धि** आदिक प्रकरण देषतां वस्या । इसिउ भाव ॥ १२८ ॥

[जि.] **मुणिअतत्ताणं** ज्ञाततत्त्वांने हियइ केईएक गुरु दीठाई हूंता न रमइं, न वसइं, न गमइं । अनइ वली केईएक अदीठाई गुरु हीयइ रमइ । किहनी परि ? श्री**जिनवल्लभसूरि**नी परि । जिम श्री**जिनवल्लभसूरि** अणदीठाई हूंता श्री**नेमिचंद्र भंडारी** प्रमुख ज्ञाततत्त्व श्रावकने हीए सुगुरुपणइ करी वस्या तिम केईएक सुगुरु हीइ अणदीठाई वसइं । एतावता श्री**जिनवल्लभसूरि** पहिलु हूउ । तिणि कारणि श्री**नेमिचंद्र** भंडारीइ न दीठा । पुण तउ हीइ जाणे किरि दीठाई ज छइ । जइ हियामाहे वसइ छइ ।

---

१ आश्रिय. २ 'वसइं' नथी. ३ तेहइना, ४ गुणइ.

दूरस्थोऽपि समीपस्थो यो यस्य हृदि वर्त्तते ।
चन्द्रः कुमुदखण्डानां दूरस्थोऽपि प्रबोधकः ॥ १२९ ॥

[मे.] दीठाइ हूंता केतला गुरु धर्मतत्त्वना जाण छइं तेहनइ हीयइ रमइ नहीं, गमइं नहीं । अनइ केतलाइ गुरु अणदीठाइ हूंता जाणना हीयानइं रुचइं । श्री**जिनवल्लभसूरि**नी परिइं । किम ? श्री**जिनवल्लभसूरि**नां कीधां **पिंडविशुद्धि**प्रमुख प्रकरण देषीनइ जिम **नेमिचंद्र भंडारी**नइ मनि अदृष्टिं हर्ष ऊपनउ ॥ १२९ ॥

[सो.] हव कुगुरु ऊपरि वात कहइ छइ ।

[जि.] अथ धर्मबाह्य पुरुषनी वात कहइ छइ ।

अजया अइपाविट्ठा सुद्धगुरू जिणवरिंदतुल्ल त्ति ।
जो इह एवं मन्नइ सो विमुहो सुद्धधम्मस्स ॥ १३० ॥

[सो.] **अजया०** जे गुरु अजयणावंत छइं, जीवनी विराधना करइ छइ ।

दगपाणं पुप्फफलं अणेसणिज्जं गिहत्थकिच्चाइं ।
अजया पडिसेवंति जइवेसविडंबगा नवरं ॥

(उपदेशमाला, गा. ३४९)

ईणं श्री**उपदेशमाला**नी गाहां जे कहिया छइं, **अइपाविट्ठा** अतिपापिष्ट पाप बोलतां करतांइं जेहहूइं शंका नथी एव्हाइ गुरु शुद्ध-चारित्रिया गुरु भणी मानइं, ' ए अम्हारइ जिनवरेंद्र तीर्थंकर समान । ' **जो इह०** जे अजाणइ इम मानइं ते सूधा धर्महूइं विमुख ऊपराठउ जाणिवउ । तेहहूइं धर्म केहांइं ढूकडउ[1] नथी ॥ १३० ॥

[जि.] **अजया** इन्द्रियजयरहित अनइ पापिष्ट आरंभना करणहार हुइं एवहा अनइ एवहा जाणइ जु ' ए गुरु शुद्धचारित्री

---

१ ढूकडउइ,

हूंता जिनवरेन्द्र तुल्य श्रीजिनवरेन्द्र सरीषा ' इति । जे श्रावक अथवा जे महात्मा अथवा अनेरउई कोई इह संसारमाहे **एवं** इसुं पूर्वोक्त मानइ ते पुरुष सुद्ध धर्महूइं विमुख ऊपराठउ बाह्य ॥ १३० ॥

[मे.] जयणारहित, अति पापिष्ट, पापमइ वचन बोलतां संकाइं नहीं एवहाइ गुरु सुद्धचारित्रिया कही मानइं । कहइं 'अम्हारइ ए तीर्थंकर समान ।' जे अजाण इम मानइं ते सूधा धर्मनइ सर्वज्ञना वचननइ विषइ विमुख ऊपराठउ जाणिवउ ॥ १३० ॥

[सो.] एह जि वात ऊपरि कहइ छइ ।

[जि.] तेही ज धर्मबाह्य अजाण श्रावकनइ उपदेश दिइ छइ ।

जइ[1] तं वंदसि पुज्जसि वयणं हीलेसि तस्स रागेण ।
ता कह वंदसि पुज्जसि जणवायठिइं[2] पि न मुणेसि ॥१३१॥

[सो.] जइ तं० रे बापडा जीव ! जइ[3] तूं तीर्थंकर देव वांदइ छइ, पूजइ छइ, स्तवइ छइ, तु तूं ते परमेश्वरनउं वचन 'सुसाहुणो गुरुणो पंचिंदिअसंवरणो० पंचमहव्वयजुत्तो[4] ०' इत्यादिक काइं अवगणइ[5] ? दृष्टिरागि[6] वाहिउ तेहतेहवा आपणा गुरुनइ अनुरागि वाहिउ हूंतउ । परमेश्वरि कहिउ छइ । 'एहवा भ्रष्टाचारनु आलावो संवासो वीसंभो संथवो पसंगो य० एतलां वानां न करिवां ' इसिउं परमेश्वरनुं वचन[7] जइ हीलइ छइ, अवगणइ छइ, मानतु नथी **ता कह०** तू परमेश्वरहूइं वांदइ कांइ, पूजइं काइं ? **जणवाय** लोक-व्यवहारइनी स्थिति न जाणइं छइं ॥ १३१ ॥

---

१ जि. जा, मे. जो. २ जि. मे. जिणवायठियं पि. ३ जउ. ४ पंचमहुव्वय°. ५ अवगुणइ. ६ दृष्टिइरागि. ७ 'वचन' नथी.

[जि.] अहो श्रावक अजाण ! **जइ** किमइ तूं जिनहूइं वांदइ नमस्करि घरि पूजइं अनइं वली मिथ्यात्वीनि रागिइं करी **तस्स** तेह जिननउं वचन अवहेलिसि अवगणिसि न मानइं **ता** तउ अहो श्रावक मुग्ध ! तउ तूं जिनहूइं कांइं वांदइ ? काइं पूजइ ? जिनवाद जिनवचन तेहनी स्थिति आचारई किसुं न जाणइं ? सिद्धांतमाहे इसुं कहिउं, ‘श्रावकि जिनवचन मानिवउं, अवहेलिवउं नही।’ इसुं जिनवचनई न जाणइं तूं ॥ १३१ ॥

[मे.] जइ तउं देवनइं वांदइ पूजइ अनइ वली तेहइ जि तीर्थंकरना वचननइं हीलइ राग लगी तउ तउं तेह परमेश्वरनइं कांइ वांदइ, कांइ पूजइ ? किसउं लोकव्यवहारनी स्थिति न जाणइं ? ॥१३१॥

[जि.] सिद्धांतरीतिइं अजाण श्रावकहूइं उपदेश देई वली लोकरीतिइं उपदिसइ ।

लोए वि इमं भणिअं[1] जो आराहिज्ज[2] सो न कोविज्जा[3] ।
मन्निज्ज तस्स वयणं जइ इच्छसि इच्छिअं[4] काउं ॥१३२॥

[सो.] **लोए०** लोकइमाहि इसिउं कहीइ । जे आराधीइ ते कोपविवु नही, अवगणिवउ नही । तेह भणी **मन्निज्ज०** तेहनुं वचन मानिवउं,[5] जउ तेहना मननउं गमतुं करिवा वांछइ । जउ तेहनूं वचन आराधिवउं, तु ते मानिउ पूजिउ । जउ तेहनुं वचन न मानीइं तउ बाह्य पूजिइ कांई न तूसइ । सामहु[6] कूपइ । लोकइ ए वात कहइ ॥ १३२ ॥

---

१ जि. मुणिउं, मे. सुणियं. २ आराहिज्जइ. ३ कुपिज्जा. ४ इच्छिउं. ५ ‘मानिवउं...तेहनुं वचन न’ एटलो पाठ सो.नी बीजी प्रतमांथी पडी गयो छे. ६ सासुहु.

[जि.] अहो भोला श्रावक ! लोकइमाहे इसुं न सांभलिउं— **जो आराहिज्ज सो न कोविज्जा ?** जे आराधीइ ते न कोपवीइ । लोकई इसुं कहइ । तिणि कारणि **मन्निज्ज तस्स वयणं** तेह आराध्यनउं वचन मानीइ मानिवउं, जइ किमइ वांछित करिवा लहिवा वांछइ ॥ १३३ ॥

[मे.] लोकमाहि इसउं सांभलीइ । जे आराधीयइ ते विराधीयइ नहीं, कोपवियइ नही । केवलउं तेहनउं वचन मानिवउं । जउ किमइ आत्मानइं ईप्सित वांछित करिवा वांछइ ॥ १३३ ॥

[सो.] वली सम्यक्त्वनी[1] दृढाई ऊपरि कहइ छइ ।

[जि.] अथ सम्यक्त्वीनी सम्यक्त्वनिश्चलता बोलइ ।

दूसमदंडे[2] लोए सुदुक्खसिट्ठम्मि[3] दुट्ठउदयम्मि ।
धन्नाण[4] जाण न चलइ सम्मत्तं ताण पणमामि ॥१३३॥

[सो.] दूसम० ईणइं दुःखमाकालि पांचमा आरारूपिइ दंडि पडीइ हुंतइ **सुदुक्ख०** शिष्ट उत्तम धर्मवंत गाढा दुःखिया थिया[5] । **दुट्ठ०** दुष्ट पापी अधमी चाडादिक तेह रहइ[6] उदय मान महत्त्व लक्ष्मी हुई । एहवइ विरूअइ ऊपराठइ कालि । अथवा **सुदुक्ख-सिद्धम्मि दुक्खउदयम्मि** इसिइं पाठि सु अतिशयइं दुःखिइ पूर्वभव ऊपार्जीइं सीधउं नीपनउं जे दुःखनउ उदय तीणंइ छतइ जे धन्य भाग्यवंतनुं सम्यक्त्व चलइ नही, धर्म ऊपरि लगारइ अभावडि न थाइ, धर्मतु मन डोलइ नहीं, ए[7] तेहवा उत्तम रहइं पणमउं नमस्करउं ॥ १३३ ॥

---

१ सम्यक्त्वदृढाइ. २ जि. दूसमदंदे, मे. दूसमदंडिय. ३ जि. मे. सदुःख°. ४ जि. धम्माउ. ५ थाय. ६ °रइं. ७ ते.

[**जि.**] दूसमि दुःखमाकालिइ **दंडे** दंडिइ लोकि हूंतइ। वली स्वदुःखसिद्ध आपणा दुःखइं नीपनउ दुःखनउ उदय तिणि हूंतइ। एतलइ एकतउ दुषमाकालि लोक दंडिउ। वली दुःखइ ऊपरि दुःख एहे बिहुं हूंते जेहां पुरुषांनउं धर्म हूंतउ सम्यक्त्व न चालइं तेहां भाग्यवंता पुरुषांनउं हउं **नेमिचंद्र भंडारी** सम्यक्त्व प्रणमउं नमस्करउं ॥ १३३ ॥

[**मे.**] ईणइं दुक्खमाकालि लोक दंडिइ हूंतइ शिष्ट उत्तम लोके गाढे दुक्खीए हूंते अनइ दुष्टनइ उदइ हूइ हूंतइ। एवहंइ छतइ धन्य ते जेहनां चित्त हूंतउं सम्यक्त्व न चालइं तेहनइं हउं प्रणाम करउं ॥ १३३ ॥

[**सो.**] वली गुरु आश्री वात कहइ छइ।

[**जि.**] अथ गुरुपरीक्षारूप कहइ।

निअमइअणुसारेणं ववहारनएण समयसुद्धीए[1]।
कालखित्ताणुमाणेण परिक्खिओ जाणिओ सुगुरू ॥१३४॥

[**सो.**] कवि कहइ छइ। आपणी बुद्धिनइ अनुसारि, व्यवहारनयइं करी, सिद्धांतना वचननइ अनुसारि, कालक्षेत्रनइ अनुमानि, कालक्षेत्र संघयणादि जिस्यां छइं तेहनइं मानिइं चारित्र क्रियानी सर्व शक्ति[2] खप करइ छइ। तेहनइं अनुमानिइं परीषी गुरु लीधउ अनइ मानिउ छइ ॥ १३४ ॥

[**जि.**] निजमतिनइ अनुसारि करी आपणाइ बुद्धिप्रागल्भ्यनइ प्रमाणि करी, वली व्यवहार लोकाचार तेहनउ नय न्यायरीति तिणि करी अनइ वली त्रीजउं **समयबुद्धीए** सिद्धांतनी बुद्धिइं करी

---

१ जि. °बुद्धीए. २ शक्तिइं.

सिद्धांतनी रीतिइं करी, वली चउथउं कालनइ अनुमानि करी, वर्षाकाल टाली अनेरइ सीयालइ उन्हालइ कालि विहार करिवानइ अनुमानि करी, वली पांचमइ क्षेत्रनइ अनुमानि करी, जिणइं क्षेत्रिइं बइतालीस दोषविवर्जित शुद्ध आहार लाभइ तिणइं क्षेत्रि विहार करिवानइ देषिवइ करी एह पांच परीक्षाइं करी परीक्षिउ हूंतउ सुगुरु जाणिउ मानिउ ॥ १३४ ॥

[मे.] निज आपणी मतिनइ अनुसारि, व्यवहारनइं ज्ञाइं करी, सिद्धांतना वचननइ अनुसारि, द्रव्य क्षेत्र काल भावनइ अनुमानि परीषीनइ सुगुरु जाणिवउ ॥ १३४ ॥

[जि.] तउहीइ गुरु मोटइ पुण्यइं लाभइं । इसी वात कहइ ।

तह वि हु[1] नियजडयाए कम्मगुरुत्तस्स नेव वीससिमो ।
धन्नाण कयत्थाणं सुद्धगुरू मिलइ पुण्णेहिं ॥ १३५ ॥

[सो.] **तह०** तऊ आपणउं जडता मूर्खपणउं । **कम्मगुरु०** अनइ आपणा भारेकर्मीपणानु वीसास न कराइं । कुण जाणइ केतीवारइं गुरुइ परीषतउ वरासिउ हउ[2] । जेह भणी **सुद्ध०** सुद्ध खरउ गुरु धन्य धन्य कृतार्थ भाग्यवंतइ जि रहइं, मोटा पुन्यनइ उदइ[3] मिलइ ॥ १३५ ॥

[जि०] तथापि हिं **नियजडयाए** निज आपणी जडता मूर्खपणउं तिणि करी कर्मगुरुत्त्वहूइं भारेकर्मी जीवहूइं सुगुरु जाणिवानउ विश्वास नही । पुण धन्य भाग्यवंत अनइ कृतार्थ कृतपुण्य पुरुषहूइं पुण्य करी सुद्ध गुरु चारित्री आचार्य मिलइं ॥ १३५ ॥

---

१ **मे.** ह. २ हउं हउं. ३ उदय.

[मे०] तथापि हि आपणी जडता मूर्खाई तिणि करी अनइ कर्मनउं गुरु भारीपणउं तिणि करी वेसास न करिवउं। पणि ते धन्य कृतार्थ जेह रहइं पुण्यनइ योगि सूधउ गुरु मिलइ ॥ १३५॥

[जि०] इणी जि कारणि सुगुरुप्राप्ति दुर्लभ कहइ।

अहयं पुणो अहन्नो ता जइ पत्तो अह न पत्तो य।
तह वि हु सो मह सरणं संपइ सो जुगप्पहाणं[1] गुरू ॥१३६॥

[सो०] **अहयं०** हुं पुण अपुण्य अभागीउ छउं। **ता जइ०** तु जइ मइं गुरु प्रामिउ छइ अथवा नथी प्रामिउ, तउ नश्चिइं[2] मू रहइ तेह जि प्रमाण ॥ १३६॥

[जि०] श्री**नेमिचंद्र भंडारी** गामि गामि नगरि नगरि गुरुपरीक्षा करतउ हूंतउ फिरइ, पुण सुगुरु न लहइं। तिवारइं सुं कहइ? **अहयं पुणो अहन्नो०**। अहयं हउं पुण अधन्यपुण्य छउं। **ता** तउ पछइ जइ किमइ सुगुरु पामिउ तउ पामिउ। **अह न पत्तो य** अथवा न पामिउ। **तह वि** तथापि तउहीइ **हु** निश्चइं **मह** मूहूइं **सो** तेह जि सुगुरु शरण आराध्यपणइ आधार। जे गुरु संप्रति हिवडानइ कालि जुगप्रधान श्री**जिनदत्तसूरि** युगप्रधान गुरुना पग शरण। इति भावः ॥ १३६॥

[मे०] हउं तउ अकृतपुण्णीयउ। जउ मइं ते सूधउ गुरु पामिउ छइ अथवा नहि पामिउ। तथापि जे युगप्रधान गुरु छइ ते मुझनइं शरणि ॥ १३६॥

---

१ जि. जुगपहाण, मे. जुगुपहाण. २ निश्चइं.

[जि.] अथ जिनधर्म तणउ जाणिवानउ प्रकार कहइ ।

जिणधम्मं दुन्नेअं अइसयनाणीहि नज्जए[1] सम्मं ।
तह वि हु[2] समयट्ठिइए[3] ववहारनएण नायव्वं ॥ १३७ ॥

[सो.] **जिण०** जिनधर्म जाणतां गाढइउ[4] दोहिलउ छइ । **अइसय०** अतिशयज्ञानी जे मनोगत भाव जाणइ, सम्यग् एहे[5] जि जाणइ जं 'एहमाहि धर्म छइ ।' **तह वि हु०** तऊ बीजे छद्मस्थे सिद्धांतमाहि जिसी परीक्षा कही छइ तिसी स्थितिइं करी व्यवहारनयइं[6] धर्म जाणी लेवउ । सर्वथा अनास्था न करिवी ॥ १३७ ॥

[जि.] जिनधर्म दुर्ज्ञेय जाणतां दुहेलउ, पुण अतिशय ज्ञानवंत पुरुषे **सम्मं** सम्यक् प्रकारि साचउं जाणीइ । **तह वि** तउहीइ निश्चइं **समयट्ठिइए** सिद्धांतनी स्थितिइं अनइं **ववहारनएण** लोकव्यवहारनइ न्यायि करी लोके जिनधर्म जाणिवउ । 'अहो सिद्धांतनी रीतिइं धर्म जाणीइ ते प्रमाण, पुण लोकव्यवहारइं धर्म जाणीइ ते किम प्रमाण ?' इसुं म कहे । 'लोगविरुद्धच्चाओ' इसा सिद्धांतना वचन-इतउ । जिम सिद्धांतस्थिति प्रमाण तिम लोकव्यवहारई प्रमाण । तथा चोक्तं—

लोक म रूसउ, लोक जि तूसउ, लोक लेई परमारथि पइसउ ।
जइ तूं जोगी त्रिभुवनसार, तइ तू न मेल्हे लोकाचार ॥ १३७ ॥

[मे.] जिनधर्म जाणतां गाढउं दोहिलउं । जे अतिशयवंत ज्ञानी हुइं तेह जि सम्यक्त्व जाणीइं जु 'एह माहि धर्म छइ ।' तथापि व्यवहारनइ ज्ञाइ सिद्धांतनी परीक्षाइ सम्यग् करी जाणी लेवउ । अनास्था न करिवी ॥ १३७ ॥

---

१ मे. निज्जए. २ मे. ह. ३ समयठिईए, जि. मे. समयठिईए. ४ गाढउं. ५ एह. ६ 'नयइं करी.

[जि.] अथ जिनेन्द्रनइ वचनि जिनधर्म जाणिवानउं फल कहइ ।

जम्हा जिणेहिं भणिअं सुअववहारं विसोहयंतस्स[1] ।
जायइ विसुद्धबोही जिणआणाराहगत्ताओ[2] ॥ १३८ ॥

[सो.] **जम्हा०** जेह भणी जिन श्रीसर्वज्ञइ इम कहिउं छइ । श्रुतव्यवहार सिद्धांतनउ मार्ग जोईनइ देवगुरुधर्म लिइं, **जायइ०** तु विशुद्ध बोधि निर्मल सम्यक्त्वनी प्राप्ति हुइ । **जिण०** जिननी आज्ञाना आराधक भणी । यदुक्तं श्री**आवश्यके सामाचार्यां**—

निच्छयओ दुन्नेअं को भावे कम्मि वट्टए समणो ।
ववहारओ उ कीरइ जो पुव्वट्ठिउ चरित्तम्मि ॥
ववहारो वि हु बलवं जं छउमत्थं पि वंदई अरहा ।
जा होइ अणाभिन्नो जाणंतो धम्मयं एयं ॥ (गा. ७१६-७१७)

सिद्धांतनउ व्यवहार प्रमाण करतउ केवलइं जे छद्मस्थि सिद्धांतनइ व्यवहारि जोई चाही खरउ निर्दोष भणी आणिउ हुइ, पुण ते आहार छइ आधाकर्मी । तउ ते जिमइ । केवली इम न कहइ, ‘ ए आधाकर्मी छइ ’ । इम कहितां सिद्धांतना व्यवहार ऊपरि अनास्था थाइ । तेह भणी न कहइ ॥ १३८ ॥

[जि.] **जम्हा** यस्मात् जिणि कारणि जिने इसुं कहिउं । **सुअववहारं** श्रुतव्यवहार सिद्धांतनी स्थिति विशोधता समाचरता पुरुषहूइं विशुद्ध निर्मली बोधि जिनसम्यक्त्वप्राप्ति **जायइ** हुइ । किसा हेतुइतउ ? जिनाज्ञाराधकत्त्वात् । जिननी आज्ञानउ आराधकपणातउ । कोई जिनाज्ञाप्रतिपालक पुरुष देषी बोधिफल प्रतिइं संदेह करइ । तेह पुरुष प्रतिइं **जिणआणाराहगत्ताओ** इसुं पद हेतुरूप थाइ ।

१ मे. विसोहियंतस्स. २ मे. °राहगुत्ताओ.

किमु ? श्रुतव्यवहार समाचरता पुरुषहूइं विसुद्ध बोधि हुइ । इसी प्रतिज्ञा किसातउ ? जिननी आज्ञानउ आराधकपणातउ । एहे तु जे जे जिननी आज्ञाना आराधक हुइं तेहां तेहां पुरुषहूइं विसुद्ध बोधि हुइ । इसी अन्वयव्याप्ति । जिम श्री**श्रेणिक** महाराजहूइं । इसु दृष्टांत । तिम एही जिनाज्ञाराधक । ए उपनय । तिणि कारणि विसुद्ध बोधि हुई ज । वली अप्रत्यक्ष बोधिफल प्रतिइं संदेहकारक पुरुष वादी इसुं कहइ, 'अहो प्रतिवादिन् ! हेतु हुउ, साध्य म हुउ । विपक्षि किसु बोध ?' इसिइ कहिइ हूंतइ प्रतिवादी ऊतर दिइ, 'अहो वादिन् ! जेहांहूइं विसुद्ध बोधि न हुइ तेहांहूइं जिनाज्ञाराधकपणउंई न हुइ, जिम मिथ्यात्वीहूइं । तेहनी परि ए नही । तिणि कारणि श्रुतव्यवहार समाचरता पुरुषहूइं विसुद्ध बोधिफल हुइ जि ।' इसिइ पंचावयवरूप अन्वय-व्यतिरेकी अनुमानप्रमाणि करी जिनमार्गप्रवर्त्तक जीवहूइं बोधिफल स्थापइं ॥ १३८ ॥

[मे.] जेह भणी वीतरागदेवे कहिउ श्रुतसिद्धांत तेहनउ व्यवहारमार्ग साधतां हूतां विसुद्ध सूधी जिनधर्मनी प्राप्ति हुइ । तउ जइ जिननी आज्ञाना आराधकपणातउ ॥ १३८ ॥

[सो.] श्रीगुरु आश्री वीतरागनी आज्ञा कहइ छइ ।

[जि.] अथ सुगुरु-दुर्लभता कहइ ।

जे जे दीसंति गुरू समयपरिक्खाइ ते न पुज्जंति ।
पुणमेगं सद्दहणं दुप्पसहो जाव जं चरणं ॥ १३९ ॥

[सो.] जे जे॰ कवि कहइ छइ । हिवडांनइ कालि जे जे गुरु देखीइं ते ते सिद्धांतनी परीक्षाइं न पहुचइं । कहिमाहि सघलाइं गुरुना गुण देखीइं नही । **पुणमेगं॰** पुण एक वातनुं निश्चिइं सद्दहिवुं जाणिवुं जं परमेश्वरि इम कहिउं छइ । पांचमा आरानइ

छेडहइ[1] श्रीदुप्पसह आचार्य युगप्रधान हुसिइं । तेह लगइ भरतक्षेत्रि चारित्र वर्त्तसिइ । तीणइ सिउं[2] जाणीइ ? निश्चिइं को को चारित्रीउ गुरु भरतक्षेत्रमाहि छइ, जि हुं ऊलखतउ नथी ॥ १३९ ॥

[जि.] जे जे गुरु दीसइं ते ते समय सिद्धांत तेहनी परीक्षाइं न पूजइं न पुहचइं । पुण एक श्रद्धान आस्ता छइ । किसुं श्रद्धान ते ? **दुप्पसहो जाव जं चरणं । जं** जउ **दुःप्रसहाचार्य** लगइ चरण चारित्र थोडउं थोडेरउं होसिइ जि । इसी आस्ता छइ । पुण जुगप्रधान गुरु टाली बीजउ कोई गाढउ सुगुरु दीसइ नही । इति भावः ॥ १३९ ॥

[मे.] कवि कहइ । हिवडांनइ कालि जे जे गुरु दीसइं ते ते सिद्धांतनी परीक्षाइं न पहुचइं । कांई ? आपणपानइं सूधा ज्ञाननउ अवबोध नही । अनइ असूधा घणा, सूधा थोडा ते भणी जाणी न सकीइं । पणि एक वातनी सद्दहणा करिवी । जां **दूपसहसूरि** तां सीम चारित्र छइ ॥ १३९ ॥

[जि०] तिणि कारणि ते जुगप्रधान गुरु जाणिवानउ उपाय कहइ ।

ता एगो जुगपवरो मज्झत्थपणेहिं समयदिट्ठीए ।
सम्मं परिक्खियव्वो मुत्तूण [3]पवाहहलबोलं ॥ १४० ॥

[सो.] **ता एगो०** तेह भणी एह भरतक्षेत्रमाहि एक को युगप्रवर युगमाहि उत्कृष्टउ चारित्रीउ मध्यस्थ मन थईनइ परीक्षिवउ । **समय०** सिद्धांतनी रीतिइं सम्यग् जोई लेवु । **मुत्तूण०** लोकनउ प्रवाह कलकल 'आ माहरउ, आ ताहरउ गुरु' इस्यउ लोकनउ प्रवाह

१ छेहडइ. २ इसिउं. ३ पबोह°.

तेहरूपिआ हलाबोल द्रहबोल मेल्ही करी। जिम द्रहबोलमाहि वस्तु पडी न लाभइं तिम लोकप्रवाहि तत्त्वातत्त्वविचार न लाभइं। तेह भणी ते छांडीनइ तत्त्ववृत्तिइं गुरु जोईनइ लेवु ॥ १४० ॥

[**जि.**] **ता** तउ पछइ एक अद्वितीय युगप्रवर युगप्रधान गुरु मध्यस्थमनोभिः मध्यस्थ उदासन पुरुषे समय सिद्धांत तेहनी दृष्टि जोइवउं तिणि करी। अथवा सिद्धांतरूपिणी दृष्टि लोचन तिणि करी **सम्मं** सम्यक् साचउ **परिक्खियव्वो** परीखिवउ। किसुं करी? प्रवाह लोकप्रवाह तेहरूपिउ द्रहबोल मेल्ही करीनइ। जिम द्रहबोलमाहि वस्तु पडी न लाभइं तिम लोकप्रवाहि तत्त्वातत्त्वविचार न लाभइं। तिणि कारणि लोकप्रवाह मेल्ही मध्यस्थेई जि पुरुषे सुगुरु परीखिवउ, न तु आग्रहवंते पुरुषे। यदुक्तं—

आग्रही बत निनीषति युक्तिं तत्र यत्र मतिरस्य निविष्टा।
× × × [1]युक्तिर्यत्र यत्र मतिरेति निवेशं ॥

सिद्धांतनी दृष्टि किसी?

पडिरूवो तेयस्सी जुगप्पहाणागमो महुरवक्को।
गंभीरो धीमंतो उवएसपरो य आयरिओ ॥
अप्परिस्सावी सोमो संगहसीलो अभिग्गहमई य।
अविकत्थणो अचवलो पसंतहियओ गुरू होइ ॥

(उपदेशमाला, गा. १०-११)

इत्यादि सिद्धांतदृष्टिइं जुगप्रधान उलषी आदरिवउ ॥ १४० ॥

[**मे.**] तेह भणी एह भरतक्षेत्रमाहि एकेकउ युगप्रधान अनुक्रमिइं दुप्पहसूरिसीम बिसहस्र चडोत्तर होसिइं। एह भणी

[1] आ श्लोकनुं त्रीजुं चरण मूळमां आम त्रूटित छे.

रागद्वेष मूकी मध्यस्थपणइ समय सिद्धांतनी दृष्टिं सम्यग् प्रकारि गुरु परीषी लेवउ, पणि लोकनउ प्रवाह कलकल 'ए माहरउ, ए ताहरउ' एवहउ हलबोल मूकीनइ ॥ १४० ॥

[सो.] ईणइं लोकप्रवाहिइं हिवडां जाणइ क्षुभइं छइं। ए वात कहइ छइ।

[जि.] अथ पूर्वोक्त लोकप्रवाहनउं स्वरूप कहइ।

संपइ[1] दसमच्छेरयनामायरिएहिं जणिअजणमोहा।
सुयधम्माओ[2] निउण[3] वि चलंति बहुजणपवाहाओ ॥१४१॥

[सो.] संपइ० हिवडां अस्संजयाण पूआ इसिउं दसमुं अछेरुं प्रवर्त्तइ[4] छइ। ईणं करी गुणरहित नामिइं आचार्य घणा थिया। तीणइं करी **जणिअजण०** लोक रहइं मोह कहीइ भ्रम वरांसउ पडिउ[5]। न जाणीइ केहउ गुरु। इसिइं छतइं जे निपुण डाहा चतुर तेहइ घणा लोकना प्रवाहमाहि पडिआ हुंता साचा धर्मतउ चूकइं चलइं छइं, साचा गुरुनइ अणलहिवइं ॥ १४१ ॥

[जि.] संप्रति हिवडां दसमइ आश्चर्यि ऊपना **नामायरिएहिं** नामधारक आचार्य तेहे जनित ऊपजाविउ जन अज्ञाततत्त्व लोक तेहना सरीषउ मोह अज्ञानपणउं जेहां निपुणांहूइं छइं ते जनितजनमोह। एवहा हूंता **निउण वि** निपुणई ज्ञाततत्त्वई सुभधर्म हूंता चालइं। किसा प्रमाणइतउ? **बहुजणपवाहाओ** बहु घणा जण लोक तेहना प्रवाहइतउ। एक नामधार आचार्य मोह ऊपजावइ। लोकप्रवाह पुण शुभधर्म हूंतउ डाहाई भोलवइ। तिणि कारणि लोकप्रवाह मेल्हिवउ ॥ १४१ ॥

---

१ जि. मे. संपय. २ तह धम्माओ. ३ जि. नियण. ४ वर्त्तइ. ५ परिउ.

[मे.] सांप्रत दसमा अच्छेरा जे कह्या तेहमाहि दसमा अच्छेरा-नइ प्रस्तावि नामाचार्ये लोकनइं जे व्यामोह ऊपजाविउ तेह लगी घणा लोकना प्रवाहमाहि पड्या हूंता निपुण डाहाइ लोक सूधा धर्म हूंता चालइं भ्रष्ट हुइं, साचा गुरु अणलहता थका ॥ १४१ ॥

[सो.] जे लोकनइ प्रवाहि पडिआ तेहनुं आलंबन लेईं कुगुरु कुधर्म सेवइ । तेह आश्री कहइ छइ ।

[जि.] अथ मिथ्यात्वी सम्यक्त्वी बिहुंना लक्षण कहइ ।

जाणिज्ज मिच्छदिट्ठी जे पडणालंबणाइं गिण्हंति[1] ।
जे पुण सम्मद्दिट्ठी तेसिं मणो चडणपयडीए[2] ॥ १४२ ॥

[सो.] जाणिज्ज॰ निश्चयनयनी अपेक्षाइं ते मिथ्यात्वीइ जि कहीइं, जे पडवानां आलंबन लिइं । 'अमुकउ प्रमाद कुमार्गादिक करइ छइ, हुंइ करुं' इम तेहनां आलंबन लिइं । जे[3] साचा सम्यग्दृष्टि साचा सम्यक्त्वना धणी तेहनुं मन चडवाइजिनी पगथीइं हुइ । जे खरउ धर्म करता हुइ तेहनु आलंबन लेईनइ आपणपइं खरूंइ जि करइ । यदुक्तं श्री**आवश्यके वंदनक**निर्युक्तौ—

आलंबणाण लोओ भरिओ जीवस्स अजउकामस्स ।
जं जं पिच्छइ लोए तं तं आलंबणं कुणइ ॥
जे जत्थ जयाजईआ बहुस्सुआ चरणकरणपब्भट्ठा ।
जं ते समायरंति आलंबण मंदसड्ढाणं ॥
जे जत्थ जयाजईया बहुस्सुआ चरणकरणसंपन्ना ।
जं ते समायरंति आलंबण तिव्वसड्ढाणं ॥ १४२ ॥

(गा. ११८८-८९-९०)

---

१ गिण्हंति. २ जि. चेव पडणीए. ३ 'जे साचा सम्यग्दृष्टि......तेहनु आलंबन' एटलो पाठ सो.नी बीजी प्रतमांथी पडी गयो छे.

[जि.] ते **मिच्छदिट्ठी** मिथ्यात्त्वीदृष्टि **जाणिज्ज** जाणिवउ, जे पतित धर्म हूंता भ्रष्ट हूया तेहनां आलंबन ओठंभ लिइं, भ्रष्टनी विसमसि करइं। 'एहइ तप नथी करतउ, हउंइ नही करउं' इत्यादि आलंबन लिइं। अथ सम्यक्त्वी लक्षण। **जे पुण सम्मदिट्ठी** जे वली सम्यग्दृष्टि हुइं **तेसिं मणो** तेहनां मन चडते पावडीया लेहु। मोटा तपस्वी प्रमुख पुरुष तेहना अवष्टंभ आदरइं ॥ १४२ ॥

[मे.] ते जाणिवा मिथ्यादृष्टि जे **पडियालंबण** पतितनउं आलंबन लिइं। जे वली जीव सम्यग्दृष्टि छइं ते चडियालंबननी पावडी चडइं। जे रूडी क्रिया करइं तेहनी पयडीइ चडइं ॥ १४२ ॥

[सो.] उत्तम संयोग दुर्लभ ए वात कहइ छइ।

सव्वं[1] पि जए सुलहं सुवन्नरयणाइवत्थुवित्थारं।
निच्चं चिय मेलावं सुमग्गनिरयाण[2] अइदुलहं ॥ १४३ ॥

[सो.] **सव्वं पि०** बीजउं सहू सुवर्ण रत्न आभरणादिक वस्तु ऋद्धिनउ विस्तार सुलभ। यत उक्तं—

सर्वे भावाः सर्वजीवैः प्राप्तपूर्वा अनंतशः।
बोधिर्न जातुचित्प्राप्तो भवभ्रमणदर्शनात् ॥

राज्यऋद्धि धनकनकादिक घणीइ वार अनंते भवे लाभइ, पुण सन्मार्ग-निरत खरा उत्तम धर्मना आराधक उत्तम पुरुष तेहनउ सदैव मेलावउ ते अतिदुर्लभ। तेहइ जि भणी सदैव **जयवीअराय**माहि प्रार्थीइ छइ, 'सुहगुरुजोगो तव्वयणसेवणा आभवमखंडा' ॥ १४३ ॥

---

१ आ गाथा तथा ते उपरनो बालावबोध जि. मां नथी. २ °निउणाण.

[मे.] सघलीइ वस्तु पृथ्वीमाहि सुवर्णरत्नादिक वस्तुनउ विस्तार सोहिलउ। पणि नित्य सर्वदा सन्मार्गनइ विषइ निरत, खरा धर्मना प्ररूपक तेहनउ मेलावउ अति दुर्लभ। **जयवीअराय**माहि 'सुहगुरुजोगो तव्वयणसेवणा' एह जि वस्तुनी प्रार्थना मागी ॥ १४३ ॥

[सो.] केतलाइ 'आ[1] माहरउ देव, आ माहरउ गुरु। ए टाली बीजा गुणवंतइ कांई नही। हुं एह जि मानउं।' इसिउं अभिमान वहइ। तेह आश्री कहइ छइ।

[जि.] अथ देवां गुरांहूइं सगर्वपणइ करी कर्मबहुलता बोलइ।

[2]अहिमाणविसोवसमत्थयं च थुव्वंति देवगुरुणो अ।
तेहिं पि जओ[3] माणो ही ही तं पुव्वदुच्चरिअं[4] ॥ १४४ ॥

[सो.] अहिमाण० अहंकाररूपिआ[5] विसना विकार उपशमाववा देवगुरु कहीइ। देवगुरु सेवतां अहंकारादिक विकार जाइं। **तेहिं पि०** तेहे जि देवगुरे करी केतलांहूइं[6] मान अहंकार आवइ। **ही ही०** आहा! ते पूर्वदुश्चरित पाछिला भवना पाप तेहनूं प्रमाण, जं गुणागुण कांई जोतउ नथी। दृष्टिरागिइं वाहिउ 'आपणाइ जि देवगुरु रूडा' इसिइं गर्विइं गर्व्युं हींडइ छइ ॥ १४४ ॥

[जि.] लोक परमार्थवृत्तिइं **च** वली बाह्यवृत्तिइं पुण अभिमान अहंकार तेहनइ वशि देवां गुरुईहूइं वर्णवइं। जउ देवगुरुई अहंकारी छइं इसिइं स्तवइं। स्तवितां छतउई गुण, अछतई गुण वर्णवइ। पुण तेहां देवांगुरांहूइं जउ **माण** अहंकार हूउ साचउ, तउ तेहां देवगुरुनां पूर्वकृत दुश्चरित जाणिवउं ॥ १४४ ॥

---

१ 'आ माहरउ देव' सो.नी बीजी प्रतमां नथी. २ आ गाथा जि.मां नथी, पण तें उपरनो बालावबोध छे. ३ मे. जाओ. ४ °दुच्चिरिअं. ५ अभिमान अहंकार°. ६ केतलाइं.

[मे.] अहंकार रूपीया विसना विकार तेहनइं उपशमाविवानइं काजि देवगुरुनी स्तुति कीजइ। कांइं? ते स्तवतां अहंकार जाइ। अनइ तेही जि देवगुरु हूंतउ जे अभिमान ऊपजइ तउ **ही** इसिइं खेदि ते पूर्वदुश्चरित्र पापनउं प्रमाण जाणिवउं ॥ १४४ ॥

[सो.] लोकना आचार करतउ जे आपणपउं जिनभक्त कहावइ ते आश्री वात कहइ छइ।

[जि.] अथ जे जैन आचारि करी बीजा जैनहूइं न मिलइं तेह जैनहूइं ओलंभउ दिइ।

जो जिणआयरणाए लोओ न मिलेइ तस्स आयारे।
हा हा मूढ करंतो कह अप्पं भणसि जिणपणयं॥ १४५॥

[सो.] **जो जिण०** जिन श्रीवीतरागनी आचरणासिउं जे लोकनउ आचार न मिलइं। मूढ मूर्ख! ते आचार समाचरतउ हूंतउ आपणपूं[1] जिनभक्त किम जिनभक्त कहं छं? 'अन्नस्स कडि चडिओ, अन्नस्स वि होइ थणपाणं' ए लोकनउ उषाणउ साचउ करं[2] छं ॥ १४५ ॥

[जि.] अथ जे लोक जिननी आचरणाइं करी **तस्स** तेह जिननइ आचारि न मिलइं, जिननी आचरणा अनइं जिननउ आचार तेह बिहुंहूइं भिन्नता जाणइं। अनइं जिनाचरण-जिनाचारहूइं भेद नही। हे मूढ! **हा हा** खेदे। भेद करतउ, लोकाचार करतउ हूंतउ आपणपउं जिनप्रणत जिनभक्त किमु भणइ, कांइं कहइ? ॥ १४५ ॥

[मे.] जे जिननी आचरणाइं लोक न मिलइं ते लोकनउ

---

१ आपणपुं. २ करुं छुं.

आचार जे लोक करइं । हा हा इसिइ खेदि । ते मूढ मूर्ख ते आचार करतउ आपणपउं जिनभक्तपणउं किम कहइ ? ॥ १४५ ॥

[सो.] वीतरागइजिनुं वचन मानइ ते थोडा । ए[1] वात कहइ छइ ।

[जि.] एवडउ जैनभेद कांइं ? तेहनउं कारण कहइ ।

जं चिअ लोओ मन्नइ तं चिअ मन्नंति सयल लोआ वि ।
जं मन्नइ जिणणाहो तं चिअ मन्नंति किवि[2] विरला ॥१४६॥

[सो.] जं चिअ० एक लोक जे बोल मानइं तेह जि बोल सघलाइ लोक मानइं । प्रवाहि पड्या प्राहिं[3] संसाराभिलाषी सविहुं ८३ जीवनां मन सरीषांइ जि हुइं । **जं मन्नइ०** जे जिननाथ तीर्थंकरदेव जे बोल मानइं कहइं, केवलज्ञानिं करी जाणीनइ, तेहू जि श्रीसर्वज्ञनां[4] वचन जे मानइं, लोकनउ प्रवाह कांई न मानइ ते केतलाइ विरलाइ जि थोडाइ आसन्नसिद्धिक हुइं ॥ १४६ ॥

[जि.] जे आचार लोक मानइ तेही ज आचार सघलाई लोक ८४ मानइं । पुण जे आचार जिननाथ मानइ ते आचार विरला थोडा केईएक भाग्यवंत मानइं ॥ १४६ ॥

[मे.] जे वस्तु मिथ्यात्त्वादिक प्रवाहि लोक मानइं ते सकल लोकमाहि मानीइ । अनइ जे जिननाथ मानइ कहइ ते जइ विरलउ कोईएक भव्य जीव मानइ ॥ १४६ ॥

[सो.] निश्चय नय आश्री श्रीसम्यक्त्वनूं स्वरूप कहइ[5] ।

[जि.] अथ जे साहम्मी उपरि गाढउ स्नेह न करइं तेह उद्दिसी कहइ ।

---

१ ते. २ जि. के, मे. कवि. ३ प्राहिइं. ४ सर्वज्ञनुं. ५ कहइ छइ.

साहम्मिआओ अहिओ बंधुसुआईसु[1] जाण अणुराओ।
तेसिं न हु सम्मत्तं विन्नेयं[2] समयनीईए[3] ॥ १४७ ॥

[**सो.**] **साहम्मि०** जेहहूइं साहम्मी[4] पाहिं बांधव पुत्र कलत्र मित्रादिक स्वजन ऊपरि अनुराग घणउ अधिकउ हुइ। साहम्मी उपरि स्नेह थोडउ अनइ आपणां सगा कुटुंब ऊपरि घणउ स्नेह हुइ, मोह लगइ। **तेसिं०** सिद्धांतनी रीतिइं जोतां निश्चयइं[5] तेहहूइं सम्यक्त्व नथी इसिउं मानउं। जउ सम्यक्त्व दृढ हुइ तउ धर्मवंत ऊपरि अनुराग गाढउ जोईइ। इह लोकना सगपण ऊपरि थोडउ जोईइ। इसिउ भाव ॥ १४७ ॥

[**जि.**] जेहां पुरुषहूइं साहम्मी पाहइं बंधु स्वजनादिक ऊपरि अधिकउ अनुराग स्नेह हुइ तेहं पुरुषहूइं सम्यक्त्व नही। इसुं सिद्धांतनी नीतिइं **विन्नेयं** जाणिवउं ॥ १४७ ॥

[**मे.**] जेह जीवनइं साधर्मी पांहति बांधव पुत्र कलत्र मित्र ऊपरि अधिक अनुराग हुइ ते जीवनइं सिद्धांतनी रीतिइं जोतां सम्यक्त्व नथी। कांइं ? जु सम्यक्त्व दृढ हुइ तउ साहम्मीनउ अनुराग गाढउ हुइ ॥१४७॥

[**सो.**] शुद्ध सम्यक्त्वनउ धणी लोकाचारनउ धर्म कांई न गणइ। ए वात कहइ छइ।

[**जि.**] अथ मिथ्यात्वीनइ पक्षि हूउ जि मानइ तिहहूइं ओलंभउ दिइ।

जइ जाणसि जिणणाहो लोआयारा[6] विपक्खए हूओ।
ता[7] तं तं मन्नंतो कह मन्नसि लोअआयारं[8] ॥ १४८ ॥

---

१ जि. मे. °सयाईसु. २ मन्ने. ३ सिद्धंतनीईए. ४ साहम्म. ५ निश्चयनइं. ६ जि. मे. लोआयाराण पक्खए. ७ मे. ता तव तं. ८ मे. °आयारे.

[सो.] जइ० अहो भव्य जीव ! तूं जउ इसिउं जाणं छं– ‘जिननाथ श्रीसर्वज्ञ लौकिक आचार थिकउ विपक्षभूत अलगउ छइ। लोकाचार जूउ अनइ श्रीसर्वज्ञनउ[1] आचार जूउ छइ।’ **ता तं तं०** तेह भणी तुं ते श्रीवीतरागनइं मानतउ हूंतउ लोकनउ आचार धर्म भणी कांई मानअं[2] छअं ? जे ‘लोगविरुद्धच्चाओ’ इसिउं कहिउं छइ ते प्रसिद्ध लोकनउ आचार धर्म सिउं अविरुद्ध अणकरतां लोक पाप ऊपार्जइ। ते छांटा[3] आभोषादिक करिवुं। पणि तेहइ धर्म भणी कांई न मानिवउं॥ १४८॥

[जि.] लोकाचारनइ पक्खइ हूउ हूंतउ मानतउ जइ जिननाथ जाणइ, मनमाहि धरइ, तउ पछइ तूं ते जिन मानतउ हूंतउ लोकाचार कांइं मानइ ?॥ १४८॥

[मे.] अरे जीव ! जउ तउं इम जाणइ छइ जि ‘जगन्नाथ वीतराग लोकना आचारनइ विपक्षभूत अलगउ छइ। लोकाचार जूउ, वीतरागनउ आचार जूउ।’ तउ तउं वीतरागनइं मानतुइ हूंतउ लोकनउ आचार धर्म भणी काइं मानइ ?॥ १४८॥

[सो.] वली सम्यक्त्वइ जि ऊपरि ४[4] गाह कहइ छइ।

[जि.] अथ जिन मानीनइं पछइ अन्य देव मानइ तेह उद्दिसी कहइ।

जे मन्नेवि जिणंदं पुणो वि पणमंति इअरदेवाणं।
मिच्छत्तसन्निवायगघत्थाणं[5] ताण को विज्जो॥ १४९॥

[सो.] जे मन्नेवि० जे जिनेन्द्र श्रीसर्वज्ञ साचउ देव

---

१ श्रीसर्वज्ञआचार. २ मानइं छइं. ३ छाट. ४ आश्री. ५ जि. °सन्निवाइग°, मे. °संनिवायं.

वीतराग मानी तेहनी आज्ञा पडिवजीनइ **पुणो वि०** वली इतर देव बीजा संसारिक देव नमइ मिथ्यात्त्वरूपिंइ सन्निपात[1] रोगिइं करी ग्रसिया अचेत जाणिवा। तेहहूइं कुण वैद्य हुइं ? तेहहूइं कुण साजा करइं ? जे अमृत पीईनइं विस पीइं तेहहूइं सिउं प्रतिकार हुइ ? ॥ १४९ ॥

[जि.] जे पुरुष जिनेन्द्र मानी पछइ इतर देव हरिहरादिक प्रणमइं तउ मिथ्यात्त्वरूपिउ संनिपातक रोग तिणिइं **घत्थ** ग्रस्या व्याप्या हूंता **ताण** तेहां पुरुषहंहूइं कुउण वैद्य ह ? अपि तु न कोई ॥ १४९ ॥

[मे.] जे सर्वज्ञ साचउ देव मानी तेहनी आज्ञा पडिवजीनइ इतर बीजा संसारिक देवनइं मानइं ते मिथ्यात्त्वरूपीइं संनिपाति रोगि ग्रस्या हूंता अचेत हुइं। तेहनइं कउण वैद्य साजा करइ ? ॥ १४९ ॥

[सो.] वली सम्यक्त्वइ जि ऊपरि कहइ छइ।

[जि.] एक श्रावक गुरु नानाविध चैत्यद्रव्य माहोमाहि न वेचावइं।

एगो[2] सुगुरू एगा वि सावगा चेईयाणि विविहाणि।
तत्थ य जं जिणदव्वं परुप्परं तं न विचंति ॥ १५० ॥

[सो.] एगो० गुरु एकइ जि अनइ श्रावक एकइ जि छइं। पुण चैत्य देहरां जूआं जूआं अनेरा अनेरानां[3] कराव्यां छइ। तिहां जे द्रव्य छइ ते परस्परिइं न वेचइं। पेला[4] देहरानु उलिइ देहरइ, ओल्या देहरानु पेलइ देहरइ न वेचइ। मनि भेद आणइ ॥ १५० ॥

---

१ संनिपाति. २ आ गाथानी प्रथम पंक्ति जि. मां नथी. ३ अनेरा. ४ 'पेला देहरानु...न वेचइ' एटलो पाठ सो.नी बीजी प्रतमांथी पडी गयो छे.

[जि.] एक जि सुगुरु । एकइ जि सघला श्रावक । चैत्य जिनदेवगृह विविध नानाप्रकार छइं । **तत्थ** तेहे विविध चैत्ये **जं** जे जिनद्रव्य ऊपजइ ते जिनद्रव्य देवद्रव्य परस्परइं एक चैत्यनउं द्रव्य बीजइ चैत्यि जे सुगुरु श्रावक न वेचावइं ॥ १५० ॥

[मे.] एक सुगुरु, एक श्रावक छइ अनइ देहरां जूजूआं छइं । अनइ तिहां जे द्रव्य छइ ते परस्परइं न वेचइं । मनि भेद आणइ ॥ १५० ॥

ते न गुरू नवि सड्ढा न पूइओ तेहिं होइ[1] जिणनाहो ।
मूढाणं मोहठिई सा नज्जइ[2] समयनिउणेहिं ॥ १५१ ॥

[सो.] ते न० ते गुरु नहीं, ते श्रावक नहीं, जे इम देहरानी जूजूआई करइं । एक ना[3] गणइं तेहे वीतराग देवइ[4] पूजिउ नही । साचउ वीतराग पूजिउ तु कहीइ, जउ वीतरागना प्रासादबिंब एकइ जि देषइ । जे जूजूउं देखिवुं ते मूढनी मोहस्थिति अजाणिवुं जि जाणीइ ॥ १५१ ॥

[जि.] ते गुरु नही । ते श्रावक नही । तेहे गुरु-श्रावके जिननाथ वीतराग देव किवारइं न पूजिउ । कांइं ? तेहे गुरु-श्रावक **समयनिउणेहिं** समय सिद्धांत तेहना निपुण जाण एवहई **सा** ते चैत्यद्रव्यनी परस्परइं अणवेचिवानी रीति ते मूढ मूर्षनी मोहस्थिति **नज्जइ** जाणीइ । नाना चैत्यपदनउ द्रव्य भावइ तिमइ जिनचैत्यि वेचिवउं । दूषण नही, सामुह महाधर्म । इसी सिद्धांतरीति न जाणइं, किंतु पूर्वोक्त मूर्षस्थिति जाणइं तेह भणी ते अजाण ॥ १५१ ॥

[मे.] ते गुरु नहीं, ते श्रावक नहीं, जे देहरां एक न गिणइं ।

---

१ जि. कहवि. २ मे. निज्जइ. ३ न. ४ देवउ.

तेहे वीतराग पूजिउ नहीं। जे प्रासाद-बिंब आपणा-पारका करी देषइं ते मूढनी मोहस्थिति अजाणिवउं समय सिद्धांतने निपुणे ॥ १५१ ॥

[सो.] वली एह जि वात कहइ छइ।

[जि.] एह ज वात प्रकारांतरि वली कहइ।

सो न गुरू जुगपवरो जस्स य वयणम्मि वट्टए भेओ।
चिअभवणसड्ढगाणं[1] साहारणदव्वमाईणं ॥ १५२ ॥

[सो.] सो न० ते गुरु युगप्रधान न कहीइं, जेहनइ वचनि उपदेशि एतलांनु भेद थाइ। चैत्यभवन देहरां अनइ श्रावक तथा साधारण द्रव्य देवद्रव्यादिकनी जूजूआई थाइ, माहिमाहि विरोध पडइ ॥ १५२ ॥

[जि.] जे गुरु जुगप्रवर नही, **जस्स य** जेह गुरुनइ वचनि चैत्यभवन देवगृह तेहना द्रव्यहूइं अनइ श्रावकना द्रव्यहूइं वली साधारण द्रव्यहूइं भेद भिन्नता वर्त्तइ ॥ १५२ ॥

[मे.] ते गुरु युगप्रधान न कहीइं, जेहनइ वचनि एतलांनउ भेद थाइ। चैत्य देहरा, श्रावक तिम साधारण द्रव्य देवद्रव्यादिकनी जूजूआइ थाइ, माहोमाहि विरोध पडइ ॥ १५२ ॥

[सो.] वली कवि गुरुनी भक्तिइं कहइ छइ।

[जि.] अथ मिथ्यात्त्वनउं माहात्म्य बोलइ।

संपइ पहुवयणेण[2] वि जाव न उल्लसइ विहिविवेअत्तं[3]।
ता निबिडमोहमिच्छत्तगंठिआदुट्ठमाहप्पं ॥ १५३ ॥

---

१ भुवण°. २ जि. °वियणेण. ३ जि. विहिविवेगत्तं.

[**सो.**] **संपइ०** हिवडां प्रभु श्री**जिनवल्लभसूरि**नइं वचनिइं जां धर्मनी षरी विधि अनइ साचा विवेकनउं[1] जाणिवउं[2] न उल्लसइं न ऊपजइ **ता निबिड०** ते निबिड मोह अजाणिवउं अनइ मिथ्यात्त्वनी ग्रंथि तेहनउं गाढउं माहात्म्य गाढउ महिमा। ते गाढा अजाण अनइ गाढा मिथ्यात्त्वी कहीइं ॥ १५३ ॥

[**जि.**] संप्रति हिवडां प्रभु श्री**जिनवल्लभसूरि** तेहनइ वचनिई जउ विधिविवेकपणउं न उल्लसइ, विधि जिनसिद्धांत कर्त्तव्य तेहनउं विवेकपणउं, पापपुण्यनउं जाणिवापणउं जउ न ऊपजइ **ता** तउ पछइ निबिड मोह अज्ञान तद्रूप मिथ्यात्त्वग्रंथिका मिथ्यात्त्वनी गांठडी तेहनउं माहात्म्य प्रभाव जाणिवउ ॥ १५३ ॥

[**मे.**] सांप्रत प्रभु श्री**जिनवल्लभसूरि**नइ वचनिइं जेहनउं चित्त खरी विधि ऊपरि अनइ साचउ विवेक तेहनउं जाणिवउं तेह ऊपरि चित्त उल्लसइ नहीं, तेहनइं निबिड मोह अजाणिवउं वली मिथ्यात्त्वनी ग्रंथि तेहनउं गाढउं महादुष्ट मोहनउं माहात्म्य जाणिवउं ॥ १५३ ॥

[**सो.**] परमेश्वरना वचननी आशातनानुं करिवूं ते गाढउं विरूउं।

[**जि.**] अथ जिननी आशातना करिवानउं फल कहइ।

बंधणमरणभयाइं[3] दुहाइं तिक्खाइं नेव दुक्खाइं।
दुक्खाण[4] दुहनिहाणं पहुवयणासायणाकरणं[5] ॥ १५४ ॥

[**सो.**] **बंधण०** बांधिवउं[6], मारिवउं[7] अनेराइ भय एहवा जि[8] तीव्र दुःख ते दुःख न कहीइं। ते थोडेसी[9] वेला[10] सहियां अनइ

---

१ विवेकनुं. २ जाणिवुं. ३ भयाई. ४ मे. दुक्खाइं. ५ जि. मे. पहुवयणा-सायणं करणं. ६ बांधिवुं. ७ 'मारिवउं' नथी. ८ जे. ९ थोडिसी. १० वेलां.

फीटी[1] जाइं। **दुक्खाणं०** पुण प्रभु तीर्थंकरदेवनां वचननी आशातनानुं करिवुं ते सर्व दुःखनउं निधान। अनंता संसारमांहि अनंते भवे अनंता दुःख दिइ। वीतरागनां वचन जे ऊथपिइं ते घणुं आगलि दुःखिया थाइं॥ १५४॥

[जि.] बंधनमरणभयप्रमुख दुःख तीव्रई हूंता पुण दुःख न कहीइं। स्वल्प नान्हपणातउ। जइ बंधनमरणादिक दुःख नही, जिनवचन आशातना करिवउं किसउं दुःख? **पहुवयणा०** प्रभु स्वामी जिन तेहनी आशातनानउं दुःखनिधान दुःखस्थानक। अतिउत्कृष्टपणातउ। जिनवचन आशातना करिवइ तउ अणंता मोटां गाढां दुःख ऊपजइं। तेह भणी जिनवचन आशातना न करिवी। किन्तु मानिवउं करिवउं पुण जिनवचन, जिम नानाविध मनोज्ञ सुख हुइं॥ १५४॥

[मे.] बंधणमरणभयादिक जे दुक्ख ते तीव्र दुक्ख कहीइं ते थोडीसी वेला सह्यां पछी विलइ जाइं। पणि प्रभु तीर्थंकरदेवनां वचननी आशातनानउं करिवउं ते सर्व दुक्खनउं निधान, जेह लगी अनंतां दुक्ख पामीइ॥ १५४॥

[सो.] हिव कवि आपणी निन्दा करइ छइ।

[जि.] अथ सुश्रावकत्त्व आजन्म पालिवउं। इसुं कहइ।

पहुवयणविहिरहस्सं नाऊणं[2] जाव दीसए अप्पा।
ता कह सुसावगत्तं[3] जं चिन्नं धीरपुरिसेहिं॥ १५५॥

[सो०] पहु० प्रभु तीर्थंकरदेव तेहने वचने,

सुविणिच्छिअएगमई धम्मम्मि अनन्नदेवओ अ पुणो।
न य कुसमए सु रज्जइ पुव्वावरवाहयत्थेसु॥
दट्ठूणं कुलिंगीणं तसथावरभूअमद्दणं विविहं।
धम्माओ न चालिज्जइ देवेहिं सइंदएहिं पि॥

(उपदेशमाला, गा. २३१-३२)

---

१ फीडी. २ जि. मे. नाऊण वि. ३ मे. सुसावयत्तं.

दढसीलव्वयनियमो पोसहआवस्सएसु अक्खलिओ० ।

(उपदेशमाला, गा. २३४)

इत्यादिके जे श्रावकनउं रहस्य बोलिउं छइ ते जाणीनइ जेती वारइं आपणपउं जोईइ **ता कह०** तु किहां आपणपामाहि सुश्रावकपणुं ? **जं चिन्नं०** जे आगलि धीर पुरिषे **आनंद कामदेवा**दिके समाचरिउं तेहनु लवलेश आपणपामाहि नथी ॥ १५५ ॥

[जि.] प्रभु परमेश्वर तेहनउं वचन विधि रहस्य **नाऊण** विजाणई अनइ **जाव** जां लगइ आत्मा ब्रह्मस्वरूप दीसइं तां लगइ किसु सुश्रावकपणउं ? जे सुश्रावकपणउं धीरपुरुषे आचीर्ण आचरिउं ॥ १५५ ॥

[मे०] प्रभुरतन वीतरागदेव तेहनी भाषी विधि तेहनउं रहस्य जाणीनइ जउ आपणउं आत्मानउं स्वरूप जोईइ तउ किहां सुश्रावकपणउं ? कांइं ? आगइ जे **आनंद कामदेवा**दिक धीर पुरुष श्रावक हूआ तेहनउ तउ लवलेश मात्र आपणपामाहि नहीं दीसता ॥ १५५ ॥

[सो.] हिव आपणु मनोरथ चिहु[1] गाहे कवि[2] कहइ छइ ।

[जि०] अथ श्री**नेमिचंद्र भंडारी** पांचे गाथाइं आपणा मनोरथ प्रकासइ ।

जइवि हु उत्तमसावयपयडीए चडणकरणअसमत्थो ।
तह वि पहुवयणकरणे मणोरहो मज्झ हिअअम्मि ॥१५६॥

[सो.] जइ वि० यद्यपि[3] उत्तम श्रावकनी पगथीइं चडवूं करी न सकुं, तीणइं वहिरइ[4] असमर्थ छउं **तह वि०** तउ प्रभु तीर्थंकरनां वचन आराधिवानइ विषइ[5] माहरइ हिअइ मनोरथइ[6] छइ । किमइ[7] वीतरागनी आज्ञा आराधाइ तु रूडउं ॥ १५६ ॥

---

१ बिहु. २ 'कवि' नथी. ३ यद्यपिइं. ४ वहरइ. ५ विषय. ६ मनोर्थ. ७ किमहइ.

[जि०] **जइवि** यद्यपि हु निश्चइं **उत्तमसावयपयडीए** सुजाण श्रावकनइ पावडियालइ हूंतउ चरणकरणि चारित्रपालननइ विषइ असमर्थ, दीक्षा पाली न सकउं **तह वि** तथापिहिं **मज्झ हिअअम्मि** माहरा हियामाहे प्रभुवचन करिवानइ विषइ यतिधर्म पालिवानइ विषइ मनोरथ होज्यो ॥ १५६ ॥

[मे०] जउ किमइ उत्तम श्रावकनी पगथीइं चडिवानइ विषइ असमर्थ छउं, पणि तउ ही प्रभु वीतराग तेहना वचननउं करिवउं तेहनइ विषइ मनोरथ माहरइ हियइ छइ ॥ १५६ ॥

ता पहु पणमिअ चलणे इक्कं पत्थेमि[1] परमभावेणं ।
तुह वयणरयणगहणे अइलोहो मज्झ हुज्ज[2] सया ॥१५७॥

[सो.] **ता पहु०** तेह भणी प्रभु परमेश्वर वीतरागनां चलण[3] नमस्करीनइ एक वानउं प्रार्थउं मागउं साचइं भाविइं । **तुह०** हे स्वामी ! ताहरां वचन रूपियां रत्न लेवानइ विषइ मूहरइं सदैव अतिलोभ हुज्यो । श्रीसिद्धांतवचन उपरि आस्था आदर आवियो । एतलइ काज सरइंसिं[4] ॥ १५७ ॥

[जि.] **ता** तउ पछइ **पहु** प्रभु जिन तेहना प्रणमित नमस्करिया चरण पदकमलि जिणइं मइं एतावता प्रभु तणा चरणकमल नमस्करी प्रभु कन्हां परम भावि मोटी भक्तिइं करी एक वस्तु प्रार्थउं । हे प्रभो ! ताहरां वचनरूपिया रत्न तेह लेवा सर्वदैव मूहूइं अतिलोभ **होज्ज** हुउ ॥ १५७ ॥

[मे.] तउ तेह भणी प्रभु वीतरागना चरण नमीनइ परम भावि करीनइ एक वानूं मागउं । ताहरा वचनरूपीयां रत्न लेवानइ विषइ मूंरहइं सदैव अतिलोभ हुज्यउ ॥ १५७ ॥

---

१ पित्थेमि. २ जि. होज्ज. ३ चरण. ४ सरिसिइ.

[जि.] इसुं प्रभु आगलि प्रार्थी आपणी मनोगत चिंती कहइ ।

अइमिच्छवास[1]निक्किट्ठ[2]भावओ गलिअगुरुविवेआणं ।
अम्हाण कह सुहाइं संभाविज्जंति सुविणे[3] वि ॥ १५८ ॥

[सो.] अति गाढउ[4] घणा कालनु मिथ्यात्वनु वास[5] संस्कार तीणइं करी जे ऊपनु निकृष्ट भाव मइलु परिमाण तीणं करी गलिउ गिउ गुरु विवेक छइ अम्हारउ एहवा अम्ह रहइं सुहणाइमाहि शुभ पुण्य किहां संभावीइ ? अथवा सुख मोक्षसुख किहां संभावीइ ? ते गाढउं दुर्लभ ॥ १५८ ॥

[जि.] इह संसारमाहे एवहां अम्हहूइं **सुमिणे वि** सुहणाई-माहि किसु सुख संभावीइ ? अपि तु न संभावीइ । अम्हे किसा छां ? **मिच्छवास** मिथ्यात्त्वनउ संस्कार तिणि करी निकृष्ट विरउ भाव तेहतउ गलिउ **गुरु** गुरुउ विवेक तत्त्वातत्त्वविचार जेहनउ छइ ॥१५८॥

[मे.] इहां घणा कालनउ मिथ्यात्त्ववासनउ जे निकृष्टभाव तीणइ गलिउ गरुउ विवेक एवहा अम्हे तेहनइं सुइणाइमाहि परम सुख मोक्षसुख किम संभावीयइं ? ॥ १५८ ॥

[सो.] वली कवि कहइ छइ ।

[जि०] वली कांई मनोगत कहइ ।

जं जीविअमित्तं पि हु धरेमि नामं च सावयाणं पि ।
तं पि पहु महाचुज्जं अइविसमे दूसमे काले ॥ १५९ ॥

[सो.] **जं** इसिइ अतिविषमि दुःखमाकालि वर्त्तइ जीवितव्य मात्रई धरीइ अनइ श्रावकनुं नामइ जं धरीइ तेहइ हे प्रभु ! महा आश्चर्य । जेह भणी ए काल अपार अनर्थबहुल अतिधर्मरहित तेह भणी ॥ १५९ ॥

---

१ जि. मे. इह मिच्छवास°. २ जि. °निक्कट्ठ°. ३ जि. मे. सुमिणे. ४ गाढु.
५ 'वास संस्कार...अम्हारउ एहवा' एटलो पाठ सो.नी बीजी प्रतमांथी पडी गयो छे.

[जि.] **हु** निश्चइं जे जीवितव्य मात्रइं **धरेमि** धरउं, **च** वली एहि विषमि दुःखदायकि दुःषमाकालि **सावयाणं पि** श्रावकइं नाम धरउं, हे प्रभो जिन! **तं पि** तेहइ **महाचुज्जं** महा आश्चर्य ॥ १५९ ॥

[मे.] ईणइं कालि जे जीवितव्यमात्र धरउं अनइ हउं वली श्रावकनउं नाममात्रइ वहउं, हे प्रभो! हे स्वामी! ते महाआश्चर्य जे अतिविषम दुक्खमाकालि ॥ १५९ ॥

[सो.] वली गुरु प्रति कवि कहइ छइ।

[जि.] अथ तात्त्विकचिंता कहइ।

परिभाविऊण एवं तह गुरु करिज्ज अम्ह सामित्तं।
जह[1] सामग्गिसुजोगो[2] जह सुलहं[3] होइ मणुअत्तं[4] ॥१६०॥

[सो.] **परिभाविऊण०** इसिउं विमासीनइ सद्गुरु! अम्हारउ स्वामीपणउं तिम अम्हारी सार करिजो, जिम आगलि अम्हे धर्मसामग्रीनु[5] रूडउ योग पामुं अनइ जिम मनुष्यपणउं सुलभ थाइ। जेह भणी सिद्धांतमाहे एह जि बोल गाढा दुर्लभ कहिया छइं—

चत्तारि परमंगाणि दुल्लहाणि अ जंतुणो।
माणुसत्तं सुई सद्धा संजमम्मि अ वीरिअं ॥
(उत्तराध्ययन, अध्ययन ३, गा. १)

तथा—

धन्नाणं विहिजोगो विहिपक्खाराहगा सया धन्ना।
विहिबहुमाणी धन्ना विहिपक्खअदूसगा धन्ना ॥ १६० ॥

[जि.] देव आगलि वीनती करी गुरु आगलि वीनती करइ। हे गुरो! इसुं पूर्वोक्त गाथास्वरूप **परिभाविऊण** परिभावी विमासीनइं **तह** तिम **अम्ह सामित्तं** अम्हारी धणीप **करिज्ज** करिजो।

१ पहु. २ जि. °सुजोगे, मे. °सजोगे. ३ जि. सलहं, मे. सहलं. ४ जि. सम्मत्तं. ५ धर्मसामग्री.

जइ जिम **पहुसामग्गि** जैन सामग्री तेहनइ संयोगि हूंतइ अम्हा रहइं सम्यक्त्व सुलभ हुइ ॥ १६० ॥

[मे.] इसिउं विमासीनइ हे सुगुरु ! अम्हारउं स्वामीपणउं तिम करउ, जिम स्वामीनी सामग्रीनइ जोगिइं अम्हारउं मनुष्यपणउं सफल सुलभ थाइ ॥ १६० ॥

[जि.] अथ श्री**नेमिचंद्र भंडारी** स्वनामांकित गाथा कहइ ।

एवं भंडारिअनेमिचंदरइयाओ कइवि[1] गाहाओ ।
विहिमग्गरया भव्वा पढंतु जाणंतु जंतु सिवं ॥ १६१ ॥

[सो.] एवं० इम इसी रहिइं[2] **नेमिचंद्र भंडारी**-रची कीधीं ए केतलीइ १६० गाथा जे भव्य जीव खरा विधिमार्गनइ विषइ तत्पर छइं ते[3] ए पढउ । एहनु अर्थ जाणउ । सम्यग् आराधीनइ मोक्षपदिं जाउ । अनंत सुख लहउ ॥ १६१ ॥

[जि०] एवं इणि प्रकारि **भांडागारिक** श्री**नेमिचंद्रइं** रचित कीधीं केतलीएक गाथा विधिमार्गरतं भव्य जीव पढउ । तेह गाथानउ अर्थ जाणउ । किम शिव मोक्षि निरुपद्रवि स्थानकि **जंतु** जाउ । भणहार जाणहार पुरुषहूइं महापुण्यफलप्राप्ति हुइ ॥ १६१ ॥

[मे.] इसी परिइं **भंडारी** श्री**नेमिचंद्रिइं** केतलीएक गाथा रची । अनइ जे विधिमार्ग खरी विधि तेहनइ विषइ रत जे भव्य जीव छइं ते ए पढउ । एहनउ अर्थ जाणउ । अनइ आराधतां भणता जाणता शिवपद पामउ । अनंत सुख लहउ ॥ १६१ ॥

[सो.] इति[4] **षष्टिशतकबालावबोधः** समाप्तो विरचितः श्री**सोमसुन्दरसूरि**पादैः सर्वजनोपकाराय ।

१ जि. मे. कहवि. २ रहणइं. ३ 'ते' नथी. ४ सो. नी बीजी प्रतमां मात्र आटली ज पुष्पिका छे—"इति षष्टिशतकबालावबोध समाप्ता ॥ छ ॥ श्रीः ॥ गंथाग्र १०९६ श्लोकाः ॥ श्री ॥ श्री ॥ छ ॥"

क्ष्माखंडामृतकुंडविष्टपमिते १४९६ संवत्सरे श्रीतपा-
गच्छेन्द्रैर्गुरु**सोमसुन्दर**वरैराचार्यधुर्यैरियम् ।
वार्त्ताभिर्विहिता हिताय कृतिनां सम्यक्त्वबीजे सुधा-
वृष्टिः **षष्टिशताह्वयप्रकरणव्याख्या** चिरं नन्दतु ॥

ए प्रशस्तिनउं काव्य महात्मानउं कीधउं । संवत्श[र] १५१३ वर्षे ॥ ग्रन्थाग्रं ९९८ श्लोकाः ॥ छ ॥ **मंडपदुर्गे**

[जि.] इति श्री**षष्टिशतकप्रकरण**वार्त्तारूपवृत्तिः ॥ छ ॥ संवत् १५०१ वर्षे श्रावण वदि १० भौमदिने श्री**खरतरगच्छे** श्री**जिनराजसूरि**पट्टे श्री**जिनवर्द्धनसूरि**स्ततपट्टे श्री**जिनचन्द्रसूरि**पट्टे भव्याम्भोजदिवामणिना संविग्नचूडामणिना बावांच्यार्थ (?) दानचिन्तामणिना सुविहितगुरुचक्रवर्त्तिना महापरोपकारिणा श्री**जिनसागरसूरि**णा बालानामवबोधाय श्री**नेमिचन्द्रभांडागारिक**कृतस्य **षष्टिशतकप्रकरण**स्य स्वरूपा वार्त्तारूपा वृत्तिः कृता । सा च श्रीसंघेन वाच्यमाना चिरं नन्द्यात् ॥ छ ॥ शुभं भवतु ॥ कल्याणमस्तु ॥ लिषितं ॥ छ ॥ श्री ॥ श्री ॥ छ ॥

[मे.] इति श्री**नेमिचन्द्रभंडारी**विरचित**षष्टिशतकविवरणं** । कृतिरियं श्री**वृद्धखरतर**गच्छीय वाचकेन श्री**मेरुसुन्दरेण** ॥ छ ॥

शास्त्रं बालावबोधाख्य**ममरप्रभसूरि**भिः ।
लिखितं निजपुण्याय शोध्यसाहाय्यहेतवे ॥
यदत्र विहितं कर्त्रा स्वबुद्ध्यार्थनिरूपणम् ।
प्रायः प्राकृतबाहुल्यान्न दोषोऽस्माकमत्र च ॥

शुभं भूयात् श्रीसंघस्य ॥ छः ॥ द० ॥ ग्रंथसंख्या श्लोकशत ६०० ॥ छ ॥ छ ॥ श्रीजन........

परिशिष्ट १

नेमिचन्द्र भंडारी-विरचित

जिनवल्लभसूरि गुरुगुणवर्णन

पणमवि सामिय[1] वीर जिण,[2] गणहर गोयम सामि ।
सुधर्म[3] सामिअ न[4] लगि सरणि[5] जुगप्रधान सिवगामि ॥ १ ॥
तित्थुधरणु[6] सु मुणिरयण,[7] जुगप्रधान क्रमि पत्तु ।
जिणवल्लहसूरि जुगपवरो,[8] जसु निम्मलउं चरित्तु ॥ २ ॥
तसु सुहगुरु[9] गुणकित्तणइ, सुरराउ[10] वि असमत्थु[11] ।
तो भत्तिब्भर[12] तरलियउ[13] कह[14] हंउ कहि[15] सकयत्थो[16] ॥ ३ ॥
कह भवसायर दुहपवर,[17] कह पत्तउ मणयत्तु ।
किह जिणवल्लहसूरि वयणु, जाणउ[18] समय पवित्तु[19] ॥ ४ ॥
कह सबोहि[20] मणु[21] उल्लसिउ,[22] कह सुद्धउ संमत्तु[23] ।
जुगसमला[24] नाएण मइं, पत्तउ जिणविह[25] तत्तु ॥ ५ ॥
जिणवल्लभसूरि सुहगुरह,[26] बलि किजिसु[27] गुरराय[28] ।
जसु वयणेण[29] विजाणीयए,[30] तुट्टइ कुमय[31] कसाय ॥ ६ ॥
मूढा मिल्हहु मूढ पहु, लग्गहु[32] सुद्धइ धम्मि ।
जो जिणवल्लहसूरि कहिउ,[33] गच्छउ[34] जिम सिवरंमि[35] ॥ ७ ॥

---

१ सामि. २ जिणु. ३ सुधरम. ४ तुलनि. ५ सरणु. ६ तित्थु रणद्धु. ७ °रयणु. ८ जुगपवर. ९ सुहगुरु. १० सुरराओ. ११ असमत्थो. १२ भत्तिभर. १३ तरलिओ. १४ कहिउ. १५ कहिसुं. १६ हियत्थु. १७ °पवरु. १८ जाणिउं. १९ पवित्तओ. २० सुबोह. २१ मण. २२ उल्लसिय. २३ सामन्नु. २४ °समिला. २५ °विहि. २६ °गुरुहे. २७ किज्जउ. २८ सुरगुरुराय. २९ वयणे. ३० विजाणियइ. ३१ कमय. ३२ लागहु. ३३ कहिओ. ३४ गच्छहुं. ३५ सिवघरंमि.

अथिर[1] माइ पिय बंधवइ,[2] अथीर[3] रिद्धि गिहवासु ।
जिणवल्लहसूरि पय नमउं,[4] तोडउ[5] भवदुह-पासु ॥ ८ ॥

परमपणइ[6] न के वि गुरु निम्मल धम्मह हुंति ।
सव्वि[7] ति सुहगुरु[8] मन्नियहिं,[9] जे जिणवयण मिलंति ॥ ९ ॥

'गुरु गुरु' गायवि[10] रंजियहि,[11] मूढउ[12] लोउ अयाणु ।
न मुणइ जं जिण आण विणु, गुरु हुइ[13] सत्तु समाणु ॥ १० ॥

जिम सरणाइय[14] माणुसहं, कोइ करइ सिरछेउ[15] ।
न मुणइ जं जिणभासियउ,[16] तिम कुगुरह संजोउ[17] ॥ ११ ॥

हुंड[18] विसप्पिणि[19] भसम गुहु,[20] दूसम कालु कलिट्ठु[21] ।
जिणवल्लहसूरि भड्ड नमहु, जिणिउ[22] सत्तु[23] निसिट्ठु[24] ॥ १२ ॥

जा[25] जहिं[26] कुलगुरु आवियउ,[27] ते तहि भक्ति[28] करंत[29] ।
विरला जोइवि जिणवयण,[30] जहिं[31] गुण तहिं[32] रचंति[33] ॥ १३ ॥

हा हा दसम[34] कालबलु, खल-वक्कत्तण जोइ ।
नामेणिइ[35] सुविहिय तणइ, मित्तु वि वयरीय[36] होइ ॥ १४ ॥

तहि[37] चेडाहिव[38] हउं नमउं,[39] सुमणिय[40] परमत्थांह[41] ।
हीयडइ[42] जिणवर[43] इक्कपर, अनु सुद्धउ गुरु[44] जांह[45] ॥ १५ ॥

---

१ अथीर. २ बंधवह. ३ अथिर. ४ नमओ. ५ तोडइ. ६ परमप्पणय. ७ सव्व. ८ दसपुर. ९ मन्नियइं. १० गाइवि. ११ रंजियइं. १२ मूढा. १३ होइ. १४ सरणाईय. १५ शिरछेओ. १६ जिणभासियओ. १७ संजोओ. १८ हुंडा. १९ अवसप्पणि. २० गहु. २१ किलिट्ठु. २२ जेणउ. २३ सुत्तु. २४ नसिट्ठउ. २५ जो. २६ जिह. २७ आइयउ. २८ भत्ति. २९ करंति. ३० जिणवयणु. ३१ जहिं. ३२ तहिं. ३३ रच्यंति. ३४ दूसम. ३५ नामेणइ. ३६ वयरिओ. ३७ तिहि. ३८ चेडाहिवि. ३९ नमओ. ४० सुमुणिय. ४१ परम उछाह. ४२ हियडिइ. ४३ नाहटाजीनी प्रतमां 'जिण विहिक्कु पर' एवो पाठ छे, पण ए लहियानी भूल ज लागे छे. ४४ गुण. ४५ जाह.

जिणि[1] जिणवर[2] पहु हीलियइ, जणु रंजियइ सहासु[3] ।
सो वि सुगुरु पणमंतयह,[4] फूटि[5] न हिया[6] हयासु ॥ १६ ॥

मिरियभवे[7] जिउ[8] वीर जिण[9] इक्क[10] उसत्त[11] लवेण ।
कोडाकोडि सागर भमिउ,[12] किं न मणह[13] मोहेण ? ॥ १७ ॥

तव संजम सुत्तेण सहु,[14] सव्वु[15] वि सहलउ होइ ।
सो वि उसुत्तलवेण सह,[16] भवदुह-लक्खइं[17] देइ ॥ १८ ॥

माया मोह चएह[18] जण, दुलहउ[19] जिणविह[20] धम्म[21] ।
जो जिणवल्लहसूरि-कहिउ,[22] सिग्घ[23] देउ[24] सिवसंमु[25] ॥ १९ ॥

संसउ[26] कोइ म करहु मणि, संसइ होइ[27] मिच्छत्तु ।
जिणवल्लहसूरि जुगपवर,[28] नमहु सु तिजग-पवित्तु[29] ॥ २० ॥

जइ[30] जिणवल्लहसूरि गुरु, नह[31] दिट्ठउ[32] नयणेहिं ।
जुगपहाण तउ[33] जाणीयइ,[34] निच्छइ[35] गुण-चरिएहिं ॥ २१ ॥

ते धन्ना सुकयत्थ नर,[36] ते संसारु[37] तरंति ।
जे जिणवल्लहसूरि तणीए,[38] आण[39] सिरेण[40] धरंति[41] ॥ २२ ॥

तह[42] न रोगु,[43] दोहग्गु नह,[44] तह मंगल कल्लाण[45] ।
जे जिणवल्लह गुरु[46] नमइ,[47] तिन्नि संझ सुविहाण[48] ॥ २३ ॥

---

१ जे. २ जिणवरु. ३ हयासुं ४ पणमंतह ५ कुट्टिल. ६ हियइ. ७ मरिय°. ८ जिओ. ९ जिणु. १० इक्कि. ११ उसुत्तलवेणु. १२ भमिओ. १३ सुणहु, १४ सउ. १५ सव्व. १६ सउ. १७ लक्खइं. १८ चएउ. १९ दुलहउं, २० जिणविहि. २१ धम्मुं. २२ कहिओ. २३ सिग्घं. २४ देइ. २५ शिवसंमुं. २६ संसओ. २७ हुइ. २८ जुगपवरु. २९ त्रिजग-पवित्त. ३० जई. ३१ नय. ३२ दिठओ ३३ जुगपहाणउ. ३४ विजाणियए. ३५ निछई. ३६ नरा. ३७ संसार. ३८ तणिय. ३ आणा. ४० सिरेण. ४१ वहंति. ४२ तेहिं. ४३ रोगो. ४४ तहु. ४५ कल्लाणु. ४६ सूरि. ४७ थुणिहि. ४८ सुविहाणु.

सुविहिय मुणिचूडारयण,[१] जिणवल्लह बहु[२] राउ[३] ।
इक्क जीह किम संथुणउ,[४] भोलउ[५] भत्तिसहाउ[६] ॥ २४ ॥

संपइ ते मन्नावि[७] गुरु, उग्गइ उग्गइ सूरि[८] ।
जो जिणवल्लह पहु[९] कहइ,[१०] गमइ उमग्गु[११] सुदूरि[१२] ॥ २५ ॥

इकि[१३] जिणवल्लह जाणीयइ, सव्वु[१४] मुणियइ धम्मु[१५] ।
अनु[१६] सुहगुरु[१७] सवि मंनियइ,[१८] तित्थु[१९] जि[२०] धरहिं[२१] सुहम्मु[२२] ॥२६॥

इय जिणवल्लह-थुइ भणिय, सुणियइ करइ कल्लाणु ।
देउ[२३] बोहि चउवीस जिण, सासइ[२४] सखनिहाणु[२५] ॥ २७ ॥

जिणवल्लह[२५-अ] कमि जाणियउ,[२६] हिव मइ तासु[२७] सुसीसु[२८] ।
जिणदत्तसूरि जुगपवरो, उद्धरियउ गुरुवंसो ॥ २८ ॥

तिणि निय पइ पुण ठावियउ,[२९] बालउ[३०] सीहकिसोरु[३१] ।
परमइ-[३२]मइगल[३३]-बलदलणु, जिणचंदसूरि मुणि सारु[३४] ॥ २९ ॥

तसु[३५] सुपट्टि हिव गुरु जयउ,[३६] जिणपत्तिसूरि[३७] मुणिराउ[३८] ।
जिणमय-विहि-उज्जोयकरु, दिणयर जिम विक्खाउ[३९] ॥ ३० ॥

पारतंतु विहि विसयसुद्दु, वीरजिणेसर वयणु ।
जिणवइसूरि गुरु हिव कहइ,[४०] निच्छइ[४१] अंनु[४२] न कवणु ॥ ३१ ॥

१ चूडारयणु. २ तुह. ३ गुणराओ. ४ संथुणेउं. ५ भोलओ. ६ भत्तिसुहाओ. ७ मन्नामि. ८ सूर. ९ पउ १० कहहि. ११ अमग्गउ. १२ दूरि. १३ इक्क. १४ सव्वु वि. १५ धम्मुं. १६ अन. १७ सुहगुर. १८ मनियइ. १९ तिंत्थ. २० जिम. २१ धरइ. २२ सुहंमु. २३ देओ. २४ सासय. २५ सोक्खु°. २५-अ नाहटाजीनी वाचनामां 'जिणवल्लह' पछी 'गुरु' शब्द वधारानो छे. २६ जाणियइ. २७ तसु. २८ सुशीसु. २९ ठावियओ. ३० बालओ. ३१ सींह-किसोरु. ३२ पर. ३३ मयगल. ३४ मुणीसरु. ३५ तस. ३६ जयओ. ३७ जिणपतिसूरि. ३८ मुणिराओ. ३९ विक्खाओ. ४० कहओ. ४१ मिच्छइ. ४२ अनुन्न.

धन्न ति[1] पुरवरपट्टणइं, धन्न ति देस[2] विचित्त ।
जिहि[3] विहरइ जिणवइ सुगुरु, देसण करइ पवित्त ॥ ३२ ॥

कवणु[4] सु होसइ दिवसडउ,[5] कवणु[6] सु तिहि सुमुहुत्तु[7] ।
जिहि[8] वंदिसु जिणवइ सुगुरु, निसुणिसु[9] धम्मह तत्तु[10] ॥ ३३ ॥

सल्लुद्धारु[11] करेसु हउ, पालिसु[12] दिढु संमत्तु[13] ।
नेमिचंदु[14] इम वीनवइ,[15] सुहगुरु-गुणगण-रत्तु[16] ॥ ३४ ॥
नंदउ विहि जिणमंदिरइं,[17] नंदउ विहिसमुदाउ[18] ।
नंदउ जिणपत्तिसूरि गुरु, विहि जिणधम्म-पसाउ[19] ॥ ३५ ॥

जिनेश्वरसूरि, जिनप्रबोधसूरि, जिनचन्द्रसूरि, जिनकुशलसूरि, जिनपद्मसूरि, जिनलब्धिसूरि, जिनचन्द्रसूरि, जिनोदयसूरि, जिनराजसूरि, जिनवर्द्धनसूरि, श्रीसागरचन्द्रसूरि । शुभमस्तु ॥ छ ॥

---

१ तइं. २ देश. ३ जहिं. ४ कवण. ५ देसडओ. ६ कवण. ७ समुहुत्त. ८ जहीं. ९ निसुणि. १० तत्त. ११ सल्लुद्धार. १२ सुदड्ढ. १३ सम्मत्तो. १४ नेमिचंद. १५ विनवइए. १६ °रत्त (रत्तो). १७ मंदिरहिं. १८ °समुदाओ. १९ पसाओ.

परिशिष्ट २

नेमिचन्द्र भंडारी-विरचित

पार्श्वनाथ स्तोत्र

भवभयवणगणदहणं दरिद्दरोगारिदुरियनिद्दलणं ।
सिद्धिपुरकयनिवासं सया वि सुमरामि जिणपासं ॥ १ ॥
इह संसारअरन्ने भीमे पडियाण मुद्धजंतूणं ।
तुज्झ विणा जयबंधव सरणं न हु को वि दुहियाणं ॥ २ ॥
तं माया तं च पिया तं सामी बंधवो गुरू देवो ।
तं चिय परमनिहाणं किं बहुणा मज्झ तं इक्को ॥ ३ ॥
न सरामि देवयाओ नो विज्जाओ न मंतमूलीओ ।
जं सामिय तं पत्तो अउव्वविप्फुरियमाहप्पो ॥ ४ ॥
तुह आणाभंगाओ दुहाइं बहुयाइं जाइं जायाइं ।
ताइं तुमं चिय निहणसु अन्नो कइया वि न समत्थो ॥ ५ ॥
जइ वि पराभवठाणं जइ दीणो दुत्थिओ अहं देव ।
तह वि तुह पय सरंतो मन्नामि न को वि अप्प समो ॥ ६ ॥
उल्लसियाइं सुहाइं दुहाइं खीणाइं ताण निब्भंतं ।
जाण मणम्मि विवसिओ विहिणा तं पासजिणनाह ॥ ७ ॥
ता हरसु मज्झ चिंता संतावं माणसम्मि संकंतं ।
विहिजिणसुहगुरुजोगं सिवसुहयं देहि अणवरयं ॥ ८ ॥
इय पासनाहदेवं सरियं सज्जणसुएण अप्पहियं ।
जो तं सरइ तिसंझं सो पावइ वंछियसुहाइं ॥ ९ ॥

भां० नेमिचन्द्रसुश्रावककृतं श्रीपार्श्वनाथस्तोत्रं ॥

'षष्टिशतक'नी प्राकृत गाथाओनी सूचि

[गाथाओनां प्रतीको सामेनो अंक पृष्ठांक सूचवे छे.]

अइमिच्छवासनिकिट्ठ	१५७
अइसयपावियपावा	३४
अजया अइपाविट्ठा सुद्धगुरू	१३०
अज्ज वि गुरुणो गुणिणो	१०९
अप्पा वि जाण वइरी	११८
अम्हाण रायरोसो कस्सुवरिं	१०६
अरिहं देवो सुगुरु सुद्धं	३
अहयं पुणो अहन्नो ता	१३६
अहवा सरलसहावा सुअणा	६६
अहिमाणविसोवसमत्थयं च	१४५
आणारहिअं कोहाइसंजुअं	५९
आरंभजम्मि पावे जीवा	१३
इअरजणसंसणाए धिट्ठा	६०
इअराण वि उवहासं तमजुत्तं	६५
इक्को वि न संदेहो जं	२०
इक्कं पि महादुक्खं	११४
इयराणं ठकुराणं आणाभंगेण	१००
इंदो वि ताण पणमइ हीलंतो	८८
उस्सुत्तभासगाणं बोहीनासो	६१
उस्सुत्तमायरंत वि ठवंति	७६
एगो सुगुरू एगा वि सावगा	१५०
एगं पिअमरणदुहं	१११
एवं भंडारिअनेमिचंदरइयाओ	१५९
कइया होहि दिवसो जइया	१२८
कट्ठं करंति अप्पं दमंति	५०
कहिअं पि सुद्धधम्मं काहि	११३
किच्चं पि धम्मकिच्चं	४९
किरियाइफडाडोवं अहियं	१०२
किवि कुलक्कमम्मि रत्ता	७६
किं भणिमो किं करिमो	४४
किं सो वि जणणिजाओ	८२
कुग्गहगहगहियाणं मूढो	१७
कुगुरु वि संसिमो हं	४५
कुंडचउत्थी नवमी बारसी	७९
को असुआणं दोसो जं	६४
गयविहवा वि सविहवा सहिआ	९०
गिहवावारपरिस्समखिन्नाण	२५
गिहवावारविमुक्के बहुमुणिलोए	६७
गुरुणो भट्टा जाया सड्ढे	३६
छड्डुंति नियजीअं तणं व	८९
जइ जाणसि जिणणाहो	१४८
जइ तं वंदसि पुज्जसि वयणं	१३१
जइ न कुणसि तवचरणं	५
जइवि हु उत्तमसावयपयडीए	१५५
जइ सव्वसावयाणं एगत्तं	५५
जगगुरुजिणस्स वयणं सयलाण	१०१

जत्थ पसुमहिसलक्खा	७८
जम्हा जिणेहिं भणिअं	१३८
जयजंतुजणणितुल्ले अइउदओ	४७
जह अइकुलम्मि खुत्तं	८०
जह कुवि वेसारत्तो	८
जह केइ सुकुलवहुगो सीलं	७५
जह जह जिणंदवयणं सम्मं	६९
जह जह तुट्टइ धम्मो	४६
जह वद्दलेण सूरं महियलपयडं	८१
जं चिअ लोओ मन्नइ तं	१४७
जं जीविअमित्तं पि हु धरेमि	१५७
जं जं जिणआणाए तं चिय	९३
जं न करइ अइभावं	५४
जं वीरजिणस्स जीओ मरिई	१२१
जाण जिणिंदो निवसइ सम्मं	७०
जाणिज्ज मिच्छदिट्ठी जे	१४३
जिणआणाए धम्मो आणारहिआण	९४
जिणआणाभंगभयं	६३
जिणआणा वि चयंता गुरुणो	४३
जिणगुणरयणमहानिहि	३०
जिणधम्मं दुन्नेअं	१३७
जिणपूअणपत्थावे जइ को	९१
जिणमयअवहीलाए जं दुक्खं	७२
जिणमयकहापबंधो संवेगकरो	२८
जिणवयणवियन्नूण वि जीवाणं	११
जिणवरआणाभंगं	१४
जिणवरआणारहिअं वद्धारंता	१६
जे अमुणिअगुणदोसा ते	१०४
जे जे दीसंति गुरू	१३९
जे मन्नेवि जिणंदं	१४९
जे रज्जधणाईणं कारणभूआ	११९
जो गिहकुडुंबसामी संतो	७९
जो जिणआयरणाए लोओ	१४६
जो देइ सुद्धधम्मं सो परमप्पा	१०३
जो सेवइ सुद्धगुरू	५२
तईया अहमाण अहमा	१२०
तह वि हु नियजडयाए	१३५
तं चेव केवि अहमा छलिया	९९
तं जयइ पुरिसरयणं	५६
ता एगो जुगपवरो	१४०
ता जिणआणपरेणं धम्मो	२८
ता जे इमं पि वयणं	१२२
ताण कहं जिणधम्मो	१२३
ता पहु पणमिअ चलणे	१५६
तित्थयराणं पूआ	९२
तिहुअणजणं मरंतं दट्ठूण	११०
तुल्ले वि उअरभरणे	२६
ते न गुरू नवि सड्ढा न	१५१
थोवा महाणुभावा जे	११५
दिट्ठा वि केवि गुरुणो हिअए	१२९
दूरे करणं दूरम्मि साहणं	१२७
दूसमदंडे लोए सुदुक्खसिट्ठम्मि	१३३
देवेहिं दाणवेहिं य सुओ	७
दोसो जिणिंदवयणे संतोसो	६६
धम्मम्मि जस्स माया	४८
न मुणंति धम्मतत्तं सत्थं	११६
न सयं न परं कोवा जइ	६८

नामं पि तस्स असुहं ३२
निअमइअणुसारेणं १३४
निद्दक्खिणगो लोओ जइ कुवि ४४
नो अप्पणा पराया गुरुणो १०७

परिभाविऊण एवं तह गुरु १५८
पहुवयणविहिरहस्सं नाऊणं १५४

बलि किज्जामो सज्जणजणस्स १०८
बहुगुणविज्जानिलओ २३
बंधणमरणभयाइं दुहाइं १५३
बीया य सत्तरहिआ १२०

मज्झठिई पुण एसा ३३
मा मा जंपह बहुअं १२४
मिच्छत्तबहुलयाए २२
मिच्छत्तमायरंत वि ७४
मिच्छत्तसेवगाणं विग्घसयाइं ८५
मिच्छपवाहे रत्तो लोओ ३७
मुद्धाण रंजणत्थं अविहिपसंसं ६२
मूलं जिणिंददेवो तव्वयणं १०५

रे जीव अनाणीणं ७३
रे जीव! भवदुहाइं इक्कं ६
रोसो वि खमाकोसो सुत्तं १८

लच्छी वि हवइ दुविहा ३५
लज्जंति जाणिमो हं ५८
लोअपवाहसमीरणउद्दंडपयंडचंड-
लहरीए ७१
लोअपवाहे सकुलक्कमम्मि ९
लोए वि इमं भणिअं १३२
लोयम्मि रायनीईनायं न १०

वन्नेमि नारयाओ जेसिं ९७
वयणे वि सुगुरुजिणवल्लहस्स १०९
विरयाणं अविरए जीवे १२
वेसाण बंदियाण य ८३

स कहा सो उवएसो तं २९
सप्पे दिट्ठे नासइ लोओ ४१
सप्पो इक्कं मरणं कुगुरु ४२
समयविऊ असमत्था ५३
सम्मत्तसंजुआणं विग्घं ८७
सयणाणं वा मोहे लोआ २४
सव्वंगं पि हु सगडं ११६
सव्वं पि जए सुलहं १४४
सव्वं पि वियाणिज्जइ २१
सव्वो वि अरिहं देवो ३८
संगो वि जाण अहिओ ७७
संपइ दसमच्छेरयनामायरिएहिं १४२
संपइ दूसमकाले धम्मत्थी ११३
संपइ पहुवयणेण वि जाव १५२
साहम्मिआओ अहिओ १४८
साहीणे गुरुजोगे जे न हु ९५
सिरिधम्मदासगणिणा रइयं ९८
सुद्धकुलधम्मजा अवि ९६
सुद्धविहिधम्मराओ वड्ढइ ५१
सुद्धा जिणआणरया केसिं ३९
सुद्धे मग्गे जाया सुहेण ८४
सुरतरुचिंतामणिणो अग्घं ५७
सोएण कंदिऊणं कुट्टेऊणं १११
सो जयउ जेण विहिया ३१
सो न गुरू जुगपवरो १५२

हा हा गुरुअ अकज्जं सामी ४०
हिअयम्मि जे कुसुद्धा १२६

शब्दकोश

शब्दना अर्थ इत्यादिनी पछी नोंधेला अंको अनुक्रमे पृष्ठ अने पंक्ति सूचवे छे. उदाहरण तरीके, **अणलहतउ** शब्द पछी २-१७ ए प्रमाणे अंकनिर्देश छे. अर्थात् ए शब्द पृ. २ उपर १७मी पंक्तिमां छे. १५३-३-१३ ए प्रकारे एक करतां वधु अंकनो निर्देश होय त्यां पहेलो अंक पृष्ठनो अने बीजा बधा अंक पंक्तिओना समजवाना छे. एक ज पृष्ठ उपर कोई शब्द एक करतां वधु वार प्रयोजायानो निर्देश ए रीते करेलो छे.

संक्षेपसूचि नीचे मुजब छे:—

अ.	अव्यय
अनु.	अनुग
अप.	अपभ्रंश
ए. व.	एकवचन
अं. वि.	अंगविभक्ति
का.	काठियावाडी (बोली)
कृ.	कृदन्त
क्रि. वि.	क्रियाविशेषण
ग्रा. गुज.	ग्राम्य गुजराती
च.	चतुर्थी विभक्ति
जू. गुज.	जूनी गुजराती
तृ.	तृतीया विभक्ति
दे.	देश्य
द्वि.	द्वितीया विभक्ति
न.	नपुंसक लिंग
पा.	पालि
पु.	पुरुष
पुं.	पुंल्लिंग
पं.	पंचमी विभक्ति
प्र.	प्रथमा विभक्ति

प्रा.	प्राकृत
फा.	फारसी
ब. व.	बहुवचन
भू. कृ.	भूत कृदन्त
म.	मराठी
मा.	मारवाडी
व. कृ.	वर्तमान कृदन्त
वि.	विशेषण
ष.	षष्ठी विभक्ति
स.	सप्तमी विभक्ति
सर्व.	सर्वनाम
सं.	संस्कृत
सं. कृ.	संबंधक कृदन्त
स्त्री.	स्त्री लिंग
हि.	हिन्दी
हे. कृ.	हेत्वर्थ कृदन्त

अ निश्चयार्थ अव्यय. ७-३. [सं. च > प्रा. य > अप., जू. गुज. इ] जुओ आ शब्दकोशमां इ तथा ई. केटलीक वार पादपूरक तरीके पण प्रयोजाय छे. उदाहरण तरीके—'नयणडां विचि बिहु नीली अ टीली अ करी अ कस्तूरि, आपुं पान संयोगसुं सूडी अ फोफलचूरि; नैवेद्य आगलि नव करी पुत्री अ लागी अ पाइ, अबला आयस मागि अ मया म छंडेसि माई' (वीरसिंहकृत 'उषाहरण,' पं. २३०-३४); वहिली अ करी अ सजाई अ माइ अ धू सिणगारी (एज, पं. ९७०), इत्यादि.

अक्खइ 'कहे छे.' वर्तमान त्रीजो पु. ए. व. ४-११. [सं. आख्याति > प्रा. अक्खइ]

अक्खरु 'अक्षर'. द्वि. ए. व. पुं. ४-११. [सं. अक्षर > प्रा. अक्खर]

अछेरुं 'अचरज.' प्र. ए. व. न. १४२-९. अंगरूप **अच्छेरा** १४३-१. [सं. आश्चर्य > प्रा. अच्छेरय]

अजयणावंत 'जयणा विनाना.' वि. प्र. ब. व. पुं. १३०-१२. जुओ **जयणारहित.**

अजाणिवउं 'अज्ञान.' प्र. ब. व. न. १५२-२, १५३-३-१३. जुओ **जाणं.**

अजूआलूं 'अजवाळुं.' प्र. ए. व. न. १०४-२१. [सं. उज्ज्वलायितम् > प्रा. उज्जलाइअं > अप. उज्जलाइउं > *उज्जुलाइउं > जू. गुज. उजुयालउं, अजुयालउं. सर० गुज. 'ऊजळुं.']

अणलहतउ 'नहि मेळवतो.' व. कृ. प्र. ए. व. पुं. २-१७. अंगरूप **अणलहता** १४३-४ [सं. अन + √ लभ् > प्रा. अणलह]

अणलहिवउं 'नहि मेळववुं ते, अप्राप्ति.' प्र. ए. व. न. १३-१५, १४-९.

अणलाधउ 'अणलाध्यो.' ६५-२. वि. प्र. ए. व. पुं. जुओ **लाधउ.**

अनइ उभयान्वयी. १-६ [सं. अन्यानि > प्रा. अण्णइं > जू. गुज. अनइं, अस्वरित प्रथमश्रुतिलोपथी नइं, अर्वाचीन गु. अने-ने.]

अनीरा ११८-५. जुओ **अनेरा**

अनेथि 'बीजे.' अ. ९-२०. [सं. अन्यत्र > प्रा. अण्णत्थ].

अनेरउ 'बीजो.' वि. प्र. ए. व. पुं. १४-५, ४१-१६, ६०-१३-२०, ६९-७, १०३-१५-२१, १३१-२. **अनेरउं** द्वि. ए. व. न. ४८-१४, ५०-२. वळी जुओ **अनेरइं** तृ. ए. व. ६८-२१; **अनेरइ** स. ए. व. ४३-२२, ७५-११. [सं. अन्यतर > प्रा. अण्णयर] **अनेरउं**नुं उत्तरकालीन **अनेरूं** रुप पण छे. प्र. ए. व. न. ४८-१३. **अनेरे** स. ए. व. न. २८-७. वळी जुओ **अनेरा** १६-१०, २६-६-११, ४०-१, ९७-१३, १०६-११, १०७-४, ११८-२३, १५०-१९, १५३-२१; **अनेरानइ** १२७-९; **अनेराना** ११०-३. अर्वाचीन गुजरातीमां 'अनेरो' शब्दमां 'अनन्य,' 'असाधारण' एवो अर्थ विकस्यो छे ए नोंधपात्र छे.

अभव्य 'मोक्षनो अनधिकारी.' वि. प्र. ब. व. पुं. ११०-१७. आ जैन धार्मिक परिभाषानो शब्द छे.

अभावडि 'अभाव, अणगमो.' द्वि. ए. व. स्त्री. १३३-१९ [सं. अभाव + अप. स्वार्थिक प्रत्यय डि].

अमकइ 'अमुकमां.' वि. स. ए. व. न. ९१-११. [सं. अमुके, अप. अमुकइं].

अमुनित 'अज्ञात'. भू. कृ. द्वि. ब. व. पुं. १०५-४. [प्रा. मुण 'जाणवुं'].

अयाणु 'अजाण.' वि. प्र. ए. व. पुं. १६२-५. [सं. अज्ञानिन् > प्रा. अजाणि, अजाण].

अलगउ 'अलग, अळगो.' वि. प्र. ए. व. पुं. १४९-२-१३. [सं. अलग्नकः > प्रा. अलग्गओ].

असमत्थु 'असमर्थ.' वि. प्र. ए. व. पुं. १६१-५. [सं. असमर्थ > प्रा. असमत्थ].

असमाधि 'अशान्ति, अस्वस्थता.' प्र. ए. व. स्त्री. ११४-२०.

अहिनाण 'एंधाण.' द्वि. ए. व. न. ९३-२३. **अहिनाणि** तृ. ए. व. न. ९३-४. [सं. अभिज्ञान > प्रा. अहिण्णाण]

अंधण 'अंधापो.' द्वि. ए. व. न. १०९-१९. 'अंधण'नुं पाठान्तर 'अंधपणउं' मळे छे, एटले एना अर्थ विषे संदेह रहेतो नथी.

आगि 'आग.' प्र. ए. व. पुं. ६५-१२. [सं. अग्नि > प्रा. अग्गि > जू. गुज. आगि. एनुं लघु प्रयत्न 'य'कारवाळुं रूप 'आग्य' थया पछी अर्वाचीन गुजराती 'आग' थाय छे.]

आचाम्ल 'व्रत विशेष, जेमां लूखुं सूकुं खावानुं होय छे,' गुज. 'आंबेल.' द्वि. ए. व. न. ५-८. [प्रा. आयंबिल]. आ जैन धार्मिक परिभाषानो शब्द छे.

आणिउ 'लावेलो, गुज. 'आण्यो.' भू. कृ. द्वि. ए. व. पुं. १३८-१४. [सं. आनीतः > प्रा. आणिओ]

आधाकर्मी 'साधु माटे खास तैयार करेलुं भोजन, जे जैन साधु माटे लेवानुं निषिद्ध छे.' १३८-१५. वि. प्र. ए. व. पुं. [आ शब्दनुं प्राकृत रूप आहाकम्मिय. ए जैन धार्मिक परिभाषानो शब्द छे.]

आनंद भगवान महावीरना दस सुप्रसिद्ध उपासक श्रावकोमांनो एक. प्र. ए. व. पुं. १५५-५-१२.

आपण 'पोतानुं.' सर्व. द्वि. ए. व. न. ८१-२. **आपणई** तृ. ए. व. न., ७५-४, ७८-८. वळी जुओ **आपणउ** ६९-७, ११८-३-४. **आपणउं** ७५-३, ८९-१५, १०५-२१, ११७-१८, ११८-८; **आपणा** ७०-३, ११३-७, ११४-३, ११८-१६-१९, १५२-१, १५५-१५; **आपणां** ११९-१२; **आपणी** १३५-१८, १३६-१, १५४-१६; **आपहणी** ७३-१३-१४, ७८-६; आ छेल्ला शब्द साथे गुज.

'आफणी,' 'आफणिये' ('पोते') शब्द सरखावो. [सं. आत्मनः > प्रा. अप्पणो. अर्वाचीन गुजरातीमां थयेलो आ शब्दनो अर्थविस्तार नोंधपात्र छे, केम के 'आपणुं' एटले 'पोतानुं' तेम ज वक्ता समेत बीजां अनेकनुं.]

आपणपउ 'पोतानो.' सर्व. द्वि. ए. व. पुं. ११८-११. **आपणपउं** 'पोतानी जात.' द्वि. ए. व. न. ५१-१-५, ६०-१६, ७६-९-११, १०६-१०, १११-२-९, ११२-६, १२६-१७, १४६-५-१९, १४७-२, १५५-४. **आपणपइं** तृ. ए. व. न. ६९-१२, ७३-१७, ७८-१-२. वळी जुओ **आपणपा** ९७-१३, ९९-१२; **आपण-पानइं** १४०-११; **आपणपामाहि** १५५-४-६-१३; **आपणपू** १४६-१३; **आपणपूं** ७३-७ [सं. आत्मन् + आत्मन् > प्रा. अप्पण + अप्प. अथवा सं. आत्मत्व > प्रा. अप्पप्प].

आराधण्हार 'आराधना करनार.' द्वि. ए. व. पुं. ५७-१९. [सं. आराधन + कार > प्रा. आराधण + आर > 'ह'ना प्रक्षेपथी आराधणहार. सर० सरजन-हार, खेवनहार, तारणहार, इत्यादि. 'ह'नो लोप थतां 'आराधनार,' इत्यादि. आ ज ग्रन्थमां मूल पाठमां जुओ **करणहार** ६-१०, ९-१४, ६५-४, ८२-१६, ९२-१६, ११३-९, १३०-२३, इत्यादि. वळी **करन्हार** एवुं एमांथी व्युत्पन्न थयेलुं रूप पण छे (८५-२०), जेमांथी अर्वाचीन गुजराती 'करनार' आवे. वळी जुओ '**कहणहार**' (= कहेनार) ४-८, २९-४, ८४-९; **कहिणहार** ३७-१२, २२-१२. **खाणहार** (= खानार < प्रा. खाअणआर < सं. खादनकार) १८-७; एमांथी ज व्युत्पन्न थयेल **खाण्हार** १७-१७. **चालणहार** (= चालनार) ९-१५. **जाणणहार** (= जाणनार) ९३-१०. **जाणहार** (= जानार) ४७-२०, १५९-१६. **दिण्हार** (= देनार) १०३-१७, **देणहार** ३७-६, ८४-९, १०३-९; **देनहार** ५७-१३; **देन्हार** २४-४. **नासणहार** (= नासनार) ४१-१७. **प्रकासण्हार** (= प्रकाशनार) १०५-२०. **पालण्हार** (= पाळनार) ११५-६. **पूरण्हार** (= पूरनार) १०३-१३. **प्रेरण्हार** (= प्रेरणा करनार) १०३-१८. **बोलणहार** (= बोलनार) २४-११, ६१-८. **भणहार** (= भणनार) १५९-१६. **लेणहार** (= लेनार) ३७-५. **सांभलणहार** (= सांभळनार) ३७-११, २९-१६. **सेवणहार** (= सेवनार) ८६-१९. **हउणहार** (= होनार, थनार) ६०-१९.

आलोइ 'आलोचना करे छे.' वर्तमान त्रीजो पु. ए. व. ६९-४. [सं. आलोच् > प्रा. आलोअ. प्रायश्चित्त करवा माटे पोताना अपराध गुरुने कहेवा ते, आलोचना.] आ जैन पारिभाषिक शब्द छे.

आसोजी 'आसो मासनी.' ष. ए. व. स्त्री. ७९-४. [सं. अश्वयुक् > प्रा. अस्सोअ > गुज. आसो.] 'जी' अहीं, कच्छी अने सिन्धीनी जेम, षष्ठीना प्रत्यय तरीके छे ए. नोंधपात्र छे.

आस्ता 'आस्था, श्रद्धा.' प्र. ए. व. स्त्री. १४०-५-७, ३८-८. द्वि. ए. व. स्त्री. ३८-८. [सं. आस्था]

आहणतउ 'घा करतो.' व. कृ. प्र. ए. व. पुं. १००-१. [सं. आहन् > प्रा. आहण]

आहणिउ 'घा करवामां आवेलो.' भू. कृ. प्र. ए. व. पुं. ११२-४ [सं. आहन् > प्रा. आहण]

आंग 'अंग, जैन आगमसाहित्यनो एक विभाग.' द्वि. ए. व. न. ५-९-११. [सं. अङ्ग > (अनुनासिक कोमल थवाथी) आंग]. आगमसाहित्यमां 'अंग' तरीके ओळखाता बार ग्रन्थो हता, पण एमांनुं बारमुं अंग 'दृष्टिवाद' लुप्त थयुं छे; अगियार अंगो विद्यमान छे.

आंगमइ 'स्वीकारे छे, भोगवे छे.' वर्तमान त्रीजो पु. ए. व. ८९-४. **आंगमी** सं. कृ. १२४-१. **आंगमीनइ** सं. कृ. १२३-७-८. [सं. अङ्ग +√ गम् उपरथी. जुओ **आंगीगमइ**.]

आंगीगमई 'स्वीकारे छे, भोगवे छे.' वर्तमान त्रीजो पु. ए. व. ८९-१६. आ रूप 'आंगी' (अंगमां) अने 'गमइ' (जाय छे) एवा बे शब्दोनुं बनेलुं छे, अने ते उपर सूचवेली व्युत्पत्तिनुं समर्थन करे छे. जुओ **आंगमइ**.

आंगे 'अंगो वडे.' तृ. ब. व. न. ११६-६. [सं. अङ्ग > प्रा. आंग].

इ निश्चयार्थ अव्यय. केटलीक वार पादपूरक तरीके पण प्रयोजाय छे. ६-७, ७-१६, ८-१२-१३-१५, ९-११-१७, १०-९-१५-१८-१९-२१, १५-९, १६-५, १७-२, १८-१०-२२, १९-१५-१७-१८, २०-५, २१-१-५-१९, २२-३-५-९-१३-२०, २३-२-५-८, २४-१-७-१२, २६-१२, २७-१-४-९-१८, २८-६, २९-६, ३३-३, ३९-१, ४३-१७, ४६-१८, ४९-१९-२१, ५७-७-२०, ५९-८, ६४-१२, ६५-२-१२-१९, ६७-४, ६८-८, ७१-८-१०, ७४-५-२०, ७७-१२, ८१-१-१३-२०, ८२-१६, ८४-३-७, ८५-४, ८७-१, ८९-११, ९०-६-७-८-१५-२०, ९१-१-३-४-१३-१४, ९२-१, ९३-९, ९५-५-८, ९६-१८-२३, ९८-३, १०२-११, १०४-१७, १०७-७, १०८-७-८, १०९-१-६, १११-५, ११२-१८, ११३-७,

११४-३, ११५-६, ११७-६-१२, १२९-१०, १४२-४, १४३-१२-१४, १४४-३, १४५-१५, १४७-१२, १४९-१४, १५५-२१, १५७-२१, इत्यादि. जुओ अ.

इकि 'एक.' वि. प्र. ए. व. पुं. १६४-५. [सं. एक]

इक 'एक.' वि. तृ. ए. व. पुं. १६३-३, १६४-२. [सं. एक]

इस्यउ 'आ प्रकारनो.' वि. प्र. ए. व. पुं. ७३-१०. द्वि. ए. व. १४०-२२. वळी जुओ **इसी** २४-६; **इसुं** ६५-६, ६६-३, १५७-१. [सं. ईदृशिक > पा. ईदिस > प्रा. ईइस > जू. गुज. इसिउ]

इं निश्चयार्थ अव्यय. केटलीक वार पादपूरक तरीके पण प्रयोजाय छे. ५-८-१२, १८-१४-१५, ७६-४, ८१-२२, ८४-४, ८६-१२, ८७-६. जुओ **अ.**

ई निश्चयार्थ अव्यय. केटलीक वार पादपूरक तरीके पण प्रयोजाय छे. ८-२-२०, १९-८-९-११, २३-५-७-१६, २४-८, २८-१८, ३४-२२, ५०-५, ६४-१७-१८, ६६-१३, ६७-१७, ६९-७, ७४-११, ७५-१३, ७६-८-११, ८७-१६, ८८-१६, ९०-१५-१७-१९, ९७-९, ९८-१०-१४, ९९-१९, १०१-१६, १०३-१, १०७-२-४, १०८-२, ११५-१, ११७-१२, ११८-१८, १२९-१६-१८-२०, १३३-३, १३७-१५, १३९-९, १४१-१०, १४२-१८-२१, १४५-१९, १४७-१४, १५४-५, १५७-२१, १५८-१-२, इत्यादि. जुओ **अ.**

ईणं 'एनाथी.' सर्व. तृ. ए. व. न. ९१-१४, ९९-१३, १३०-१७ [सं. एतेन > प्रा. एएण > जू. ईण. वळी जू. गुज. मां 'ईणइं' एवुं रूप पण मळे छे, जेनो आ 'ईणं' संक्षेप छे. अर्वाचीन. 'गुज. ' एणे,' लोकबोलीमां (खास करी उत्तर गुजरातमां) 'एण.' आ छेल्ला शब्दना अंतिम 'ण'नो अकार प्लुत छे.]

ईहइ 'इच्छे छे.' वर्तमान त्रीजो पु. ए. व. ४-११. [सं. √ ईह्]

उषाणउ 'कहेवत.' द्वि. ए. व. पुं. १४६-१४. दीर्घ 'ऊ' वाळुं रूप **ऊखाणउ** पण मळे छे-प्र. ए. व. १०३-१. [सं. उपाख्यान > प्रा. उवक्खाण. अर्वाचीन गुज. 'उखाणुं,' म. 'उखाणा.' सोळमा शतकमा थयेलो गुजराती कवि मांडण पोताना 'प्रबोधबत्रीसी'मां प्रयोजेली बहुसंख्य कहेवतोने 'उखाणा' कहे छे. जेमके-'**उखाणा** बहु आदर करी, जोयो अर्थ विधि विस्तरी' (पं. ६४१). वळी हाथप्रतमां ए काव्यनो 'मांडण बंधाराना उखाणा' तरीके निर्देश छे. अर्वाचीन गुज. मां 'उखाणुं'नो 'समस्या' एवो अर्थ वधारे प्रचलित छे.]

उज्जोयकरु 'प्रकाश करनार.' वि. प्र. ए. व. पुं. १६४-१४. [सं. उद्योतकर]

उदासन 'तटस्थ.' वि. प्र. ए. व. पुं. १४१-५. [सं. उदासीन]

उपायनां 'मानता, आखडी.' प्र. ब. व. न. ६-१७. [सं. उपायन]

उमग्गु आडो मार्ग.' द्वि. ए. व. पुं. १६४-४. [सं. उन्मार्ग > प्रा. उम्मग्ग]

उलषी 'ओळखीने.' सं. कृ. १४१-२०. [सं. उपलक्षयति > प्रा. उवलक्खइ उपरथी]

उलिइ 'पेलामां,' का. 'ओल्यामां.' सर्व. स. ए. व. १५०-२०. [व्युत्पत्ति निश्चित थई शकी नथी.] जुओ **ओल्या.**

ऊकांटउ 'रोमांच.' द्वि. ए. व. पुं. ९८-४-१८. [सं. उत्कण्टकः > प्रा. उक्कंटउ]

ऊखेली 'उखेडीने.' सं. कृ. १२५-४. [प्रा. उक्खाल < सं. उत्क्षाल्]

ऊतारणउं 'ऊतारणुं, ऊतारीने फेंकी देवुं ते.' द्वि. ए. व. न. १०८-१४. **ऊतारणइं** तृ. ए. व. १०८-२२. [सं. उत्तारणकम्].

ऊपहरउं 'अलग,' गुज. 'ऊफरुं.' अनुग. ६-१८. [जू. गुज. उपर + हरउं? जो एम होय तो आ 'हरउं'ने चतुर्थी अने षष्ठीना अनुग 'रहइं'नुं रूपान्तर गणवुं जोईए.]

ऊभति 'खराब भात-चित्रामण.' स. ए. व. स्त्री. ४६-३. [सं. उद् + भक्ति > प्रा. ऊभत्ति. सर० गुज. 'भात्य,' 'भात.']

ऊलखतउ 'ओळखतो.' व. कृ. प्र. ए. व. पुं. १४०-३. जुओ **उलषी.**

ओठंभ 'आलंबन.' द्वि. ए. व. न. १४४-२. [सं. अवष्टम्भ > प्रा. अवट्ठंभ]

ओलंभउ 'उपालंभ,' गुज. 'ओळंभो.' द्वि. ए. व. पुं. १४६-८, १४८-१९. [सं. उपालम्भ > प्रा. उवालंभ].

ओल्या 'पेला.' अंगरूप. १५०-२०. जुओ **उलिइ.**

कइजिनइ 'कोइकना ज.' सर्व, स. ए. व. न, ४-१. निश्चयार्थ अव्यय 'जि' अहीं 'कइ' सर्वनाम अने 'नइ' प्रत्ययनी वचमां आवेलो छे ए नोंधपात्र छे. खास करी जूना गुजराती गद्यमां आ प्रकारना संख्याबंध प्रयोगो मळे छे.

कउतिग 'आश्चर्य.' प्र. ए. व. न. ८५-१४. [सं. कौतुक]

कडकडता 'शुद्ध, निर्दोष.' व. कृ. प्र. ब व. पुं. १०९-१४. आ ज अर्थमां जुओ **कडकडा** १०९-१४.

कन्हइ 'पासे,' गुज. 'कने.' सप्तमीनो अनुग. २७-१५, २८-१२-१३, ५२-२२, ५३-९, ९५-१८. **कन्हइं** २९-१५, ३०-१२, १२२-११. **कन्हलि** ११-१५, २८-१४-१७, २९-११. **कन्हां** १५६-१८. [सं. *कर्णस्मिन् > अप. कण्णहिं > कन्हइ. कन्ह + ल (स्वार्थिक प्रत्यय) + इ = कन्हलि. 'कन्हां'मां सप्तमीनो 'आं' प्रत्यय छे. अर्वाचीन गुजराती 'कने' अथवा 'कणे' = पासे सं. कर्णे > प्रा. कण्णे उपरथी छे.]

कर्मइजिनइ 'कर्मने ज.' द्वि. ए. व. न. ६५-१. **कर्मइजिनउं** 'कर्मनुं ज.' ष. ए. व. न. ११०-१०. 'कर्म' नाम अने एना प्रत्ययनी वचमां 'इ' अने 'जि' एवा बे अव्ययो आवे छे ए नोंधपात्र छे. जुओ **कइजिनइ**.

कलिट्ठु 'क्लिष्ट, हलको.' वि. प्र. ए. व. पुं. १६२-९. [सं. क्लिष्ट > प्रा. किलिट्ठ]

कहं 'तुं कहे (छे).' वर्तमान बीजो. पु. ए. व. १४६-१३.

कादम° 'कादव.' स. ए. व. पुं. ८१-२. [सं. कर्दम > प्रा. कद्दम. गुजरातीनी केटलीक बोलीओमां हजी 'कादम' बोलाय छे.]

कुउण 'कोण,' ग्रा. गुज. 'कुण.' सर्व. प्र. ए. व. पुं. १५०-८. [सं. कः पुनः > प्रा. कउण > अर्वाचीन गुज. 'कोण.'] '**कउण**' एवुं जू. गुज.मां व्यापक रीते प्रचलित रूप पण वारंवार मळे छे—४५-७, ५६-५-९, ५७-४, ६४-७-२१, १५०-१२, इत्यादि. **कुण** पण छे–१०८-२, १३५-१४, १५०-३, इत्यादि.

कूतिरउ 'कूतरो.' द्वि, ए. व, पुं. १८-७. **कुतिरानइ** 'कूतराने (मुखे).' स ए. व. पुं. १८-२. [सं. कुक्कुर > प्रा. *कुत्तुर. जो के कुक्कुर शब्द ज आर्येतर मूळनो होय ए संभवे छे. अहीं 'क'नुं 'त'मां परिवर्तन थाय छे ए साथे सरखावो 'कुकु,' 'तुतु' जेवा गुज. शब्दो. साहित्यिक प्राकृतमां पण 'कुत्त' शब्द छे.]

कुभति 'खराब भात-चित्रामण.' द्वि. ए. व. स्त्री. ४५-१८. [सं. कुभक्ति > प्रा. कुभत्ति] जुओ **ऊभति.**

कूकर 'कूतरो.' द्वि. ए. व. पुं. १७-१७. [सं. कुकुर] सोमसुन्दरसूरि आ शब्दनो 'भुंडीउ' (भुंड) एवो अर्थ करे छे, एटले ए अर्थ पण प्रचलित हशे एम गणवुं जोईए.

केडाइतपणउं 'अनुयायीपणुं.' द्वि. ए. व. नं. ७५-१३. वळी जुओ **केडिलु** 'पाछळनो,' द्वि. ए. व. पुं. ७९-१२. ['केड,' 'केडी,' 'केडो' वगेरे शब्दोनी व्युत्पत्तिने सं. कटि साथे संबंध हशे ?]

कोडि 'करोड.' द्वि. ए. व. स्त्री. ९१-१०. [सं. कोटि > प्रा. कोडि. एमां 'र'नो प्रक्षेप थतां जू. गुज. 'क्रोडि' अने अर्वाचीन गुज. 'क्रोड' अने 'करोड.'] वळी जुओ **कोडाकोडि** 'एक करोडने एक करोडे गुणवाथी थाय एटली संख्या.' द्वि. ए. व. स्त्री. १२१-२१, १२२-१३-१६, १६३-४.

क्षप 'श्रम.' द्वि. ए. व. स्त्री. १२६-२०. **क्षपइ** 'खपावे छे, दूर करे छे.' वर्तमान त्रीजो पु. ए. व. १२७-१५. **क्षपीनइ** 'खपावीने.' सं. कृ. ८७-९. [सं. √ क्षप् उपरथी] जुओ **खप.**

खइर 'खेरनुं झाड.' प्र. ए. व. पुं. १०३-१५. [सं. खदिर > प्रा. खइर.]

खप 'श्रम, प्रयत्न.' द्वि. ए. व. स्त्री. १२६-८-९, १३४-१८. 'खप'नो 'उपयोग, जरूर' एवो तुलनाए अर्वाचीन अर्थ आमांथी निष्पन्न थयेलो छे. जुओ **क्षप.**

खरड तृ. ए. व. पुं. ५४-१४. [मात्र एक ज प्रयोग उपरथी आ शब्दनो स्पष्ट अर्थ समजातो नथी, पण सन्दर्भ जोतां 'खरड'मां निकृष्ट कोटिनी व्यक्तिनो भाव रहेलो छे.]

खाणहार 'खानार.' प्र. ए. व. पुं. १८-७. [सं. खादन + कार > प्रा. खाअणआर.] आ प्रकारना अन्य प्रयोगो माटे जुओ **आराधणहार** शब्द नीचे.

खुंट 'निरंकुश माणस.' तृ. ए. व. पुं. ५४-१३. ['सांढ' ए अर्वाचीन अर्थ लक्षणाथी आव्यो जणाय छे.]

षेपइं 'फेंके छे.' वर्तमान त्रीजो पु. ब. व. ४५-९. [सं. क्षेप > खेप. जूनी हाथप्रतोमां लखेला 'ष'नो उच्चार घणुं खरुं 'ख' करवानो होय छे.]

गणहर ‘गणधर, महावीरना पट्टशिष्य.’ द्वि. ए. व. पुं. १६१-१. [सं. गणधर]

गरुउ ‘मोटो,’ गुज. ‘गरवो.’ वि. प्र. ए. व. पुं. १५७-१४. **गुरुउ** प्र. ए. व. पुं. १५७-१२. **गुरया** प्र. ब. व. पुं. ७१-२२. **गरुयाइंना** ‘मोटाओना पण.’ ष. ब. व. पुं. ७२-६. [सं. गुरुकः > प्रा. गुरुओ, गरुओ]

गरूयडि ‘मोटाई.’ द्वि. ए. व. स्त्री. ५६-१२. [सं. गुरुक > प्रा. गरुअ + (अप. स्वार्थिक प्रत्यय) डि]

गाह ‘गाथा.’ द्वि. ब. व. स्त्री. ६०-३-५. **गाहइं** ‘गाथामां’ स. ए. व. स्त्री. १-१०. **गाहे** ‘गाथाओ वडे’ तृ. ब. व. स्त्री. ५२-१३-१६, १५५-१४. **गाहां** ‘गाथामां.’ स. ए. व. स्त्री. १३०-१७. [सं. गाथा > प्रा. गाहा]

गुणता ‘पुनरावृत्ति करता, भणता,’ अर्वाचीन गुज. ‘गणता.’ व. कृ. प्र. ब. व. पुं. ५-१२. **गुणतां** व. कृ. प्र. ए. व. पुं. ३-९. **गुणिवउं** ‘गणवुं-भणवुं.’ द्वि. ए. व. न. ५-२०.

गुरां ‘गुरुओने.’ द्वि. ब. व. पुं. १४५-८-२०.

ग्यउ ‘गयेलो.’ भू. कृ. प्र. ए. व. पुं. ९०-११. [सं. गतः > प्रा. गओ > अप. गिउ. का. ‘गियो,’ अर्वाचीन गुज. ‘ग्यो.’] वळी जुओ **गओ** ‘गयो.’ भू. कृ. प्र. ए. व. पुं. ८२-१९. **गिउ** ‘गयो.’ प्र. ए. व. पुं. ८२-१३. द्वि. ए. व. पुं. ८-१५.

ग्रहणा ‘घराणुं, अडाणुं.’ अं. वि. ए. व. न. १६-१२. [सं. ग्रहणकम्]

घातइं ‘नाखे छे.’ गुज. ‘घाले छे.’ वर्तमान त्रीजो पु. ब. व. १७-१८, १८-८, २५-७-८, ४५-५, १११-२०. **घातिउ** ‘नाख्यो, घाल्यो.’ भू. कृ. प्र. ए. व. पुं. ७९-१३-१९. [प्रा. घत्त ‘फेंकवुं.’]

चउग्गइ ‘देव, मानव, नारक अने तिर्यंच ए प्रमाणे चार प्रकारनी गति.’ पं. ए. व. स्त्री. ४-११. [सं. चतुर्गति > प्रा. चउग्गइ]

चडवाइजिनी ‘चढवानी.’ ष. ए. व. स्त्री. १४३-१३. ‘इ’ अने ‘जि’ ए बे अव्ययो नाम अने प्रत्ययनी वचमां आवी गया छे.ए नोंधपात्र छे. [प्रा. √ चड. संस्कृतमां एक चट् क्रियापदनो प्रयोग छे खरो, पण ए प्राकृत उपरथी लेवायुं होवानो संभव वधारे छे.]

चलुइ 'चांगळाथी.' तृ. ए. व. न. ८६-६. [सं. चुलुकेन > अप. चुलुअइ]

चाड 'दुर्जन, कपटी.' प्र. ए. व. पुं. ६७-१३. [दे. चाड]

चाही 'जोईने.' सं. कृ. १३८-१४. [प्रा. चाह 'इच्छवुं.' जूनी गुजरातीमां 'चाह'नो प्रयोग 'जोवा'ना अर्थमां छे—'अखा आणी मंदिरिमाहि, चित्रसालि परि परिनि **चाहि**' (वीरसिंहकृत 'उषाहरण,' पंक्ति ३३८); चतुरपणूं अति **चाहवा** नारि जंपिइ-नाह' (ए ज, पंक्ति ६००). सरखावो अर्वाचीन गुजराती 'चाहन' (सौ जुए तेम, खुल्ली रीते), 'चाहीने' (जाणी जोईने), इत्यादि. अलबत्त, 'चाहवुं'नो 'इच्छवुं' ए अर्थ पण जूनी गुजरातीमां छे ('सम **चाहु** सारुं ए हाथ, दीइ न जां को दूजण बाथ'—वीरसिंहकृत 'उषाहरण,' पंक्ति १०५), अने अर्वाचीन गुजरातीमां तो ए अर्थ सामान्य छे.]

चिणी 'चणेली' (भींत.) भू. कृ. प्र. ए. व. स्त्री. १२५-१०. [सं. चिनोति > प्रा. चिणइ उपरथी चिण > चण क्रियापद व्युत्पन्न थयेल छे.]

छद्मस्थ 'अ-सर्वज्ञ.' प्र. ए. व. पुं. ६०-२१. [सं. छद्मस्थ. केवली-सर्वज्ञ न होय ते बधा छद्मस्थ कहेवाय. आ जैन पारिभाषिक शब्द छे.]

छाला 'बकरा.' अं. वि. ब. व. पुं. ५८-२०, ७९-४. [सं. छागल > प्रा. छाअल.]

छेडहइ 'छेडे.' स. ए. व. पुं. १४०-१. [सं. छेद > प्रा. छेअ > अप. छेह. स्वार्थिक प्रत्यय 'ड' तथा सप्तमी प्रत्यय 'इ' लागतां छेहडइ, व्यत्ययथी छेडहइ. एनुं पाठान्तर 'छेहडइ' मळे छे ए नोंधपात्र छे.]

छेहनउं 'नुकसाननुं.' ष. ए. व. न. २१-१८. [व्युत्पत्ति माटे जुओ **छेहडइ.** बन्ने शब्दोनी व्युत्पत्ति एक ज मूळमांथी होवा छतां बन्नेनो विभिन्न अर्थ-विकास ध्यान खेंचे छे.]

छोह° 'चूनानी छो.' स. ए. व. स्त्री. १२५-७. **छोहि** प्र. ए. व. स्त्री. १२४-११, १२५-११. **छोहि°** तृ. ए. व. स्त्री. १२५-१०. [सं. सुधा > प्रा. छुहा, छोहा.]

जमलउ 'साथे.' अ. १०२-४. [सं. यमल > प्रा. जमल. जूनी गुजरातीमां अराढमा सैका सुधी 'जमलउ-जमलो'नो प्रयोग छे. सर० म. 'जवळ' = पासे.]

जमारउ 'जन्मारो.' द्वि. ए. व. पुं. ७-१५. [सं. जन्म + कार > प्रा. जम्मआर]

जयणारहित 'हिंसा टाळवाना प्रयत्नथी रहित.' वि. प्र. ए. व. पुं. १३१-४. [सं. यतनारहित] जुओ **अजयणावंत.**

जाषल° 'यक्ष.' ष. ए. व. पुं. ८३-९. स. ए. व. पुं. ८३-१६. [सं. यक्ष > प्रा. जक्ख > अप. जाख (ष) + स्वार्थिक 'ल.' जुओ पाल्हण कविकृत 'आबुरास' (सं. १२८९)ने अंते—'राखइ जाषु जु आछइ खेडइ, राखइ ब्रह्मसंति मूंढेरइ.'] जू. गुज.मां अन्यत्र थाय छे तेम, अहीं पण 'ष'नो उच्चार 'ख' करवानो छे.

जाण 'ज्ञानी.' प्र. ए. व. पुं. ९३-१० **जाणनी** ष. ए. व. पुं. ८०-१८. [सं. जानन् > प्रा. जाणं. सर० गुज. 'अजाण.']

जाणं ('तुं) जाणे छे.' वर्तमान बीजो पु. ए. व. १४९-१.

जाणिवउ 'जाणवो.' विध्यर्थ कृ. प्र. ए. व. पुं. ६९-६-१५. **जाणिवउं** विध्यर्थ कृ. प्र. ए. व. न. ८०-६, ८६-६. [सं. जानाति > प्रा. जाणेइ, जाणइ]

जान 'वाहन.' द्वि. ए. व. न. ३-७ [सं. यान. सर० गुज. (वरनी) 'जान.' आ ग्रन्थमां प्रयोजायेली 'जान' शब्दमां केवळ 'वाहन' ए अर्थ उपरांत समारंभपूर्वक समूहमां जवानो अर्थ पण छे ए स्पष्ट जणाय छे.]

जि निश्चयार्थ अव्यय. अर्वाचीन गुज. 'ज.' ६-१४, ७-३-१६, ९-२०, १०-९-१५-१८, १५-९, १६-१, १८-२२, १९-१५, २०-५-९, २१-२-१९, २५-१७, २६-९, २७-२-११, २८-७-११-१२, २९-४, ३१-१-१२-२०, ३४-१०-११-१७, ४६-१८, ४९-१४-१७-१९-२०-२१, ५०-८-९-२१, ५३-१८, ५७-१२, ५९-८, ६०-१२, ६२-२१, ६३-१, ६५-१, ६७-४, ७०-४-५-१७-१९, ७३-७, ७७-८, ८१-१, ८३-१, ८४-७, ८६-११, ९१-१३, ९२-२-४-११, ९३-९, ९४-१३, ९५-५-८, १०१-४, १०४-१७, १०७-७-९, १०८-८, १०९-१-७, ११४-३, ११५-६, ११७-६, १२६-१, १३५-१६, १३६-९, १३७-१७, १३९-११, १४०-७, १४१-१०, १४७-११, १४९-१६, १५०-१३, १५१-१, इत्यादि. [सं. एव; प्रा. य्येव, जेव, जे; अप. जि.]

जिणिउ 'जीत्यो.' भू. कृ. तृ. ए. व. पुं. १६२-१०. [सं. * जिनाति > जिणइ. सर० जिन (तीर्थंकर)]

जिमइ 'जमे.' वर्तमान त्रीजो पु. ए. व. १३८-१५. **जिमण** 'भोजन, जमण.' द्वि. ए. व. न. ८३-१७. **जिमिवउं** 'भोजन, जमवुं.' द्वि. ए. व. न. ७४-१९. **जीमवउं** प्र. ए. व. न. ७४-१४. **जीमिवा** 'जमवा.' हे. कृ. ७४-१३. [प्रा. जिमइ, जेमइ. म. जेवणें. केटलाक विद्वानो आ माटे *जेमति एवुं संस्कृत रूप कल्पे छे. पण खरुं जोतां, कोई अजाण्या मूळनो आ शब्द 'भोजन करवा'ना अर्थना संस्कृत √ भुज् ने स्थानभ्रष्ट करीने प्रचलित थयो एम मानवुं वधारे योग्य छे.]

ञाइ 'न्याय वडे.' तृ. ए. व. पुं. १३७-२१. **ञाइं** तृ. ए. व. पुं. १३५-७. [सं. न्यायेन]

ठउडवा 'अपमान करवा माटे.' हे. कृ. १०२-१४. [व्युत्पत्ति अनिश्चित]

डली 'लचको.' द्वि. ए. व. स्त्री. १२४-२२, १२५-४. प्र. ए. व. स्त्री. १२५-१. [दे.] दयारामे आ ज अर्थमां आ शब्दनो प्रयोग कर्यो छे–'मन थयुं माटीनी **डली**' ('रसिकवल्लभ,' पद ३, कडी ५.)

डाहउ 'डाह्यो.' वि. प्र. ए. व. पुं. ४८-८, ४९-६. **डाहपण** 'डहापण.' प्र. ए. व. न. ४८-२०. वळी जुओ **डाहा** ५१-१७, १२१-२, १४२-१२, १४२-२१, १४३-३. **डाहाइनइ** ५२-१०. **डाहांईनउ** ५२-६. **डाहु** ४८-१७. [सं. दक्षः > प्रा. दक्खो, दाखो, *दाहो. श्री नरसिंहराव दिवेटिया सं. दक्षिणकः > प्रा. दाहिणउ उपरथी ('ण'नो लोप करीने) 'डाह्यो'नी व्युत्पत्ति बतावे छे. डॉ. टी. एन. दवे सं. दग्ध > प्रा. दग्घ उपरथी सूचवे छे.]

डाहीयार 'डाह्या.' वि. प्र. ब. व. पुं. ११७-१४. [सं. दक्ष+कार > *दाहआर. जुओ उपर **डाहउ**.]

डीलि 'जात वडे, गुज. डिले.' तृ. ए. व. न. ७८-९. [प्रा. डिल्ल. जो के प्राकृतमां एनो प्रयोग एक प्रकारना जळजंतु माटे छे, पण जूनी गुजरातीमां 'डील' शब्द 'जात-शरीर'ना अर्थमां सुप्रचलित छे.]

ढिग 'ढग, ढगलो.' द्वि. ए. व. पुं. ९४-१-२-३-१८-१९-२०. **ढिगला** 'ढगला.' द्वि. ब. व. पुं. ९४-९. [दे.]

°**तउ** पं. ए. व. नो प्रत्यय. ७-१२, ८-४, १५-१५-१६, २०-१३, ३१-२१, ३४-३-१८-१९, ३६-६-७, ५९-३, ६०-२०-२२, ८०-१६, ११०-३ ११९-२, १२२-१२, १२५-१७, १३२-४-९, १३४-३, १३८-२१, १३९-२, १५४-६, १५७-१२, इत्यादि. [सं. °तः]

थडइ 'थडा उपर, दुकानना अग्रभाग उपर.' स. ए. व. न. २-१८. [प्रा. थुड]

थाकतउ 'बाकीनो' वि. द्वि. ए. व. पुं. ९४-७. **थाकतउं** 'बाकीनुं' द्वि. ए. व. न. ९३-१४, ९४-११, १०६-५. **थाकता** 'बाकीना.' द्वि. ब. व. पुं. १०६-९, १०७-४-८. [सं. *स्थक्कित > प्रा. थक्कित, थाकित]

थाकी 'रही.' भू. कृ. प्र. ए. व. स्त्री. १०-५. [सं. *स्थक्किता. > प्रा. थक्किआ] जुओ **थाकतउ.**

थिकु पंचमीनो अनुग, गुज. 'थको.' २७-१८. [सं. * स्थक्कितः > प्रा. थक्किओ > अप. थक्किउ] जुओ **थाकतउ, थाकी.**

थुइ 'स्तुति.' प्र. ए. व. स्त्री. १६४-७. [सं. स्तुति]

दुक्कर 'दुष्कर.' वि. प्र. ए. व. पुं. १५-१०-२१. [सं. दुष्कर]

देवां 'देवोने.' द्वि. ब. व. पुं. १४५-१८-२०

देसण 'उपदेश.' द्वि. ए. व. स्त्री. १६५-२. [सं. देशना > देसणा]

दोहग्ग 'दुर्भाग्य, गुज. दोहग.' प्र. ए. व. न. १६३-१५. [सं. दौर्भाग्य > दोहग्ग]

धणीप 'स्वामित्व.' द्वि. ए. व. स्त्री. १५८-२४. [सं. धनित्व > प्रा. धणित्त-प्प]

धीरट्ठ 'धीट.' वि. प्र. ब. व. पुं. ९५-१९. वळी जुओ **धीरठपणइ** ९५-२०; **धीरठपणुं** ६३-१०; **धीरष्टपणा** १११-४; **धेठपणानइं** १११-११; **धेठा** ९५-१२, ९६-१०; **धेठांनइं** ४५-७. [सं. धृष्ट > प्रा. *धरट्ठ > धिरट्ठ. ए ज प्रमाणे सं. धृष्ट > प्रा. धिट्ठ.]

न भारदर्शक अव्यय, अर्वाचीन गुज. 'ने' (जेम के कहो ने, बोलो ने, इत्यादि). १२-४, ५६-९.

नह निषेधार्थ अव्यय. १६३-११-१५ [सं. नहि].

नात्रा 'संबंध, गुज. नातरां.' द्वि. ब. व. न. २४-२१. [सं. ज्ञात्र. आ शब्द तथा एना तद्भवोनां रूपान्तरो अने अर्थान्तरो माटे जुओ 'संस्कृति', जान्युआरी १९५० मां मारो लेख 'नातरुं अने नात.']

नापइं 'न आपे.' वर्तमान त्रीजो पु. ब. व. ४४-१३. [सं. न + अर्पयति > प्रा. न + अप्पइ]

नाराधइ 'न आराधे.' वर्तमान त्रीजो पु. ए. व. ३१-३. [सं. न + आराधयति]

नावइं 'न आवे.' वर्तमान त्रीजो पु. ए. व. १२४-३. ब. व. ६५-१२, ७७-२१. [छेल्ला बे प्रयोगोमां 'न करी शके' एवी अर्थच्छाया पण छे. जेम के 'करिवा नावइं' एटले 'नथी करी शकता.' सं. न + आयाति > अप. न + आवइ.]

निकाचित कर्म 'अत्यंत निबिड कर्म.' प्र. ए. व. न. १२५-१२-१४. वळी जुओ **निकाचित** १२४-११. **निकाचित कर्मनउं** १२४-१९-२०. **निकाचित-कर्मी** १२४-५. [आ जैन धार्मिक परिभाषानो शब्द छे.]

निधत्त कर्म 'एक प्रकारनुं बंधायेलुं कर्म.' प्र. ए. व. न. १२४-२१, १२५-८.

पइं 'करतां.' अ. ५७-१८. [सं. प्रति > प्रा. पइ. प्रस्तुत स्थळे **पइंनुं** पाठान्तर **पाहइं** छे; आथी नीचे प्रमाणे व्युत्पत्ति पण शक्य लागे छे--सं. पक्षे > प्रा. पक्खे > अप. पाखइं-पाहइं > पाइं-पइं.]

पट्टणइं 'नगरो.' प्र. ब. व. न. १६५-१. जुओ **पाटणि.**

पणि 'पण, वळी.' अ. २४-११-१३, ७०-१६, ८२-६, ८६-१५, १०९-३, ११३-१४, १३६-२, १४०-१३, १४२-२, १४९-७, १५६-७, इत्यादि. [सं. पुनः अपि > प्रा. पुणवि > जू. गुज. पुणि. सर० हि. पुनि.] जुओ **पुण.**

परहउ 'दूर.' वि. प्र. ए. व. पुं. २४-५. **परहउं** प्र. ए. व. न. १२७-९-१०-११. **परहूं** प्र. ए. व. न. २२-१२. [सं. परस्मिन् > अप. परहिं. सर० गुज. 'अरुं परुं.']

परीखिवउ 'परखवो.' विध्यर्थ कृ. प्र. ए. व. पुं. १४१-१०. **परीक्षिवउ** विध्यर्थ कृ. प्र. ए. व. पुं. १४०-१०. **परीषतउ** 'परीक्षा करतो, परखतो.' वर्तमान कृ. प्र. ए. व. पुं. १३५-१५. **परीषी** 'परखीने.' सं. कृ. १३४-८, १४२-१. **परीषीनइ** सं. कृ. १३५-८. [सं. परीक्ष् > प्रा. परिक्ख] जुओ **परीछी.**

परीछी 'परीक्षा करीने, गुज. प्रीछीने.' सं. कृ. ९५-१९. **परीछीइ** 'परखाय छे.' कर्मणि प्रयोग, वर्तमान त्रीजो पु. ए. व. २२-८. [सं. परीक्ष् > प्रा. परिच्छ] जुओ **परीखिवउ.**

प्रभ 'मालिक.' प्र. ए. व. पुं. १०१-२ [सं. प्रभु]

प्रमुख 'इत्यादि, वगेरे.' अ. १-७, ३-१२, ४-५, ५-११, ६-३-१७, ३२-८, ३३-४, ८०-४, ८३-१६, १२९-१८, १५४-४, इत्यादि.

पाखइ 'सिवाय.' अ. १५-११, ३७-१७, ४८-२०, १२१-५. [सं. पक्षे > प्रा. पक्खे > अप. पक्खइ-पाखइ-पाहइ. गुज. 'पाखे-पखे.'] जुओ **पाहइ.**

पाषइ 'सिवाय.' अ. १६-१२, ४५-१८, ७०-३, १२१-९. उच्चारणमां 'पाखइ' अने 'पाषइ' अभिन्न छे. जुओ **पाखइ.**

पाटणि 'शहेरमां.' स. ए. व. न. २५-७. [सं. पत्तन > प्रा. पट्टण. सामान्य नगरवाचक आ शब्द पाछळथी विशिष्ट नगरवाचक बन्यो छे ए नोंधपात्र छे.] जुओ **पट्टणइं.**

पाडूइ 'अशुभ.' वि. प्र. ए. व. स्त्री. १८-१५. **पाडूउं** प्र. ए. व. न. ३३-३; द्वि. ए. व. न. ८४-१६. [सं. * पातुकम् > प्रा. पाडुअं. आ प्रयोग जूनी गुजरातीमां आ अर्थमां व्यापक छे.]

पाधरा 'सादासीधा, सामान्य.' वि. अं. वि. ब. व. पुं. १५-१२, १००-१९. **पाधरां** 'सीधां' ('अवळां'थी ऊलटां) द्वि. ब. व. न. ५-१२. **पाधरी** 'सीधी'. स. ए. व. स्त्री. १०-१४. [दे. पद्धर. गुज. 'पाधरुं.' सर० 'अद्धर पद्धर.']

पापइजिनइ 'पापने ज (विषे).' स. ए. व. न. ३४-१६. 'पाप' ए नाम अने 'नइ' प्रत्ययनी वच्चे बे अव्ययो दाखल थई गया छे ए नोंधपात्र छे.

पाहइ 'करतां.' अ. १०२-११. **पाहइं** ४२-५, ५८-४, ९७-१३, १४८-१०. **पाहति** 'करतां.' १२१-९. **पाहि** ९१-३. **पाहिइं** ४२-६. **पाहंति** 'पासे, द्वारा'. ६९-१२, १०३-४. **पाहिं** १४८-३, १२०-१९. **पांहति** १४८-१३. [सं. पक्षे > प्रा. पक्खे > अप. पक्खइ-पाखइ-पाहइ. 'पाहति' इत्यादि प्रयोगोनी व्युत्पत्ति सं. पक्षतः > अप. पक्खतउ-पाहतउ-पाहतइ ए रीते संभवित छे.] जुओ **पाखइ.**

प्रामइ 'पामे छे.' वर्तमान त्रीजो पु. ए. व. १३-१४, ५३-१८, ७२-१४, १००-१८. **प्रामइं** वर्तमान त्रीजो पु. ब. व. १२-१५, २७-६-९, ३८-२०,

८७-१०-१२, ९८-५. **प्रामइं** वर्तमान त्रीजो पु. ए. व. २५-२०. वळी जुओ **प्रामिउ** १३६-८. **प्रामिसिइं** ६७-६. **प्रामिस्यउं** ९९-१४, ११८-९. **प्रामी** ९६-१७, ९७-४. **प्रामीइ** १००-१५. **प्रामुं** १५८-१४. [सं. प्राप्नोति > पा. *प्रापुणति > प्रा. *प्राउणइ, प्रावइ > जू. गुज. प्रामइ.] 'र'कार विनानुं रूप जे अर्वाचीन भाषामां व्यापक छे ते पण मळे छे—**पामइ** २६-११. **पामइं** ५४-५, ७४-१५, ९७-१९. **पामउ** १५९-२०. **पामिउ** १३६-१३-१९. **पामिस्यइ** ६७-१४, ७७-१४. **पांमीइ** ९२-२, ११३-१४. **पांमीस्यइ** ९८-१८. [सं. प्राप्नोति > पा. पापुणति > प्रा. पाउणइ, पावइ > जू. गुज. पामइ]

प्राहइं 'घणुं करीने, मोटे भागे' अ. २४-१४-१५. **प्राहि** १४७-९. **प्राहिइं** २२-१८. [सं. प्रायः]

प्रियागत 'वंशपरंपरागत.' वि. द्वि. ए. व. पुं. ४४-१४. [सं. प्रजागत > परजागत, परयागत. सर० अर्वाचीन गुज. परियागत.' गुजरातीनी केटलीक बोलीओमां 'परिया' शब्द 'प्रजा'ना अर्थमां वपराय छे. 'प्रजा' शब्दनां आ 'परिया' अने 'प्रिया' रूपान्तरो नोंधपात्र छे.]

पुण 'पण, वळी.'. अ. २३-२१, ३३-२०, ४१-१६, ५५-२२, ७८-२, ९८-२०, १२७-१७, १२९-१०, १३७-९-१३, १३९-२२, १४०-५-७, १४१-२१, १४५-२०, १४७-१५, १५०-१९, १५४-१-५, १६४-११, इत्यादि. [सं. पुनः > प्रा. पुणो > अप. पुण] जुओ **पणि.**

पूजइ 'पहोंचे.' वर्तमान त्रीजो पु. ए. व. १४०-५. [सं. पूर्यते > प्रा. पुज्जइ. 'ज' नो 'ग' थवाथी जूनी गुज. मां 'पूगई,' अर्वाचीन गुज. मां 'पूगे.']

पूर्व 'जैन शास्त्रोनो एक विभाग.' द्वि. ब. व. न. ५-९-११. [आगम-साहित्यना अंगविभागमां बारमुं अंग 'दृष्टिवाद' नामे हतुं, एमां चौद 'पूर्व' हतां. दृष्टिवाद तेम ज पूर्वो घणा समय पहेलां लुप्त थई गयां होवानी परंपरा छे.]

फलदायन 'फलदायक.' वि. प्र. ए. व. पुं. ११६-१४.

बटींग 'मूर्ख. वि. प्र. ए. व. पुं. ५४-१९.

बडइल 'गाडानी धरीनी अंदरनो खीलो.' प्र. ए. व. स्त्री. ११६-६. वळी जुओ **बडहिल** ११६-१३.

बंदोर ‘बंदीवान, केदी.’ प्र. ब. व. पुं. ११८-१४. [सं. तेम ज फा.मां ‘बंदी’ शब्द ‘केदी’ना अर्थमां छे. ‘बंदोर’ शब्द सं. बन्दी + कार > प्रा. बंदियार-मांथी उच्चारणभेदे थयो हशे? जू. गुज.मां अन्यत्र पण क्वचित् आ शब्द मळे छे, जेम के ‘कान्हडदेप्रबन्ध’ (सं. १५१२)मां—‘एक लूस्या दीसइ **बंदोर**’ (खंड २, कडी ७). जो के अहीं ए काव्यना संपादक श्री. डाह्याभाई देरासरीए ‘बंदोर’नो अर्थ ‘बंदर’ एवो आप्यो छे ए बंधबेसतो नथी. जिनसागरसूरिना बालावबोधमां ‘बंदी बंदोर बांदि झाल्या लोक’ एवो अर्थ समजाव्यो छे, तेम ज सन्दर्भ उपरथी पण ‘बंदोर’नो ‘केदी’ ए अर्थ देखीतो छे.]

बांदि ‘केदीपणामां.’ स. ए. व. स्त्री. ११८-१४. [सं. बन्दि].

भट्ट ‘भाट.’ द्वि. ब. व. पुं. ८३-१५-१८. [सं.]

भणां ‘कहुं.’ वर्तमान पहेलो पु. ए. व. ४५-४, ६८-९. [सं. √भण्]

‘भणी’ ‘माटे, तरफ.’ अनुग. १-८, ४-१७, १९-१-१५, २४-३-४, ४८-१६, ८३-३, ८५-११, ८७-१०-१४, ९७-१५, १०२-१७, १०७-२१, १०९-७, १४०-१२, १४१-२१-२२, १४९-१५, १५६-२१, १५७-२२. [‘भण’ क्रियापदनुं आ संबंधक कृदन्त छे. एनो अनुग तरीकेनो प्रयोग एक विशिष्ट अर्थविकासनुं उदाहरण छे. ‘भणी’ एटले ‘बोलीनें’ अर्थात् ‘माटे, खातर.’]

भवाडिवउं ‘शोभा देखाडवी ते.’ द्वि. ए. व. न. १२७-११. [आ प्रयोगनुं अर्वाचीन गुज. रूपान्तर ‘भवाडवुं’ एवुं थाय. पण अर्वाचीन काळमां एनो अर्थ नीचे ऊतर्यो छे; ‘भवाडो’ (फजेतो) शब्द एनुं उदाहरण छे. ‘कान्हडदेप्रबन्ध’मां ‘भवाड’ क्रियापद सारा अर्थमां छे—‘चहूआणनूं गिरूउं राज, रूडूं अह्मे **भवाडूं** आज’ (खंड २, कडी १४८). सं. भू (भव्) धातुमांथी एनी व्युत्पत्ति हशे. गुजराती लोकनाट्यना वाचक ‘भवाई’ शब्दनो व्युत्पत्तिगत संबंध आ बधा प्रयोगो साथे होय ए असंभवित नथी.]

मइगल° ‘हाथी.’ ष. ब. व. पुं. १६४-१२. [सं. मदकल > प्रा. मयगल. सर० गुज. ‘मेगळ.’ ‘मेगळ’ विशेष नाम पण छे. ‘ध्रुवाख्यान’नो कर्ता मेगळ नामे एक गुजराती कवि विक्रमना १७मा सैकामां थई गयो छे.]

महूंता ‘मंत्री, गुज. महेता.’ अं. वि. ब. व. पुं. ५३-१. [सं. महत्, प्रा. महंत, अप. महंतउ. जूनी गुज.मां महंतउ, महतउ, महुतउ, महितउ, महितु आदि एनां स्वरूपान्तरो छे. सर० हिं. महता, मा. मुंता. चौलुक्ययुगीन गुजरातना

शिलालेखो, ग्रन्थपुष्पिकाओ आदिमां व्यक्तिविशेषोनां नामो पूर्वे 'मह.' पदवी मूकेली होय छे एने अप. 'महंतउ'नो संक्षेप गणवी जोईए.]

मानअं '(तुं) माने छे.' वर्तमान बीजो पु. ए. व. १४९-५. [सर० उत्तर गुजरातनी अर्वाचीन बोलीमांनुं कोमल अनुस्वार सहित 'मानँ' एवुं उच्चारण.] जुओ **सकअं**.

मुहिआं 'व्यर्थ, निरर्थक.' अ. ८२-१६. [सं. मुधा > प्रा. मुहा. देश्य प्राकृतमां 'मुधिका' ('विना मूल्य') शब्द छे, एमांथी अवान्तर रूप 'मुहिआ' द्वारा आ वधारे सारी रीते व्युत्पन्न थई शके.]

मूलगा 'मुख्य.' प्र. ब. व. पुं. ८१-१-५. [सं. मूलगतः > प्रा. मूलगओ. सर० 'मूळगो' शब्दनां अर्वाचीन अर्थान्तरो.]

°रइं द्वितीया, चतुर्थी अने षष्ठीनो अनुग, जे घसाईने प्रत्ययनुं रूप पामे छे. ५२-२१, ८७-११. जुओ **रहइं** अने **हूइं**.

रहइ द्वितीया, चतुर्थी अने षष्ठीनो अनुग, जे घसाईने प्रत्ययनुं रूप पामे छे. ४२-१०, ४४-२१, ६३-८, ६५-५, ६६-६, ८३-१८, १३३-१५, १३६-८. **रहइं** एवुं अनुस्वार सहित रूप पण मळे छेः १६-८, २५-१०, २६-९, २८-९, ३२-१, ३३-१३, ४१-१७, ४५-१८, ४७-१४, ४९-५-१५, ५१-१७, ५५-१-१८, ६३-७, ६४-८, ६५-१-१३, ६६-९, ७६-१५, ८२-१६, ८४-४-८-९, ८५-१६, १३३-२०, १३५-१६, १३६-३, १४२-११, १५६-२३, १५७-६, १५९-२, इत्यादि. [सं. अपरस्मिन् > अप. अवरहिं. श्री. टी. एन. दवे एनी व्युत्पत्ति सं. गृहे > प्रा. घरम्मि > अप. घरहिं, °हरहिं ए प्रमाणे आपे छे. जूनी गुजरातीमां 'हूइं' ए अनुग आ 'रहइ-रहइं'नो संक्षेप छे. सत्तरमा सैकाथी आ तरफना जूना गुजराती साहित्यमां आ अनुगोनो प्रयोग भाग्ये ज नजरे पडशे. अर्वाचीन गुजरातीमां, 'अमारे, तमारे' जेवां सार्वनामिक रूपोना अंत्याक्षरोने गणतरीमां न लईए तो, आ अनुगोना अवशेष रह्या नथी, ज्यारे अर्वाचीन मारवाडीमां षष्ठीना 'रो' प्रत्यय-रूपे ए चालु छे. आ ग्रन्थमां छापेला सोमसुन्दरसूरिकृत बालावबोधमां, पंदरमा शतक जेटला प्राचीन काळमां 'लोकरा' (= लोकना) एवुं रूप मळे छे ए नोंधपात्र छे.] जुओ **°रइं** अने **हूइ**.

रामति 'रमत.' प्र. ए. व. स्त्री. ६३-१६ [सं. *रम्यति > प्रा. रम्मति]

रुलइ 'रखडे.' वर्तमान त्रीजो पु. ए. व. ११८-५, १२२-१. **रुलइं** वर्तमान त्रीजो पु. ए. व. १३-१८, ३५-२१; ब. व. ३७-३, ८७-१४. वळी जुओ

रुलिसिइं १२१-३. रुलिस्यइ १२-१४. रुलिस्यइं ९१-२. रुलिस्युं ९९-१४. रुलीस्यइ १००-९. रुलुं ६३-९. [सं. *लुटति > प्रा. रुलइ] .

कुटकइं 'टुकडो पण.' द्वि. ए. व. पुं. ४४-९. [सं. कृत्तक > प्रा. कुट्टक] **कटकउ** पण छे. ४४-९.

हूइ द्वितीया, चतुर्थी अने षष्ठीनो अनुग, जे पाछळथी घसाईने प्रत्ययनुं रूप पामे छे. ५-१, ३०-१०, ३४-२०, ३५-१३, ४४-२१, १२६-८. **हूइं** ४-१६, ५-३, ६-१०-१७, ८-१२, ९-१५, १०-१०, ११-१३-१५-१६-१८, १२-७-११, १३-२१, १४-१४, १६-१०-१२, १७-३-८-१५-१७-२१, १८-३-४, १९-८-१०, २०-८-९, २५-१२-१७-१८, २६-६-७, २७-१०-१२-१३, २८-६-१८, २९-१६, ३०-१२, ३२-५, ३३-९-१०, ३९-१९, ४१-१८, ४५-४-५-११, ४६-२-७, ४७-२-१५, ४८-१-३, ५०-१३, ५३-४, ५५-६, ५६-३-६-१२, ५७ १३, ५८-३-६, ५९-१७-२१, ६०-२०-२१-२२, ६१-१२, ६४-१८, ६५-१६, ६६-११-१२-१३, ६७-९-१७-१८, ६८-९-१०, ७१-४, ७२-१६, ७३-३, ७८-१६, ८०-६, ८१-२२, ८३-१७, ८५-२, ८६-२-३-१४, ८७-७-१६-१९, ८८-५-९-१३-१५-१६, ८९-२०, ९१-८-१२, ९२-१३-१५, ९५-१६, ९७-१२-१३, ९८-२-८-१७, ९९-१२, १०१-९-११-१२-१६-२०, १०२-१३-१८-१९, १०४-९-१२-१३-१७, १०५-१-६-८, १०६-१७, १०७-२, १०८-१-२-१३, १०९-१७-१९, ११०-५-१९, १११-३-८, ११२-७, ११३-७-२०, ११४-१-२-६, ११७-४-११, ११८-५-७-११-१२-१७, १२१-१-७-१४-१९, १२३-१५, १२४-३-५-१९, १२५-५-८-१८, १२७-१, १२८-९-१२, १३०-१८-२१, १३१-३-१९, १३२-१-४-११, १३५-१९-२०, १३६-१५, १३८-२०, १३९-१-३-८-९-१०-१२, १४२-१७, १४५-८-१३-१८-२०, १४६-७-१८, १४८-३-६-१०-११-१८, १५०-३, १५२-१०, १५६-१९, १५७-९, १५९-१६, इत्यादि. **हिइं** १२४-१२. जुओ °**रइं** अने **रहइ**.

लउडइं 'लाकडी वडे.' तृ. ए. व. पुं. १२१-२२. **लउडानउ** 'लाकडीनो.' ष. ए. व. पुं. ११२-१०. [सं. लकुट > प्रा. लउड]

लगइ 'ने कारणे, त्यांथी मांडीने.' पूर्वमर्यादासूचक अनुग. ३६-१, ६८-२२, ६९-३, १४०-१, १४८-६. 'सुधी' एवो उत्तरमर्यादासूचक अर्थ पण एमां केटलीक वार आवे छेः १४०-७, १५५-८. आनुं ज रूपान्तर **लगी** आ ग्रन्थमां वारंवार मळे छे, पण एना बधा ज प्रयोगो पूर्वमर्यादासूचक छेः ११-२१, १२-१, १३-८, १५-२१, २३-८, ३३-१, ३४-३-७, ३५-२०, ३९-२०, ५०-१०,

५१-७, ६४-१८, ६९-१२, ९२-१, १३२-९, १५४-१४. [सं. *लग्नस्मिन् > अप. लग्गहिं. भाषाना जूना थरमां आ अनुगनो पूर्वमर्यादासूचक अर्थ व्यापक छे —व्युत्पत्ति पण ए ज अर्थ सूचवे छे—पण जेम अर्वाचीन काळ तरफ आवीए तेम उत्तरमर्यादासूचक अर्थ वधारे प्रचलित थतो देखाय छे, ते एटले सुधी के त्रणेक सैकाथी भाषामां 'लगी'नो अर्थ 'सुधी' एटलो ज समजाय छे.]

लींब 'लींबु.' प्र. ए. व. न. १०४-२१. [सं. निम्बु > प्रा. लिंबु]

लोला 'समज विनाना, अज्ञानी.' वि. द्वि. ब. व. पुं. ४५-१-५, ६२-६, १०२-१८. [सं. लोल 'चपळ, अस्थिर.' आ शब्दमां थयेलो अर्थपलटो नोंधपात्र छे. 'षष्टिशतक'ना बालावबोधकारोए 'मुग्धजन'नो अर्थ 'लोला लोक' एवो आप्यो होई ए विशे कशो संदेह रहेतो नथी.]

लांषइ 'नाखे छे.' वर्तमान त्रीजो पु. ए. व. १७-१९, १२५-५. **लांखीइ** 'नंखाय.' कर्मणि वर्तमान त्रीजो पु. ए. व. १२५-४. [सं. निक्षिपति > प्रा. निक्खिवइ > जू. गुज. नाखइ. डॉ. टर्नर एनी व्युत्पत्ति जुदी रीते आपे छे— *नंक्षति > प्रा. नंखइ > जू. गुज. नांखइ. 'न'नो 'ल' थवाथी 'लांखवुं.' 'न'नुं आ प्रकारे 'ल'मां परिवर्तन ए हालमां दक्षिण गुजरातनी बोलीनी लाक्षणिकता गणाय छे, पण उपर निर्देशेला प्रयोगो बतावे छे के एक काळे उत्तर गुजरात तथा मारवाडनी बोलीमां पण ए प्रचलित हती.]

वक्कत्तण 'वक्रता, वांकापणुं.' द्वि. ए. व. न. १६२-१३. [सं. वक्रत्वन > प्रा. वक्कत्तण. आ साथे सर० पुरुषातन, अहेवातण, शूरातन, वीरातन (जू. गुज.) आदि शब्दोनो अंत्य प्रत्यय.]

वर्णवां '(हुं) वर्णवुं.' वर्तमान पहेलो पु. ए. व. ९८-१४.

वीतरागइजिनुं 'वीतरागनुं ज.' ष. ए. व. पुं. १४७-७. प्रत्यय अने नामनी वच्चे बे अव्ययो दाखल थई गया छे ए ध्यान खेंचे छे.

विरउ 'हलको, गुज. वरवो.' वि. प्र. ए. व. पुं. १५७-११. **विरुइ** 'हलकी.' प्र. ए. व. स्त्री. १८-११, १९-३-१८; द्वि. ए. व. स्त्री. १८-२२. वळी जुओ **विरुअइ** १३३-१६. **विरुअउं** ४२-२-४. **विरूआ** १११-२०, ११३-७. **विरूआं** ३२-२०. **विरूइ** ८५-३. **विरूई** १२२-२. **विरूउ** ४६-७, ६५-१३, १०६-१८. **विरूउं** ४१-१३-१५, ८७-२, १०५-१, ११७-३, ११८-१७, १५३-१७. **विरूऊ** ४०-१०. **विरूया** ७८-४. [सं. विरूप > प्रा. विरुअ > अप. विरूउ]

विसमसि ' आलंबन. ' द्वि. ए. व. स्त्री. १४४-३.

वेचइ ' व्यय करे छे. ' वर्तमान त्रीजो पु. ए. व. १६-११, १५०-२१. **वेचइं** १५०-२०, १५१-६. [प्रा. वेच्च ' व्यय करवो. ' जैनोमां धार्मिक परिभाषामां आ शब्द आजे पण आ अर्थमां चालु छे.]

सइ ' सो, गुज. से-सें. ' द्वि. ब. व. न. ७-१५. **सइं** प्र. ब. व. न. ८५-२१. स. ब. व. ३३-१९. [सं. शत > प्रा. सय]

सकअं ' (तुं) शके. ' वर्तमान बीजो पु. ए. व. ५-१०-१५. [सर० उत्तर गुजरातनी बोलीमांनुं कोमल अनुस्वार सहितनुं ' सकँ ' एवुं उच्चारण.] जुओ **मानअं.**

सकयत्थो ' कृतार्थ. ' वि. प्र. ए. पुं. १६१-६. [सं. सकृतार्थ > प्रा. सकयत्थ.]

सणीजा ' स्नेहीओ. ' प्र. ब. व. पुं. १०३-१३. [सं. स्निह्यकः > प्रा. सिणिज्झओ. सर० गुज. ' सणेजो. ']

सयरं ' शरीर. ' प्र. ए. व. न. ९८-५. **सयरनां** ' शरीरनां. ' ष. ब. व. न. ३७-२०. [सं. शरीर > जू. गुज. सइर. असंयुक्त ' र 'नो आ प्रकारे लोप गुज. मां अन्यत्र पण थाय छे: परिमल > पीमळ, सरिज्जल > सइजल > सेजळ, करीर > कइर > केर, इत्यादि.]

सलुद्धारु ' (अधर्मरुपी) शल्य दूर करवुं ते. ' द्वि. ए. व. पुं. १६५-५. [सं. शल्योद्धार.]

संझ ' संध्याए. ' स. ए. व. स्त्री. १६३-१६. [सं. संध्या > प्रा. संझा]

संथुणउ ' स्तुति करुं. ' वर्तमान पहेलो पु. ए. व. १६४-२. [सं. संस्तुनोति > प्रा. संथुणइ]

संतानीइ ' वंशजे. ' तृ. ए. व. पुं. ९-२१. **संतानीअइं** तृ. ए. व. पुं. ९-२२. [सं. संतानिक > प्रा. संताणिअ]

साठिसउ ' एकसो साठ (गाथावाळो ग्रन्थ). ' द्वि. ए. व. पुं. २-२, ३-१४ [सं. षष्टिशत > प्रा. सट्ठिसअ]

सातिउं ' संताड्युं. ' भूत त्रीजो पु. ए. व. ९३-२३. [सं. √ सिञ्च् उपरथी हशे ? सांच्युं (सांत्युं)-संघर्युं, ए अर्थमां ? जूना साहित्यमां अन्यत्र पण आ

क्रियापदनो आ ज अर्थमां प्रयोग छे. जेम के फूढकृत 'पांडवविष्टि' (सं. १६७७)मां —'जेद्रथ **शांत्यो** भोंएरे, कौरवे दीधुं तालुं' (पं. ४४८); सविता ढांक्यो चालणी, उट लेइ **शांतु** ओटि' (पं. ४५४).]

साधम्मिय 'समान धर्मना अनुयायी.' वि. द्वि. ब. व. पुं. ४-१२. **साधर्म** द्वि. ब. व. व. १४८-१३. जुओ **साहम्मीनउ.**

साहम्मीनउ 'समान धर्मना अनुयायीनो.' वि. ष. ए. व. पुं. १४८-१५. जुओ—**साहम्मीमाहे** ५३-६, **साहम्मी पाहइ** १४८-१८, **साहम्मी पांहि** १४८-३, इत्यादि. [सं: साधर्मिन् > प्रा. साहम्मी. सर० अर्वाचीन गुज. 'साहमी (सामी) भाई,' 'साहमीवच्छल' (साधर्मिकवात्सल्य). आ जैन परिभाषानो शब्द छे.]

सिग्घ 'जलदी.' अ. १६३-८. [सं. शीघ्र > प्रा. सिग्घ]

सिध्याइं 'स्वाध्याय.' द्वि. ए. व. न. २-२४. [सं. स्वाध्याय. एमांथी प्रा. स्वाध्याय > गुज. सज्झाय शब्द आवेलो छे.]

सुलंभ 'सुलभ.' वि. द्वि. ए. व. न. १५९-५. [सं. सुलभ]

सुहेतलउं 'सहेलुं.' वि. द्वि. ए. व. न. ३९-३. [सं. √ शुभ् > प्रा. सुह उपरथी?]

सुहेलउं 'सहेलुं, गुज. सोह्यलुं ('दोह्यलुं'थी ऊलटुं).' वि. द्वि. ए. व. न. [सं. √ शुभ् > प्रा. सुह उपरथी?] जुओ **सोहिलउ.**

सेषल 'नागदेवता.' स. ए. व. पुं. ८३-१६. **सेषलनी** ष. ए. व. पुं. ८३-९. [सं. शेष + ल. जूनी गुजरातीमां 'ष'नो उच्चार घणुंखरुं 'ख' थाय छे ए ध्यानमां राखवा जेवुं छे.]

सोहिलउ 'सहेलो, गुज. सोह्यलो.' वि. प्र. ए. व. पुं. १४५-२. द्वि. ए. व. पुं. २०-९. **सोहिलउं** प्र. ए. व. न. २१-१०-१२, २२-९. [सं. शोभ् > प्रा. सोह उपरथी?] जुओ **सुहेलउं.**

हलुअकर्मेउ 'जेनां अल्प कर्म अवशिष्ट रह्यां होय एवो, शीघ्र मुक्तिगामी, गुज. हलुकर्मी.' वि. प्र. ए. व. पुं. १२७-१५. [सं. लघु > प्रा. लहु, व्यत्ययथी हलु + कर्मा. आ पण जैन धार्मिक परिभाषानो शब्द छे.]

हलुपण 'हळवापणुं.' द्वि. ए. व. न. ५४-५. [सं. लघुत्वन > प्रा. लहुत्तण-प्पण > हलुप्पण]